आचार्य हेमचन्द्र

डॉ. वि. भा. मुसलगाँवकर

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

4/50

प्राकृत एवं जैन साहित्य के विख्यात एवं अधिकारी विद्वान डा० हीरालाल जैन की सम्मति

मैंने डा० वि० भा० मुसलगाँवकर द्वारा रचित "आचार्य हेमचन्द्र" शीर्षक ग्रन्थ का अवलोकन किया है। उन्होंने अपनी इस रचना के टंकित २०० पृष्ठों में आचार्य हेमचन्द्र के जीवन चरित्र और उनके संस्कृत काव्य, व्याकरण, अलङ्कार, कोश, छन्द तथा दार्शनिक रचनाओं का विशेष रुप से परिचय कराया हैं। इसमें न तो अपने विषय को बहुत विस्तार दिया है और न इतना संक्षिप्त रखा है कि उसका सामान्य रूप से पूर्ण ज्ञान न हो सके। इस प्रकार इन कलिकालसर्वज्ञ उपाधि प्राप्त महान आचार्य हेमचन्द्र की विशाल साहित्यिक देन का सरल और सुबोध ज्ञान इस ग्रन्थ से प्राप्त किया जा सकता है। हिन्दी में ऐसे बहुत कम ग्रन्थ है जिनसे आचार्य हेमचन्द्र तथा उनकी रचनाओं का समग्र रूप से परिचय प्राप्त किया जा सके।

मैं इस सफल रचना के लिए डा० मुसलगाँवकर का अभिनन्दन करता हूँ और आशा करता हूँ कि उनकी इस रचना के प्रकाशित हो जाने से १२ वीं शताब्दी के एक महान साहित्यकार की संस्कृत एवं संस्कृति सम्बन्धी देन को समझने समझाने में पाठको तथा विद्वानों को बहुत सहायता मिलेगी।

हीरालाल जैन

आचार्य हेमचन्द्र

लेखक

डा. वि. भा. मुसलगांवकर

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
भोपाल

प्राक्कथन

इस बात पर सभी शिक्षा-शास्त्री एक मत हैं कि मातृभाषा के माध्यम से दी गयी शिक्षा छात्रों के सर्वांगीण विकास एवं मौलिक चिन्तन की अभिवृद्धि में अधिक सहायक होती है। इसी कारण स्वातन्त्र्य आन्दोलन के समय एवं उसके पूर्व से ही स्वामी श्रद्धानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं महात्मा गांधी जैसे देशमान्य नेताओं ने मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने की दृष्टि से आदर्श शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित कीं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद भी देश में शिक्षा सम्बन्धी जो कमीशन या समितियाँ नियुक्त की गयीं, उन्होंने एक मत से इस सिद्धान्त का अनुमोदन किया।

इस दिशा में सबसे बड़ी बाधा थी– श्रेष्ठ पाठ्य-ग्रन्थों का अभाव। हम सब जानते हैं कि न केवल विज्ञान और तकनीकी, अपितु मानविकी के क्षेत्र में भी विश्व में इतनी तीव्रता से नये अनुसन्धानों और चिन्तनों का आगमन हो रहा है कि यदि उसे ठीक ढंग से गृहीत न किया गया तो मातृभाषा से शिक्षा पाने वाले अंचलों के पिछड़ जाने की आशंका है। भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने इस बात का अनुभव किया और भारत की क्षेत्रीय भाषाओं में विश्वविद्यालयीन स्तर पर उत्कृष्ट पाठ्य-ग्रन्थ तैयार करने के लिए समुचित आर्थिक दायित्व स्वीकार किया। केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालय की यह योजना उसके शत प्रतिशत अनुदान से राज्य अकादमियों द्वारा कार्यान्वित की जा रही है। मध्यप्रदेश में हिन्दी ग्रन्थ अकादमी की स्थापना इसी उद्देश्य से की गयी है।

अकादमी विश्वविद्यालयीन स्तर की मौलिक पुस्तकों के निर्माण के साथ, विश्व की विभिन्न भाषाओं में बिखरे हुए ज्ञान को हिन्दी के माध्यम से प्राध्यापकों एवं विद्यार्थियों को उपलब्ध करेगी। इस योजना के साथ राज्य के सभी महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय सम्बद्ध हैं। मेरा विश्वास है कि सभी शिक्षा

शास्त्री एवं शिक्षाप्रेमी इस योजना को प्रोत्साहित करेंगे । प्राध्यापकों से मेरा अनुरोध है कि वे अकादमी के ग्रन्थों को छात्रों तक पहुँचाने में हमें सहयोग प्रदान करें, जिससे बिना और विलम्ब के विश्वविद्यालयों में सभी विषयों के शिक्षण का माध्यम हिन्दी बन सके ।

जगदीश नारायण अवस्थी
शिक्षामंत्री,
अध्यक्ष :
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
भोपाल

प्रस्तावना

भारतीय चिन्तन, साहित्य और साधना के क्षेत्र में आचार्य हेमचन्द्र का नाम अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वे न केवल महान् गुरु, समाज-सुधारक एवं धर्माचार्य ही थे, अपितु अद्भुत प्रतिभा एवं सर्जन-क्षमता से सम्पन्न मनीषी भी थे। जहाँ एक ओर उन्होंने गुजरात के इतिहास को प्रभावित किया, जैन धर्म को एक नया मोड़ दिया एवं राज्य को प्रेरित कर समस्त गुर्जरभूमि को अहिंसामय बना दिया, वहाँ उन्होंने साहित्य, दर्शन, योग, व्याकरण, छन्द-शास्त्र, काव्य-शास्त्र, अभिधान कोश आदि वाङ्मय के सभी महत्वपूर्ण अङ्गों पर नवीन साहित्य की सृष्टि कर, इस दिशा में भी एक नये पथ को आलोकित किया। जैन आचार्यों और ग्रन्थकारों में वे मूर्धन्य हैं। संस्कृत और प्राकृत दोनों पर उनका समान अधिकार था। लोग उन्हें 'कलिकालसर्वज्ञ' के नाम से पुकारते थे। महाराज भोज के नाम से प्रख्यात सारी रचनाएँ यदि उन्हीं की हों, तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि भोज को छोड़कर अन्य कोई भी रचनाकार इतने अधिक विषयों में ऐसे सुपुष्ट ग्रन्थों का निर्माण नहीं कर सका। और भोज का सम्पूर्ण साहित्य केवल संस्कृत मे है।

आचार्य हेमचन्द्र का जीवन, रचना-काल, कृतियाँ तथा उनके जीवन की प्रमुख घटनाएँ, सौभाग्यवश, विवाद का विषय नहीं है। जैन इतिहास ने उन्हें सम्हाल कर, सँजोकर रखा है। उनके अनेक ग्रन्थों के सुसम्पादित संस्करण निकल चुके हैं। कई विश्वविद्यालयों में उन पर शोध कार्य हुआ है। हेमचन्द्र के "काव्यानुशासन" ने उन्हें उच्चकोटि के काव्यशास्त्रकारों की श्रेणी में प्रतिष्ठित किया है। उन्होंने यदि पूर्वाचार्यों से बहुत कुछ लिया, तो परवर्ती विचारकों को चिन्तन के लिए विपुल सामग्री भी प्रदान की। इसलिए यह आवश्यक था कि अकादमी उन्हें संस्कृत काव्याचार्यों की श्रेणी में उचित स्थान दे। प्रस्तुत ग्रन्थ

इसी शृङ्खला की एक कड़ी है। इसके प्रणेता डॉ० वी० बी० मुसलगाँवकर राज्य के सुपरिचित विद्वान हैं। आचार्य हेमचन्द्र उनके अध्ययन के प्रमुख विषय रहे हैं। मेरा विश्वास है कि डॉ० मुसलगाँवकर की यह कृति भारतीय काव्य-शास्त्र के विद्यार्थियों की आचार्य-हेमचन्द्र-विषयक जिज्ञासा की पूर्ति करने में सहायक सिद्ध होगी।

प्रभुदयालु अग्निहोत्री
संचालक :
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

विषय सूची

	पृष्ठ
प्राक्कथन	अ–ब
प्रस्तावना	स–द
अध्याय : १	
जीवन-वृत्त तथा रचनाएँ	१–४५
अध्याय : २	
हेमचन्द्र के काव्य-ग्रन्थ	४६–८२
अध्याय : ३	
व्याकरण ग्रन्थ	
हेमचन्द्र की व्याकरण रचनाएँ	८३–१०२
अध्याय : ४	
अलङ्कार ग्रन्थ	
हेमचन्द्र के अलङ्कार-ग्रन्थ–	
'काव्यानुशासन' का विवेचन–	१०३–११८
अध्याय : ५	
कोश-ग्रन्थ	११९–१३९

अध्याय : ६

दार्शनिक एवं धार्मिक-ग्रन्थ — १४०–१६८

अध्याय : ७

उपसंहार

भारतीय साहित्य को हेमचन्द्र की देन

आचार्य हेमचन्द्र की बहुमुखी प्रतिभा — १६९–१९८

हेमप्रशस्तिः — १९९–२००

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची — २०१–२०७

चित्र-सूची

१. आचार्य हेमचन्द्र

(वि. स. १२९४ की ताड़पत्र-प्रति के आधार पर)

२. आचार्य हेमचन्द्र से सम्बन्धित विशिष्ठ स्थान

आचार्य हेमचन्द्र

आचार्य हेमचन्द्र

आचार्य हेमचन्द्र

[वि. सं. १२६४ की ताड़पत्र-प्रति के आधार पर]

अध्याय : 1

जीवन-वृत्त तथा रचनाएँ

गुजरात की महती परम्परा

यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्री मदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ।।[1]

भगवान् कृष्ण 'विभूतियोग' नामक अध्याय में संक्षेप में अपनी योग शक्ति का वर्णन करते हुए अर्जुन से कहते हैं --"जो जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और प्रभावयुक्त वस्तु है, उस उसको तू मेरे तेज के अंश की ही अभिव्यक्ति जान" । आचार्य हेमचन्द्र के जीवन-चरित्र का अध्ययन करने से उपर्युक्त बात सत्य सिद्ध होती है । यद्यपि परिस्थिति मनुष्य का निर्माण करती है, फिर भी अनुकूल परिस्थिति प्राप्त होते ही महापुरुष जन्म ग्रहण करते हैं–यह बात भी सदैव अनुभव में आती है । सांस्कृतिक दृष्टि से गुजरात–प्रदेश प्रारम्भ से ही अग्रगामी रहा है । भगवान कृष्ण ने द्वापरयुग में वहाँ द्वारका की स्थापना कर उस प्रदेश को विशेष गौरव प्रदान किया था । इसके पश्चात् पौराणिक काल में भी गुजरात सभ्यता एवं विभिन्न धार्मिक संप्रदायों का गढ़ रहा है । श्री क० मा० मुन्शी के अनुसार द्वितीय शताब्दी के आरम्भ में ही श्री लाकुलिश के प्रभाव से गुजरात में शैव तथा पाशुपत सम्प्रदाय का बहुत प्रसार हुआ था[2] । ऐतिहासिक काल में भी गुजरात विद्या प्रचार का बड़ा केन्द्र रहा । वलभी का विश्वविद्यालय तो सुप्रसिद्ध है । चीनी यात्रियों ने भी

१–भगवद्गीता –अध्याय १०–४१
२–गुजरात एण्ड इट्स लिटरेचर: इन्ट्रोडक्शन - पेज २१. के० एम० मुन्शी

अपने ग्रन्थों में वलभी विश्वविद्यालय की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। सुप्रसिद्ध "भट्टिकाव्य" जो हेमचन्द्र के द्वयाश्रय काव्य का आदर्श रहा है —वलभी में ही रचा गया था। एकमात्र महाकाव्य की रचना कर अमर होने वाले महाकवि माघ ने इसी भू–भाग को अलङ्कृत किया था। कथा सरित्सागर में भी वलभी की प्रशंसा पायी जाती है[1]। श्रीमाल भी जैन विद्या का बड़ा केन्द्र था। सिद्धर्षि ने "उपमितिभवप्रपञ्च कथा" वि० सं० ९६२ ज्येष्ठ शुक्ल ५ गुरुवार, पुनर्वसु नक्षत्र में समाप्त की[2]। यह भी गुजरात की प्राचीन राजधानी श्रीमाल में रची गई थी। हरिभद्र-सूरि ने श्रीमाल में 'षड्दर्शनसमुच्चय' और अन्य बहुत से महत्वपूर्ण जैन ग्रन्थों की रचना की। इनका समय आठवीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है। आचार्य हेमचन्द्र भी इसी परंपरा के साधकों और आचार्यों की श्रेणी में आते हैं।

श्वेताम्बर जैन परम्परा के अनुसार देवधिगणि क्षमाश्रमण ने वर्तमान जैन संप्रदाय का निर्माण किया। उन्होंने भगवान् महावीर के निर्वाण के लगभग ९८० वर्ष बाद अर्थात् ४५४ ई० में विद्या तथा धर्म के केन्द्र वलभी नगर में जैन सम्प्रदाय को वर्तमान रूप दिया। जैन सम्प्रदाय के सभी प्रमुख विद्वान् वहाँ सभा में उपस्थित थे तथा पर्याप्त चर्चा एवं विचारविनिमय के अनन्तर जैन सम्प्रदाय को अधिकृत रूप प्राप्त हुआ। इसी मुनि-सम्मेलन में आगम ग्रन्थों को सुसम्पादित किया गया। इस सम्मेलन में कोई ४५–४६ ग्रन्थों का संकलन हुआ और ये आज तक सुप्रचलित हैं। अतः जैन सम्प्रदाय की दृष्टि से भी वलभी नगर एवं गुजरात क्षेत्र का विशेष महत्व है[3]।

आनन्दपुर (आधुनिक बड़नगर) १०वीं शताब्दी तक विद्या का केन्द्र बना रहा, ऐसा क० मा० मुन्शी का मत है। अणहिलवाड़ का चालुक्य राजकुल मूलराज सोलंकी द्वारा प्रतिष्ठित हुआ। गुजरात अनुवृत्त से विदित है कि मूलराज का पिता कन्नौज में राजा था तथा उसकी माता चावडा राजकुल की कन्या थी। अभिलेखों में भी उसके पिता को महाराजाधिराज लिखा गया है। उसने अपने मामा को मारकर चावडा की गद्दी हथिया ली। साम्भर के

१–स विष्णुदत्तो वयसा पूर्णषोडशवत्सरः ।
गन्तुं प्रववृते विद्या–प्राप्तये वलभीं पुरीम् ॥ कथा सरित्सागर -तरंग ३२।
२–प्रभावक् चरित–सिद्धर्षि प्रबन्ध ।
३–प्राचीन भारत का इतिहास —डा० रमाशंकर त्रिपाठी ।

अभिलेख में उद्धृत तिथि के अनुसार यह घटना ई० ६४१ के आसपास घटी होगी। मूलराज की पूर्वतम ज्ञात तिथि यही है[1]। मूलराज ने कच्छ को जीता, सौराष्ट्र में गृहरिपु को बन्दी बनाया और लाट, शाकम्भरी तथा अनेक राजाओं से युद्ध किया।

मूलराज शिवभक्त था। उसने अनेक शिव मन्दिरों का निर्माण कराया। विद्वानों का आदर करना उसका व्यसन था। श्री क० मा० मुन्शी के अनुसार मूलराज ने सहस्रों ब्राह्मणों को सिद्धपुर में बसने के लिये बुलाया था। स्वाभाविक ही है कि वे अपना साहित्य वहाँ ले आये और उन्होंने अपनी विद्वत्ता का यहाँ परमोत्कर्ष किया। ताम्रदान-पत्र में विक्रम सं० १०५१ अन्तिम तिथि मिलती है। मूलराज इस तिथि से एकाध वर्ष बाद मरा होगा। मूलराज ने "त्रिपुरुष प्रासाद" नामक शिव मंदिर बनवाया। प्रबन्ध-चिन्तामणि के अनुसार मूलराज ने "श्री मूलराज वसहिका" नामक जैन मन्दिर भी बनवाया। राजा ने ५५ वर्ष तक निष्कंटक राज्य किया।

फिर चामुण्डराज ने १३ वर्ष तक तथा उसके पुत्र वल्लभराज ने ६ मास तक राज किया। पराक्रमी होने से उसे 'जगत् झंपन' कहा जाता था। फिर उसका छोटा भाई दुर्लभराज ११ वर्ष तक राज्य करता रहा। यह भी ब्राह्मणों का तथा शिव का भक्त था। इसने 'दुर्लभ सर' नामक सरोवर बनवाया। फिर उसके भाई नागराज का लड़का भीम राजा हुआ। दुर्लभराज ने धवल-गृह राज्य-प्रासाद बनवाया, 'व्ययकरण हस्ति शाला' बनवाई। दुर्लभराज ने १२ वर्ष राज्य किया।

भीम (१०२१-६४ ई०) ने लगभग ४२ वर्ष राज्य किया। भीम ने कलचुरि लक्ष्मीकर्ण से सन्धि कर मालवा को हराया था। फिर भीम ने लक्ष्मीकर्ण को भी हराया। इसके राज्य में भी विद्या एवं कला की उन्नति हुई। भीम के पुत्र कर्ण ने ई० सन् १०६४ से १०९४ तक लगभग ३० वर्ष राज्य किया। इसके राज्य पर परमारों ने फिर विजय प्राप्त करली थी। कर्ण अपने पिता के समान ही महापराक्रमी थे। कर्ण ने अनेक निर्माण कार्य किये। उसने कर्णावती नाम का नगर बसाया जहां आज अहमदाबाद स्थित है। कर्ण ने अनेक

---

१ -वैदिक संस्कृति चा विकास —ले० तर्कतीर्थ लक्ष्मणशास्त्री जोषी
महावीर निर्वाण ५२७ ई. पू. विक्रमकाल से ४७० वर्ष पूर्व।

मन्दिर बनवाये एवं तालाब खुदवाये। इस प्रकार अणहिल्लपुरपाटन को सोलंकियों ने धीरे-धीरे विकसित किया और यह नगरी श्रीमाल, वलभी तथा गिरिनगर की नगरश्री की उत्तराधिकारिणी हुई। इस उत्तराधिकार में कान्य-कुब्ज, उज्जयिनी एवं पाटलिपुत्र के भी संस्कार थे। इस अभ्युदय की पराकाष्ठा जयसिंह सिद्धराज और कुमारपाल के समय में दिखाई दी और पौन शताब्दी से अधिक काल तक स्थिर रही। आचार्य हेमचन्द्र इस युग में हुए थे। उन्हें इस संस्कार-समृद्धि का लाभ प्राप्त हुआ था। वे इस युग की महान कृति थे, किन्तु आगे चल कर वे युग-निर्माता बन गये।

१२ वीं शताब्दी में पाटलिपुत्र, कान्यकुब्ज, वलभी, उज्जयिनी, काशी प्रभृति समृद्धशाली नगरों की उदात्त स्वर्णिम परम्परा में गुजरात के **अणहिलपुर** ने भी गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करने का प्रयास किया। आचार्य हेमचन्द्र को पाकर गुजरात अज्ञान, धार्मिक रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों से मुक्त हो, शोभा का समुद्र, गुणों का आकर, कीर्ति का कैलास एवं धर्म का महान केन्द्र बन गया। शासकों की कलाप्रियता ने नयनाभिराम स्थापत्यों का निर्माण कराया। इस प्रकार अनुकूल परिस्थिति में कलिकाल-सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र सर्वजनहिताय एवं सर्वोपदेशाय पृथ्वी पर अवतरित हुए।

भीमदेव प्रथम के समय में शैवाचार्य ज्ञानभिक्षु और सुविहित जैन साधुओं को पाटन में स्थान दिलाने वाले पुरोहित सोमेश्वर के दृष्टान्त प्रभावक चरित में वर्णित हैं[1]। भीमदेव प्रथम और कर्णदेव के काल में **अणहिलपुरपाटन** देश-विदेश के विख्यात विद्वानों के समागम और निवास का स्थान बन गया था, ऐसा प्रभावक् चरित के उल्लेखों से मालूम होता है। भीमदेव का सन्धि विग्रहिक 'विप्र डामर', जिसका हेमचन्द्र दामोदर के नाम से उल्लेख करते हैं, अपनी बुद्धिमत्ता के कारण प्रसिद्ध हुआ होगा, ऐसा जान पड़ता है। कर्ण के दरबार में काश्मीरी कवि बिल्हण, जिन्होंने 'कर्णसुन्दरी' नामक नाटक लिखा था (१०८०-९०); शैवाचार्य ज्ञानदेव, पुरोहित सोमेश्वर, सुराचार्य मध्यदेश के ब्राह्मण पण्डित श्रीधर और श्रीपति, जो आगे जाकर जिनेश्वर और बुद्धिसागर के नाम से जैन साधुरूप में प्रसिद्ध हुए; जयराशि भट्ट के तत्वोपप्लव की युक्तियों के बल से पाटन की सभा में वाद करने वाला भृगुकच्छ(भडोंच)का कौलकवि धर्म,

---

१ -प्रभावक् चरित (निर्णय सागर), पृष्ठ २०६ से ३४६।

तर्क-शास्त्र के प्रौढ़ अध्यापक जैनाचार्य शान्तिसूरि, जिनकी पाठशाला में बौद्ध तर्क में से उत्पन्न और समझने में कठिन प्रमेयों की शिक्षा दी जाती थी और इस तर्कशाला के समर्थ छात्र मुनिचन्द्रसूरि इत्यादि पण्डित प्रख्यात थे। नवाङ्गी टीकाकार अभयदेवसूरि तथा बिल्हण ने कर्णदेव के राज्य में पाटन को सुशोभित किया था। इस प्रकार सभी दृष्टियों से सम्पन्न समय में, अनुकूल युग में आचार्य हेमचन्द्र अवतरित हुए।

संस्कृत कवियों का जीवन चरित्र लिखना एक कठिन समस्या है। इन कवियों ने अपने विषय में कुछ भी नहीं लिखा है। जिन्होंने लिखा भी है, वह अत्यल्प है। सौभाग्य की बात है कि आचार्य हेमचन्द्र के विषय में यत्र-तत्र पर्याप्त तथ्य उपलब्ध होते हैं। आचार्य के जीवन-चरित्र के सम्बन्ध में उनके स्वरचित ग्रन्थों में कुछ संकेत उपलब्ध होते हैं। अपने युग के एक महापुरुष तथा प्रसिद्ध-धर्म प्रचारक होने के नाते समकालीन तथा परवर्ती लेखकों ने भी उनकी जीवनी पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। धार्मिक ग्रन्थों में भी उनके विषय में यत्र-तत्र उल्लेख मिलता है। गुजरात के तत्कालीन प्रसिद्ध राजा सिद्धराज जयसिंह एवं कुमारपाल के धर्मोपदेशक होने के कारण भी ऐतिहासिक लेखकों ने आचार्य हेमचन्द्र के जीवन चरित्र पर अपना अभिमत प्रकट किया है। श्री जिनविजय जी के मतानुसार भारत के किसी प्राचीन ऐतिहासिक पुरुष के विषय में जितनी प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध होती है उसकी तुलना में हेमचन्द्र विषयक सामग्री विपुलतर कही जा सकती है। फिर भी आचार्य श्री का जीवन चित्रित करने के लिये वह सर्वथा अपूर्ण है[1]। 'कुमारपाल प्रतिबोध' (वि० सं० १२४१) के रचयिता श्री सोमप्रभसूरि तथा 'मोहराज पराजय' के रचयिता यशपाल, आचार्य हेमचन्द्र के लघुवयस्क समकालीन थे। अतः 'मोहराज पराजय' एवं 'कुमारपाल प्रतिबोध' को आचार्य की जीवन-कथा के लिये मुख्य आधार ग्रन्थ तथा दूसरे ग्रन्थों को पूरक मानना चाहिये।

(१) अन्तःसाक्ष्य के आधार पर जीवनी के सङ्केत –

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने स्वरचित ग्रन्थों में कहीं-कहीं कुछ अपने विषय में सङ्केत दिया है। अन्त : साक्ष्य के अन्तर्गत मुख्यतया निम्नलिखित ग्रन्थ आते हैं—

१. द्वयाश्रयमहाकाव्य (संस्कृत तथा प्राकृत)

---

१ -प्रस्तावना-प्रमाणमीमांसा —जैन-सिन्धी ग्रन्थमाला।

२. सिद्धहेम शब्दानुशासन-प्रशस्ति
३. त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित के अन्तर्गत -महावीरचरितम्

यद्यपि केवल अन्त:साक्ष्य के आधार पर उनका सुसम्बद्ध जीवन तो लिपिबद्ध नहीं हो सकता, किन्तु जीवन की घटनाओं पर तथा उनके विचारों पर अवश्य प्रकाश पड़ता है।

(२) बहि:साक्ष्य की प्रामाणिकता और उसके आधार पर जीवनी के सङ्केत -

बहि:साक्ष्य के अन्तर्गत आचार्य हेमचन्द्र के चरित्र विषयक निम्नाङ्कित ग्रन्थ आधार माने जाते हैं—

ग्रन्थ	लेखक	काल
१. शतार्थकाव्य]	श्री सोमप्रभसूरि	
२. कुमार-पाल प्रतिबोध]	लघुवयस्क समकालीन	वि. सं. १२४१
३. मोहराज पराजय	मन्त्री यशपाल	वि. सं. १२२८ से १२३२
४. पुरातन प्रबन्धसंग्रह	अज्ञात	—
५. प्रभावक् चरित	श्री प्रभाचन्द्रसूरि	वि. सं. १३३४
६. प्रबन्धचिन्तामणि	श्री मेरुतुङ्गाचार्य	वि. सं. १३६१
७. प्रबन्धकोश	श्री राजशेखरसूरि	वि. सं. १४०५
८. कुमारपाल प्रबन्ध	श्री उपाध्याय जिनमण्डन	वि. सं. १३९२
९. कुमारपाल प्रबोध प्रबन्ध]	श्री जयसिंहसूरि	वि. सं. १४२२
१०. कुमारपाल चरितम्]		
११. विविधतीर्थकल्प	श्री जिनप्रभसूरि	वि. सं. १३८९
१२ रसमाला	श्री अलेक्ज़ण्डर किन्लॉक फार्ब्स	ई. स. १८७८
१३. लाईफ ऑफ हेमचन्द्र	श्री डॉ. बूल्हर	ई. स. १८८९

आधुनिक काल में उपलब्ध सामग्री के आधार पर सर्वप्रथम जर्मन विद्वान् डॉ. बूल्हर ने ई. स. १८८९ में वियना में आचार्य हेमचन्द्र का जीवन चरित्र लिखा। उनकी यह पुस्तक मूलत: जर्मन भाषा में प्रकाशित हुई। तत्पश्चात् प्रो. डॉ. मणिलाल पटेल ने ई०स० १९३६ में इसका अङ्ग्रेजी अनुवाद किया जिसे सिन्धी-जैन ज्ञानपीठ, विश्वभारती, शान्ति-निकेतन ने प्रकाशित किया। आचार्य हेमचन्द्र के जीवन-चरित्र का अध्ययन करने के लिये यह पुस्तक

अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं उपादेय है। इसमें डॉ. बूल्हर ने (१) प्रभावक् चरित (२) प्रबन्ध चिन्तामणि (३) प्रबन्धकोश (४) कुमारपाल प्रबन्ध तथा द्वयाश्रय काव्य, सिद्ध हेमप्रशस्ति और महावीर चरित का उपयोग किया है।

प्रामाणिकता के विषय में ऊपर निर्दिष्ट चारों ग्रन्थ विश्वसनीय माने जाते हैं। गुजरात के प्राचीन इतिहास की विशिष्ट श्रुति और स्मृति के आधार भूत जितने भी प्रबन्धात्मक और चरित्रात्मक ग्रन्थ, निबन्ध आदि संस्कृत या प्राचीन देशी भाषा में उपलब्ध होते हैं उन सबमें प्रबन्ध चिन्तामणि का स्थान विशिष्ट और अधिक महत्व का है[1]। श्री राजशेखरसूरि ने अपने 'प्रबन्धकोष' में, जिनप्रभसूरि ने 'विविधतीर्थकल्प' में, जिनमण्डनोपाध्याय ने 'कुमारपालप्रबन्ध' में, जयसिंहसूरि ने 'कुमारपाल प्रबोध प्रबन्ध' में, तथा इनके बाद कई ग्रन्थकारों ने अपने ग्रन्थों में प्रबन्धचिन्तामणि का उपयोग किया है। श्री अलेकजेण्डर किन्लॉक फार्बस् ने इसका उपयोग 'रसमाला' में किया है। बम्बई सरकार ने बम्बई गजेटियर में भी इसका उपयोग किया है। श्री सी. एच. टॉनी ने ई० स० १९०१ में सर्वप्रथम इसका अङ्ग्रेजी में अनुवाद किया जो कलकत्ता एशियाटिक सोसायटी ने प्रकाशित किया। यह ग्रन्थ प्रधानतया ऐतिहासिक प्रबन्धों का सङ्ग्रह रूप है। इसमें सिद्धराज जयसिंह एवं कुमारपाल के समय का वर्णन आधारभूत और ऐतिहासिक है। इनकी सत्यता शिला लेखों एवं ताम्रपट्टों आदि से सिद्ध होती है। प्रबन्धचिन्तामणि में सिद्धराजादि एवं कुमारपालादि प्रबन्धों में आचार्य हेमचन्द्र के जीवन से सम्बन्धित पर्याप्त जानकारी मिलती है।

श्री प्रभाचन्द्रसूरि विरचित प्रभावक् चरित भी बड़े महत्व का ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इन्होंने आचार्य हेमचन्द्र के 'त्रिषष्ठिशलाका-पुरुषचरित' से प्रेरणा प्राप्त कर हेमचन्द्र के 'परिशष्ठपर्वन्' से आगे आचार्यों का वर्णन प्रारम्भ कर हेमचन्द्रसूरि तक आचार्यों के चरित्र का वर्णन किया है। इसमें तत्कालीन राजाओं के तथा आचार्यों के सम्बन्ध में प्रसंगानुसार ऐतिहासिक विवरण है। महाकवि और प्रभावशाली धर्माचार्यों के सम्बंध में ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत करनेवाला इस कोटि का दूसरा ग्रन्थ नहीं है।

श्री राजशेखरसूरि कृत प्रबन्धकोश बहुत कुछ प्रबन्धचिन्तामणि के

---

१ -प्रबन्धचिन्तामणि -अनु. हजारीप्रसाद द्विवेदी-सिन्धी जैन ग्रन्थमाला, १९४० प्रस्तावना

समान ही है। हेमचन्द्रसूरी के सम्बन्ध में एक जगह ग्रन्थकार स्वयं कहते हैं कि इन आचार्य के जीवन के सम्बन्ध में जो-जो बातें प्रबन्धचिन्तामणि ग्रन्थ में लिखी गईं हैं, उनका वर्णन करना चर्वित-चर्वण मात्र होगा[१]। हम यहाँ पर कुछ नवीन विवरण ही प्रस्तुत करना चाहते हैं। फिर भी प्रबन्धचिन्तामणी की अपेक्षा अनेक विशिष्ट और विश्वसनीय बातों का इसमें सङ्कलन है। इसमें 'हेमसूरि प्रबन्ध' आचार्य हेमचन्द्र के जीवन से सम्बन्धित है।

'पुरातन प्रबन्ध सङ्ग्रह' ऐतिहासिक प्रबन्धों एक का संङ्ग्रह है जो 'प्रबन्ध चिन्तामणि' से सम्बद्ध है। इसमें हेमचन्द्र के जीवन का विशद रुप से वर्णन किया गया है। उनके विषय में किंवदन्तियों का भी यहाँ संङ्ग्रह किया गयाहै। 'पुरातन प्रबन्ध-संङ्ग्रह' के हेमचन्द्रसूरि के प्रबन्धों में ५८, ५९, ६०, ६१ तथा ६३ संख्या के प्रकरणों और 'प्रबन्धकोश संङ्ग्रह' के ८३, ८४, ८५ तथा ८६ प्रकरणों में समानता है। अतः 'पुरातनप्रबन्ध संङ्ग्रह' हेमचन्द्र का जीवन लिपि-बद्ध करने में अत्यन्त सहायक है। सम्भवतः डॉ. बूल्हर अपने ग्रन्थ में इसका उपयोग नहीं कर पाये।

आचार्य जिनमण्डनोपाध्याय के 'कुमारपाल प्रबन्ध' में विशेष रुप से कुमारपाल द्वारा मान्य हिंसाऽहिंसा का वर्णन है। इसमें हेमचन्द्र-विषयक कोई नवीन जानकारी नहीं है। प्रबन्धकोश में वर्णित जानकारी ही इन्होंने भी दी है। इसके साथ ही जयसिंहसूरि तथा चारित्र सुन्दरगणि का 'कुमारपाल चरित' भी देखने योग्य है। चन्द्रसूरि का 'मुनिसुव्रतस्वामिचरित' भी इस दृष्टि से उपादेय है।

इतने विश्वसनीय ग्रन्थ होते हुए भी श्री सोमप्रभाचार्य विरचित 'कुमारपाल प्रतिबोध' तथा यशःपाल के 'मोहराजपराजय' के बिना आचार्य हेमचन्द्र का जीवन प्रामाणिकता से नहीं लिखा जा सकता। समकालीन होने से इन दोनों का महत्त्व कहीं अधिक है। श्री सोमप्रभसूरि तथा यशपाल दोनों ही हेमचन्द्र के लघुवयस्क समकालीन थे। 'मोहराजपराजय' नाटक में हेमचन्द्र के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है, यद्यपि चरित्राङ्कन करना उसका ध्येय नहीं है। विशेष रुप से हेमचन्द्र के उपदेश प्रभाव से तत्कालीन राजा कुमारपाल ने किस

---

१ -किं चर्वित चर्वणेन ? नवीनास्तु केचन प्रबन्धाः प्रकाश्यन्ते
प्रबन्धकोशः हेमचन्द्रसूरि प्रबन्ध-१०

प्रकार व्यसनों को छोड़कर वैराग्य धारण किया, इसका वर्णन 'मोहराजपराजय' में पाया जाता है। सोमप्रभसूरि के 'कुमारपाल प्रतिबोध' में हेमचन्द्र द्वारा कुमारपाल के लिये समय-समय पर दिया हुआ उपदेश सङ्ग्रहीत है। लेखक का मत है कि यद्यपि सामग्री बहुत है फिर भी केवल जैन धर्मानुकूल सामग्री का ही उपयोग किया गया है, जैसे पाकशाला में अनेक पदार्थ होने पर भी कोई अपनी रुचि के अनुसार ही पदार्थ ग्रहण करता है[1]। यह ग्रन्थ हेमचन्द्र की मृत्यु के ग्यारह-बारह वर्ष पश्चात् ही प्रकाशित हुआ। लोकश्रुति है कि इस ग्रन्थ की रचना हेमचन्द्र के निवासगृह में ही की गयी थी तथा उनके तीन शिष्यों ने इसका सम्पूर्ण पाठ सुना था। अतः हेमचन्द्र के जीवनचरित्र के विषय में यह ग्रन्थ सबसे अधिक प्रामाणिक माना जाना चाहिये, किन्तु खेद है कि केवल इसके आधार पर अचार्यजी का जीवन-चरित्र लिपिबद्ध करना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है। इस ग्रन्थ में उनके धर्मोपदेश का ही विशेष वर्णन है तथा जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएँ छोड़ दी गई हैं और कुछ घटनाओं का काव्यमय अतिरञ्जित वर्णन किया गया है। अतः आचार्य हेमचन्द्र का जीवन-चरित्र लिखने के समय श्री सोमप्रभसूरि के ग्रन्थ को आधार मानकर दूसरे अन्य लेखकों द्वारा निर्दिष्ट सामग्री का उपयोग करना भी आवश्यक प्रतीत होता है।

जीवन-चरित—

आचार्य हेमचन्द्र का जन्म गुजरात में अहमदाबाद से साठ मील दूर दक्षिण-पश्चिम में स्थित 'धुन्धुका' नगर में वि. सं. ११४५ में कार्तिकी पूर्णिमा की रात्रि में हुआ था[2]। संस्कृत ग्रन्थ में इसे 'धुन्धुकक नगर' या 'धुन्धुकपुर' भी कहा गया है। यह प्राचीन काल में सुप्रसिद्ध एवं समृद्धिशाली नगर था। इनके माता-पिता मोढ़ वंशीय वैश्य थे[3]। पिता का नाम 'चाचिग अथवा चाच' और

१-कुमारपाल प्रतिबोध—गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज बड़ौदा १९२० पृष्ठ ३-श्लोक ३०-३१

२-प्रभावक् चरित-प्रभाचन्द्रसूरि-हेमसूरि प्रबन्ध, श्लोक ११-१२ धुन्धुक्क-पुरातन प्रबन्ध संग्रह, धुन्धुक्कपुर-प्रबन्धकोश, धुन्धुकक-प्रबन्ध चिन्तामणि बन्धूक—प्रभावक्चरित।

'बंधूकमिव बन्धूकं देशे तत्रास्ति सत्पुरम्'

३-मोढ़कुले-पुरातन प्रबन्ध सङ्ग्रह, मोढ़ ज्ञातीय-प्रबन्धकोश, मोढ़वंशे—प्रबन्धचिन्तामणि,

माता का नाम 'पाहिणी देवी था'[१]। पिता के चाच्च, चाच, चाचिग ये तीनों नाम मिलते हैं। इनके वंशजों का निकास (निष्क्रमण) मोढ़ेरा ग्राम से हुआ था। अतः यह मोढ़वंशीय कहलाये। आज भी इस वंश के वैश्य 'श्री मोढ़ बणिये' कहे जाते हैं। इनकी कुलदेवी 'चामुण्डा' और कुलयक्ष 'गोनस' था। माता-पिता ने देवता-प्रीत्यर्थ उक्त दोनों देवताओं के आद्यन्तक्षर लेकर बालक का नाम चाङ्गदेव रखा। अतः आचार्य हेमचन्द्र का मूलनाम चाङ्गदेव पड़ा[२]। माता-पिता के सम्प्रदाय के विषय में कुछ सङ्केत मात्र प्राप्त होते हैं। राजशेखरसूरि के प्रबन्धकोश के अनुसार बालक चाङ्गदेव की माता पाहिणी और मामा नेमिनाग दोनों ही जैन धर्मावलम्बी थे[३]। इसकी पुष्टि 'कुमारपाल प्रबन्ध में' जिनमण्डनोपाध्याय ने भी की है। पुरातन प्रबन्ध सङ्ग्रहकार तथा मेरुतुङ्गाचार्य दोनों इस विषय में मौन है, किन्तु इनके पिता को मिथ्यात्वी कहा गया है[४]। प्रबन्ध-चिन्तामणि के अनुसार इनके पिता शैव प्रतीत होते हैं, क्योंकि उदयनमन्त्री द्वारा रुपये दिये जाने पर उन्होंने 'शिव निर्मल्य' शब्द का व्यवहार किया है और उन रुपयों को शिवनिर्माल्य के समान त्याज्य कहा है[५]। कुलदेवी का चामुण्डा होना भी यह सङ्केत करता है कि वंश-परम्परा से इनका परिवार शिव-पार्वती का उपासक था। गुजरात में ग्यारहवीं शती में शैव-मत की प्रधानता रही है क्योंकि चालुक्यों के समय में गुजरात में गांव-गांव में सुन्दर शिवालय सुशोभित थे। संध्या समय उन शिवालयों में होने वाली शंख ध्वनि और घण्टानाद से सारा गुजरात गुञ्जित हो जाता था।

पाहिणी के जैन धर्मावलम्बिनी और चाचिग के शैव धर्मावलम्बी होकर एक साथ रहने में कोई विरोध नहीं आता है। प्राचीनकाल में दक्षिण भारत

१-चाहिणी-कुमारपाल प्रतिबोध, तथा पुरातन प्रबन्ध सङ्ग्रह, गेहिनि पाहिनि तस्य देहिनी मन्दिरेन्दरा—प्रभावक् चरित श्लोक-८४८ पृष्ठ ३३७, चङ्गी-वीर वंशावलि-साहित्य संशोधक त्रैमासिक खण्ड १ अंक ३ पुनः

२-कुमारपाल प्रतिबोध पृष्ठ ४७८, बॉम्बे गज़ीटियर पेज १९१। प्रबन्धचिन्तामणि-हेमप्रभसूरि चरित्रम् पृष्ठ ८३।

३-एकदा नेमिनाग नाम्ना....दीक्षा याचते। प्रवन्धकोश हेमसूरि प्रबन्ध।

४-पुरातन प्रबन्ध सङग्रह तथा प्रबन्ध चिन्तामणि, पृष्ठ ७५, ७७ तथा ८३।

५-प्रबन्ध चिन्तामणि हेमसूरि चरित्रम्,....चाचिगः तं वृतान्तं....शिवनिर्माल्य मिवास्पृश्यो मे द्रव्य-संचयः।

और गुजरात में ऐसे अनेक परिवार थे जिनमें पत्नी और पति का धर्म भिन्न था। स्वयं गुजरात के राजा सिद्धराज जयसिंह की माता जैन थी और वह स्वयं शैव धर्मावलम्बी था[1]। सोमप्रभसूरि ने हेमचन्द्र के पिता के विषय में इतना ही कहा है कि वे देव और गुरुजन की अर्चा करने वाले थे[2]। उसी प्रकार माता के विषय में वे केवल शील का वर्णन करते हैं। प्रबंधों में उल्लेख प्राप्त होता है कि आचार्य हेमचन्द्र अपने समय के बहुत बड़े आचार्य थे अतः उनकी माता को भी उच्चासन मिलता था। बहुत सम्भव है, माता ने बाद में जैन धर्म की दीक्षा ले ली हो। हेमचन्द्र के मामा नेमिनाग अवश्य जैन अथवा जैन धर्मानुरागी मालुम पड़ते है[3]।

'कुमारपाल प्रतिबोध' में श्री सोमप्रभसूरि ने आचार्य हेमचन्द्र के जन्म की कोई तिथि नहीं दी है। धुन्धुका में जन्म हुआ अथवा अन्यत्र इस विषय में भी उनका कथन स्पष्ट नहीं है। उनके पास हेमचरित्र विषयक सामग्री पर्याप्त थी किन्तु उस सामग्री में से उन्होंने रसानुकूल एवं जैन-धर्मानुकूल सामग्री का ही उपयोग किया है। इसलिये हमारे चरित्र नायक के विषय में बहुत सा वृतान्त गूढ़ भी रह गया है।

बालक चाङ्गदेव जब गर्भ में था तब माता ने आश्चर्यजनक स्वप्न देखे थे। राजशेखर के अनुसार हेमचन्द्र के मामा नेमिनाग ने अपनी बहन का स्वप्न गुरुदेव के सम्मुख कह सुनाया, "जब चाङ्गदेव गर्भ में था तब मेरी बहन ने स्वप्न में एक आम का सुन्दर वृक्ष देखा था, जो स्थानान्तर में बहुत फलवान होता हुआ दिखलाई पड़ा। इस पर देवचन्द्र गुरू ने कहा कि उसे सुलक्षण सम्पन्न पुत्र होगा जो दीक्षा लेने योग्य होगा"[4]। सोमप्रभसूरि भी ऐसे स्वप्नों का वर्णन करते हैं। एक बार आचार्य देवचन्द्र धर्मप्रचारार्थ धुन्धुका आये तब हेमचन्द्र की माता पाहिणी ने कहा—"मैंने स्वप्न में ऐसा देखा है कि मुझे चिन्तामणि रत्न

1-गुजरात एण्ड इट्स लिटरेचर—के० एम० मुन्शी, अध्याय-4 हेम एन्ड हिज टाईम्स।

2-"कयदेव गुरूजण्च्चो चच्चो"-कुमारपाल प्रतिबोध।

3-प्रबन्ध चिन्तामणि पृष्ठ 83-जैन सिन्धी ग्रन्थमाला।

4-प्रबन्धकोश-हेमसूरि प्रबन्ध-अस्मिंश्च गर्भस्थे मम भगिन्या.......
महत्पात्रमसी योग्यःसुलक्षणो दीक्षणीयः'

प्राप्त हो गया है जो मैंने आपको दे दिया"। गुरूजी ने कहा कि इस स्वप्न का यह फल है कि तेरे एक चिन्तामणि-तुल्य[२] पुत्र होगा, परन्तु गुरू को सौंप देने से वह सूरिराज होगा, गृहस्थ नहीं। इससे यह सिद्ध होता है कि आचार्य हेमचन्द्र अपनी मृत्यु के बारह वर्ष पश्चात् ही दैवी पुरुष बन गये जिनके विषय में अद्भुत किंवदन्तियाँ लोगों में प्रचलित हो गयीं थीं[१]। स्वप्न के सम्बन्ध में अन्य ग्रन्थों में भी वर्णन मिलता है। 'प्रभावक् चरित' के अनुसार भी पाहिणी ने गर्भावस्था में स्वप्न में देखा कि उसने चिन्तामणि रत्न अपने आध्यात्मिक परामर्शदाता गुरु को सौंप दिया[२]। उसने यह स्वप्न साधु देवचन्द्राचार्य के सम्मुख कह सुनाया। साधु देवचन्द्र ने इस स्वप्न का विश्लेषण करते हुए कहा कि उसे एक ऐसा पुत्र-रत्न प्राप्त होगा जो जैन-सिद्धान्त का सर्वत्र प्रचार एवं प्रसार करेगा[३]। इस प्रकार हेमचन्द्र के जन्म के पूर्व ही उनकी भवितव्यता के शुभ लक्षण प्रकट होने लगे थे। महापुरुष के जन्म के पूर्व इस प्रकार शुभ लक्षण प्रकट होने की परम्परा भारतवर्ष में रही है। माता पिता की ओर से उत्कृष्ट संस्कार जिसे प्राप्त हैं, वह सन्तान युगप्रवर्तक निकलती है।

बाल्यकाल:—शिक्षा दीक्षा एवं आचार्यत्व ।

शिशु चाङ्गदेव बहुत होनहार था। गौतमबुद्ध के समान शैशवकाल से ही धर्म के अतिरिक्त किसी विषय में बालक चाङ्गदेव का मन नहीं रमता था। वह अपनी माता के साथ मन्दिर जाया करता था एवं प्रवचनों का श्रवण करता था। श्री सोमप्रभसूरि के अनुसार एक बार पूर्णतलगच्छ के देवचन्द्रसूरि विहार करते हुए धुन्धुका आये। वहाँ चाङ्गदेव तथा उसकी माता चाहिनी (पाहिणी) ने देवचन्द्र के उपदेशों को ध्यान से सुना[४]। उपदेशों से प्रभावित होकर वणिक कुमार चाङ्गदेव ने प्रार्थना की "भगवन् सुचारित्र रूपी जलयान द्वारा इस संसार समुद्र से पार लगाइये"। तब मामा नेमिनाग ने गुरु से चाङ्गदेव का परिचय कराया। बालक का साधु बनने का निश्चय हो गया था। गुरु देवचन्द्र ने भी दीक्षा के लिये चाङ्गदेव की मांग की, किन्तु वे पिता की आज्ञा अवश्य चाहते थे।

१-कुमारपाल प्रतिबोध:,पृष्ठ ४७८

२-प्रभावक् चरित,पृष्ठ २९८, श्लोक २७ से ४५ गा०, ओ०, सी० १९२०

३-जैन शासन पायोधि कौस्तुभः—संभवी सुत।
तवस्तवकृतोयस्य देवा अपि सुवृत्ततः ॥१६॥ प्रभावक् चरित-हेमसूरि प्रबन्ध

४-कुमारपाल प्रतिबोध:, गा० ओ० सी० १९४०। पृष्ठ २१-२२

पिता ने सन्तान मोहवश स्वेच्छा से अनुमति नहीं दी। इसलिये चाङ्गदेव मामा की अनुमति से चल पड़ा तथा मुनि देवचन्द्र के साथ हो गया और उनके साथ स्तम्भतीर्थ (खम्भात) गया। इस प्रकार सोमप्रभसूरि के अनुसार चाङ्गदेव को पिता की अनुमति नहीं मिली थी। माता की सम्मति के विषय में वे मौन हैं। उनके अनुसार बालक चाङ्गदेव स्वयम् ही दीक्षा के लिये दृढ़ था। इस कार्य में चाङ्गदेव के मामा ने उसे अश्वयमेव प्रोत्साहन दिया। पांच या आठ वर्ष के बालक के लिये ऐसी दृढ़ता शंका का विषय है और इस शंका का मनोविज्ञान की दृष्टि से शायद निराकरण हो सकता है। सम्भव है केवल साहित्य की छटा लाने के लिये सोमप्रभसूरि ने यह वर्णन किया हो। खम्बात में जैन संघ की अनुमति से चाङ्गदेव को दीक्षा दी गई और उनका नाम सोमचन्द्र रखा गया तदन्तर तपश्चर्या में लीन हेमचन्द्र ने थोड़े ही दिनों में अपार ज्ञान राशि संचित की। गुरुजी ने उन्हें सभी श्रमणों के नेता, गान्धार अथवा आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। सचमुच हेमचन्द्र में कुछ अलौकिक शक्तियाँ विद्यमान थी। सोमचन्द्र का शरीर सुवर्ण के समान तेजस्वी एवं चन्द्रमा के समान सुन्दर था। इसलिये वे हेमचन्द्र कहलाये। श्री कृष्णमाचारियर के अनुसार एक बार सोमचन्द्र ने शक्ति प्रदर्शन के लिये अपने बाहू को अग्नि में रख दिया। लेकिन आश्चर्यजनक रूप से सोमचन्द्र का जलता हाथ सोने का बन गया। इस घटना के पश्चात् सोमचन्द्र हेमचन्द्र के नाम से प्रसिद्ध हो गये[1]।

मेरूतुङ्गसूरि के 'प्रबन्धचिन्तामणि' में यही वृत्तान्त कुछ रूपान्तर में मिलता है। एक समय श्री देवचन्द्राचार्य अणहिलपत्तन से प्रस्थान कर तीर्थ यात्रा के प्रसंग में धुन्धुका पहुँचे और वहाँ मोढ़वंशियों की वसही-जैन मन्दिर में देव-दर्शन के लिये गये। उस समय शिशु चाङ्गदेव की आयु आठ वर्ष की थी। खेलते-खेलते अपने समवयस्क बालकों के साथ चाङ्गदेव वहाँ आ गया और अपने बालचापल्य स्वभाव से देवचन्द्राचार्य की गद्दी पर बड़ी कुशलता से जा बैठा। उसके अलौकिक शुभ लक्षणों को देखकर आचार्य कहने लगे, 'यदि यह बालक क्षत्रियोत्पन्न है तो अवश्य सर्वभौमराजा बनेगा। यदि यह वैश्य अथवा विप्र

1—"To demonstrate his powers he set his arms in a blazing fire and his father found to his surprise the flashing arm turned into gold," — History of classical sanskrit literature krishanmacharior, Page 173–174

कुलोत्पन्न है तो महामात्य बनेगा और यदि कहीं इसने दीक्षा ग्रहण करली तो युग-प्रधान के समान अवश्य इस युग में कृतयुग की स्थापना करने वाला होगा'। चाङ्गदेव के सहज साहस, शरीर सौष्ठव, चेष्टा, प्रतिभा एवं भव्यता ने आचार्य के मन पर गहरा प्रभाव डाला और वे सानुराग उस बालक को प्राप्त करने की अभिलाषा से उस नगर के व्यावहारिकों को साथ ले स्वयं चाचिग के निवास-स्थान पर पधारे। उस समय चाचिग यात्रार्थ बाहर गये हुए थे। अतः उनकी अनुपस्थिति में उनकी विवेकवती पत्नी ने समुचित स्वागत-सत्कार द्वारा अतिथियों को सन्तुष्ट किया[1]।

आचार्य देवचन्द्र ने चाङ्गदेव को प्राप्त करने की अभिलाषा प्रकट की। आचार्य द्वारा पुत्रयाचना की बात जानकर पुत्र गौरव से अपनी आत्मा को गौरवान्वित समझ कर प्रज्ञावती हर्ष-विभोर हो अश्रुपात करने लगी। पाहिणी देवी ने आचार्य के प्रस्ताव का हृदय से स्वागत किया और वह अपने "अधिकार की सीमा का अवलोकन कर लाचारी प्रकट करती हुई बोली, "प्रभो! सन्तान पर माता पिता दोनों का अधिकार होता है, गृहपति बाहर गये हुए हैं, वे मिथ्यादृष्टि भी हैं, अतः मैं अकेली इस पुत्र को कैसे दे सकूँगी?" पाहिणी के इस कथन को सुनकर प्रतिष्ठत् सेठ साहूकारों ने उत्तर दिया। "तुम इसे अपने अधिकार से गुरुजी को दे दो। गृहपति के आने पर उनसे भी स्वीकृति ले ली जायगी"। पाहिणी ने उपस्थित जन-समुदाय का अनुरोध स्वीकार कर लिया और अपने पुत्ररत्न को आचार्य को सौंप दिया[2]। आचार्य इस प्रभविष्णु पुत्र को प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने बालक से पूछा 'वत्स! तू हमारा शिष्य बनेगा'? चाङ्गदेव ने उत्तर दिया 'जी हाँ अवश्य बनूँगा'। इस उत्तर से आचार्य अत्यधिक प्रसन्न हुए। उनके मन में यह आशंका बनी हुई थी कि चाचिग यात्रा से वापिस लौटने पर कहीं इसे छीन न लें। अतः वे उसे अपने साथ ले जाकर कर्णावती पहुँचे और वहाँ उदयन मन्त्री के पास उसे रख दिया। उदयन उस समय जैन संघ का सबसे बड़ा प्रभावशाली व्यक्ति था। अतः उसके

१-सच अष्टवर्ष देश्यः·········विवेकिन्या स्वागतादिभिः परितोषितः। प्रबन्धचिन्तामणि-हेमसूरिचरित्रम् पृष्ठ ८३।
धुन्धुक के चाचिग चाहिणी······मात्रा स्वागतादिना श्री संघस्तोषित पुरातन प्रबन्ध सङ्ग्रह हेमसूरि प्रबन्ध।

२-केवलं पित्रोरनुज्ञां·········दीक्षां ललौ—प्रबन्धकोष हेमसूरिप्रबन्ध-१०

संरक्षण में चाङ्गदेव को रखकर आचार्य देवचन्द्र निश्चिन्त होना चाहते थे[१]।

चाचिग जब प्रवास से लौटा तो वह अपने पुत्र सम्बन्धी घटना को सुनकर बहुत दुखी हुआ तथा तत्काल कर्णावती की ओर चल दिया। पुत्र के अपहार से वह दुखी था, अतः गुरु देवचन्द्राचार्य की भी पूरी भक्ति न कर सका। ज्ञानराशि आचार्य तत्काल उसके मन की बात समझकर उसका मोह दूर करने के लिये अमृतमयी वाणी में उपदेश देने लगे। इसी बीच आचार्य ने उदयन मन्त्री को अपने पास बुला लिया और मन्त्रिवर ने बड़ी चतुराई के साथ चाचिग से वार्तालाप किया और धर्म के बड़े भाई होने के नाते श्रद्धापूर्वक अपने घर ले गया और बड़े सत्कार के साथ उसे भोजन कराया। तदनन्तर उसकी गोद में चाङ्गदेव को बिठा कर पञ्चाङ्ग सहित तीन दुशाले और तीन लाख रुपये भेंट किये[२]। कुछ तो गुरु के उपदेश से चाचिग का चित्त द्रवीभूत हो गया था और अब इस सम्मान को पाकर वह स्नेहविह्वल होकर बोला, "आप तो ३ लाख रुपये देते हुए उदारता के छल में कृपणता प्रकट कर रहे हैं। मेरा पुत्र अमूल्य है। परन्तु साथ ही, मैं देखता हूं कि आपकी भक्ति उसकी अपेक्षा कहीं अधिक अमूल्य है अतः इस बालक के मूल्य में अपनी भक्ति ही रहने दीजिये। आपके द्रव्य का तो मैं शिवनिर्माल्य के समान स्पर्श भी नहीं कर सकता"। चाचिग के इस कथन को सुनकर उदयन मन्त्री बोला "आप अपने पुत्र को मुझे सौंपेंगे, तो उसका कुछ भी अभ्युदय नहीं हो सकेगा, परन्तु यदि इसे आप पूज्यपाद गुरुवर्य के चरणारविन्द में सर्मपित करेंगे तो वह गुरुपद प्राप्त कर बालेन्दु के समान त्रिभुवन में पूज्य होगा। अतः आप सोच विचार कर उत्तर दीजिये। आप पुत्र-हितैषी हैं, साथ ही आप में धर्म संस्कृति के संरक्षण की ममता भी है"। मन्त्री के इन वचनों को सुनकर चाचिग ने कहा, "आपका वचन ही प्रमाण है। मैंने अपने पुत्र रत्न को गुरुजी को भेंट कर दिया"। देवचन्द्राचार्य इन वचनों को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और धर्म प्रचार की महत्त्वकांक्षा से उनका मुखकमल विकसित हो गया। इसके पश्चात् उदयन मन्त्री के सहयोग से चाचिग ने चाङ्गदेव का दीक्षा

१-तैः गुरुभि····पाल्यमान—प्रबन्धचिन्तामणि।

आचार्यःप्रश्ने····बान्धवभक्त्या प्रीत—पुरातन प्रबन्ध सङ्ग्रह।

२-तावदा ग्रामान्तरादागत····अस्पृश्यो मे द्रव्यसञ्चय—प्रबन्धचिन्तामणि।

तदनु चाङ्गदेवं तदुत्सङ्गे निवेश्य···ततो गुरुभ्योददौ—पुरातन प्रबन्ध सङ्ग्रह।

महोत्सव सम्पन्न किया[1]। चतुर्विध सङ्घ के समक्ष देवचन्द्राचार्य ने स्तम्भतीर्थ के पार्श्वनाथ चैत्यालय में धूमधामपूर्वक दीक्षा संस्कार सम्पादित किया और चाङ्गदेव को दीक्षानाम सोमचन्द्र दिया[2]। बाद में वह बालक प्रतिभायुक्त होने के कारण अगस्त्य ऋषि के समान समस्त वाङ्मयरुप समुद्र को चुल्लू में रखकर पी गया। गुरु के दिये हुए हेमचन्द्र नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह ३६ सूरिगुणों से अलङ्कृत सूरिपद पर अभिषिक्त हुआ।

उपाध्याय जिनमण्डन के अनुसार एक बार जब चाङ्गदेव गुरु देवचन्द्रसूरि के आसन पर जा बैठा तब उन्होंने माता पाहिणी से कहा "सुश्राविके! तूने एक बार जो स्वप्न की चर्चा की थी उसका फल आँखों के सामने आ गया है[3]"। तदनन्तर देवचन्द्र सङ्घ के साथ चाङ्गदेव की याचना करने के लिये पाहिणी के निवास स्थान पर गये। पाहिणी ने घरवालों का विरोध सहकर भी अपना पुत्र देवचन्द्र को सौंप दिया[4]।

राजशेखरसूरि के प्रबन्धकोश के अनुसार आचार्य देवचन्द्र की धर्मोपदेश सभा में नेमिनाग नामक श्रावक ने उठकर कहा कि 'भगवन्, यह मेरा भान्जा आपका उपदेश सुनकर प्रबुद्ध हो दीक्षा माँगता है। जब यह गर्भ में था तब मेरी बहन ने स्वप्न देखा था'। गुरुजी ने कहा 'इसके माता-पिता की अनुमति आवश्यक है।' इसके पश्चात् मामा नेमिनाग ने बहन के घर पहुँच कर भानजे के व्रत के लिये याचना की। माता-पिता के विरोध करने पर भी चाङ्गदेव ने दीक्षा धारण करली[5]।

प्रभावक्चरित के अनुसार जब चाङ्गदेव पाँच वर्ष का हुआ तब वह अपनी माता के साथ देव मन्दिर में गया। वहाँ माता पूजा करने लगी तो वह आचार्य देवचन्द्र की गद्दी पर जाकर बैठ गया। आचार्य ने पाहिणी को स्वप्न की याद दिलाई और उसे आदेश दिया कि वह अपने पुत्र को शिष्य के रुप में उन्हें समर्पित करदे। पाहिणी ने अपने पति की ओर से कठिनाई उपस्थित होने

१-इत्थं चाचिगे···मुमुदेतराम — प्रबन्धचिन्तामणिक — कुमारपालादि प्रबन्ध।
२-चतुर्विध सङ्घ ···श्रावक, श्राविका, साधु, साध्वी।
३-प्रभावक्चरितम्——हेमचन्द्रसूरि प्रबन्धम् श्लोक ३६।
४-कुमारपाल प्रबन्ध श्लोक, ४५—५०।
५-प्रबन्ध कोश-१० हेमसूरिप्रबन्ध।

की बात कही। इस पर देवचन्द्राचार्य मौन हो गये। तब पाहिणी ने अनिच्छापूर्वक अपना पुत्र आचार्य को भेंट कर दिया। तत्पश्चात् देवचन्द्र बालक को अपने साथ स्तम्भ तीर्थ ले गये। यह स्तम्भ तीर्थ आजकल खम्बात कहलाता है। यह दीक्षा संस्कार वि० सं० ११५० में माघ शुक्ल चतुर्दशी शनिवार को हुआ[1]।

ज्योतिष के अनुसार कालगणना करने पर माघ शुक्ल चतुर्दशी को शनिवार वि० सं० ११५४ में पड़ता है, वि० सं० ११५० में नहीं। अतः प्रभावक्चरित का उक्त संवत् अशुद्ध मालूम पड़ता है। जिनमण्डन कृत 'कुमारपाल प्रबन्ध' में वि०सं० ११५४ ही दिया है। दीक्षा देने के समय हेमचन्द्र की आयु सम्भवतः आठ वर्ष की रही होगी। जैन शास्त्रों के अनुसार दीक्षा के समय ८ वर्ष की आयु ही होनी चाहिये। 'प्रबन्धचिन्तामणि', 'प्रबन्धकोश', 'पुरातन प्रबन्ध सङ्ग्रह' आदि ग्रन्थ दीक्षा के समय हेमचन्द्र की आयु आठ वर्ष की ही बताते हैं। अतः दीक्षा समय सं० ११५४ ही उपयुक्त प्रतीत होता है। वि०सं० ११५० में हेमचन्द्र कर्णावती पहुँचे तथा माता-पिता की अनुमति प्राप्त करने में तीन वर्ष लग गये हों, यह अनुमान अपेक्षाकृत सत्य एवं सन्तुलित प्रतीत होता है। इस विषय में प्रो० पारीख ने श्री बूल्हर के मत का जो खण्डन किया है वह उचित प्रतीत होता है। श्री पारीख का ऐसा अनुमान है कि धुन्धुका में आचार्य देवचन्द्र की दृष्टि चाङ्गदेव पर विक्रम सम्वत् ११५० में पड़ी होगी। 'प्रबन्ध-चिन्तामणि' के अनुसार चाङ्गदेव प्रथम देवचन्द्रसूरि के साथ कर्णावती आया। वहाँ उदयन मन्त्री के पुत्रों के साथ उसका पालन हुआ। अन्त में चच्च या चाचिग के हाथों ही दीक्षा महोत्सव खम्बात में सम्पन्न हुआ। उस समय हेमचन्द्र की आयु आठ वर्ष की रही होगी। पिता की आज्ञा की प्रतीक्षा में तीन वर्ष लग जाना स्वाभाविक बात है[2]।

दीक्षित होने के उपरान्त सोमचन्द्र का विद्याध्ययन प्रारम्भ हुआ। उन्होंने तर्क, लक्षण एवं साहित्य विद्या पर बहुत थोड़े ही समय में अधिकार प्राप्त कर लिया[3]। तर्क, लक्षण और साहित्य उस युग की महाविद्याएँ थी और

१-प्रभावक्चरित, पृष्ठ ३४७, श्लोक ८४८

२-काव्यानुशासन प्रस्तावना–पृष्ठ २६७-६८, महावीर विद्यालय, बम्बई

३-सोमचन्द्र स्ततश्चन्द्रोज्जवल प्रज्ञा बलादसौ।
तर्क लक्षण साहित्य विद्याः पर्यच्छिनदद्रुतम्। प्रभावक्चरितम्–
हेमचन्द्रसूरि प्रबन्धम्–श्लोक ३७

इस महत्त्रयी का पाण्डित्य राजदरबार और जनसमाज में अग्रगण्य होने के लिये आवश्यक था। इन तीनों में हेमचन्द्र को अनन्य पाण्डित्य था। यह उनके उस विषय के ग्रन्थों से स्पष्ट दिखाई देता है। सोमचन्द्र की शिक्षा का प्रबन्ध स्तम्भतीर्थ में उदयन मन्त्री के घर ही हुआ था। प्रो० पारीख के मत से हेमचन्द्र ने गुरु देवचन्द्र के साथ देश-देशान्तर परिभ्रमण कर शास्त्रीय एवं व्यावहारिक ज्ञान की अभिवृद्धि की[1]। 'प्रभावक्चरित' के अनुसार आचार्य देवचन्द्रसूरि ने सात वर्ष आठ मास एक स्थान से दूसरे स्थान परिभ्रमण करते हुए और चार मास किसी सद्गृहस्थ के यहाँ निवास करते हुए व्यतीत किये। सोमचन्द्र भी बराबर उनके साथ रहे। अतः वे अल्पायु में ही शास्त्रों में तथा व्यावहारिक ज्ञान में निपुण हो गये। डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री के मतानुसार[2] हेमचन्द्र नागपुर (नागौर मारवाड़) में धनद नामक सेठ के यहाँ तथा देवचन्द्रसूरि और मलयगिरि के साथ गौड़ देश के खिल्लर ग्राम गये थे तथा स्वयं काश्मीर गये थे। २१ वर्ष की अवस्था में ही इन्होंने समस्त शास्त्रों का मंथन कर अपने ज्ञान की वृद्धि की। अतः नागपुर के धनद नामक व्यापारी ने विक्रम सं० ११६६ में सूरिपद प्रदान महोत्सव सम्पन्न किया। इस प्रकार २१ वर्ष की अवस्था में सूरिपद को प्राप्त कर आचार्य हेमचन्द्र ने साहित्य और समाज की सेवा करना आरम्भ किया। इस नवीन आचार्य की विद्वता, तेज, प्रभाव और स्पृहणीय गुण, दर्शकों को सहज ही में अपनी ओर आकृष्ट करने लगे। 'प्रभावक्चरित' के अनुसार सोमचन्द्र के हेमचन्द्रसूरि बनने के पश्चात् उनकी माता ने भी जैन धर्म की दीक्षा ग्रहण की और पुत्र के आग्रह पर वह सिंहासन पर बैठायी गयीं। (श्लोक ६१-६३)

जिसकी विद्या प्राप्ति इतनी असाधारण थी उसने विद्याभ्यास किससे कहाँ और कैसे किया! यह कुतूहल स्वाभाविक है। परन्तु इस विषय में आवश्यक ज्ञातव्य सामग्री उपलब्ध नहीं है। उनके दीक्षा गुरु देवचन्द्रसूरि स्वयं विद्वान् थे। स्थानाङ्गसूत्र पर उनकी टीका प्रसिद्ध है।

आचार्य हेमचन्द्र के गुरु कौन थे, इस विषय में कुछ मतभेद हैं। डॉ० बूल्हर का मत है कि उन्होंने अपने गुरु का नामोल्लेख किसी भी कृति में नहीं

१-काव्यानुशासन की अंग्रेजी प्रस्तावना—प्रो० पारीख।

२-आचार्य हेमचन्द्र और उनका शब्दानुशासन-एक अध्ययन, पृष्ठ १३,
—नेमिचन्द्र शास्त्री।

किया है। यहअसत्य प्रतीत होता है। 'त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित' के १०वें पर्व की प्रशस्ति में आचार्य हेमचन्द्र ने अपने गुरु का स्पष्ट उल्लेख किया है[१]। 'प्रभावक्चरित' एवं 'कुमारपालप्रबन्ध' के उल्लेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि हेमचन्द्र के गुरु देवचन्द्रसूरि ही रहे होंगे। विण्टरनित्ज महोदय ने एक मालाधारी हेमचन्द्र का उल्लेख किया है जो अभयदेवसूरि के शिष्य थे[२]। डॉ० सतीशचन्द्र, आचार्य हेमचन्द्र को प्रद्युम्नसूरि का गुरुबन्धु लिखते है[३]। हेमचन्द्र के गुरु श्री देवचन्द्रसूरि प्रकाण्ड विद्वान् थे[४]। उन्होंने 'शान्तिनाथ चरित' एवं 'स्थानाङ्गवृति' ऐसे दो ग्रन्थ लिखे। अतः इसमें किसी प्रकार की आशङ्का की सम्भावना नहीं है कि हेमचन्द्र को किसी अन्य विद्वान् आचार्य ने शिक्षा प्रदान की होगी। देवचन्द्र ही उनके दीक्षागुरु तथा शिक्षागुरु या विद्यागुरु भी थे। यह सम्भव है कि उन्होंने कुछ अध्ययन अन्यत्र भी किया हो क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ काल उपरान्त हेमचन्द्र का अपने गुरु से अच्छा सम्बन्ध नहीं रहा। इस कारण उन्होंने अपनी कृतियों में गुरु का उल्लेख नहीं किया है। इस सम्बन्ध में श्री मेरुतुङ्गाचार्य ने 'प्रबन्धचिन्तामणि' में एक उपाख्यान दिया है जिससे उनके गुरुशिष्य सम्बन्ध पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। एक बार गुरु देवचंद्र ने हेमचन्द्र को स्वर्ण बनाने की कला बताने से इन्कार कर दिया क्योंकि उसने अन्य सरल विज्ञान की सुचारु रूप से शिक्षा प्राप्त नहीं की थी, अतएव स्वर्णगुटिका की शिक्षा देना उन्होंने अनुचित समझा[५]। हो सकता है, उक्त घटना ही गुरुशिष्य के मनमुटाव का कारण बन गई हो।

१–शिष्यस्तस्य च तीर्थमकमवने पावित्र्यकृज्जङ्गमम्।
सूरर्भू रितपः प्रभाववसतिः श्री देवचन्द्रोऽभवत्।
आचार्यो हेमचन्द्रोऽभूतत्पादाम्बुजषट्पदः
तत्प्रसादादधिगतज्ञानसम्पन्महोदयः॥ त्रि०श०पु०च० प्रशस्ति -श्लोक १४, १५

२–ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर-विण्टरनित्ज, वाल्यूम टू, पृष्ठ ४८२-४८३।

३–दी हिस्ट्री आफ इण्डियन लाजिक, पृष्ठ १०५, –डा० सतीशचन्द।

४–श्रीमान्ध्यन्द्रकुलेऽभवद्गुणनिधिः प्रद्युम्नसूरि प्रभु, बंन्धुर्यस्यच
सिद्धहेमविधये श्री हेमसूर विधिः। उत्पाद सिद्धि प्रकरण टीकायां चन्द्रसेन कृतायाम्।

५–हीरालाल हंसराज कृत जैन इतिहास, भाग १, तथा वीरवंशावलि, पृष्ठ २१६।

'प्रभावक्चरित' से ज्ञात होता है कि हेमचन्द्र ने ब्राह्मीदेवी की, जो विद्या की अधिष्ठात्री मानी गई है-साधना के निमित्त काश्मीर की यात्रा आरम्भ की। वे इस साधना के द्वारा अपने समस्त प्रतिद्वंदियों को पराजित करना चाहते थे। मार्ग में जब ताम्रलिप्त (खम्बात) होते हुए रैवन्तगिरि पहुँचे तो नेमिनाथ स्वामी की इस पुण्य भूमि में इन्होंने योग विद्या की साधना आरम्भ की। नेमितीर्थ में नासाग्रदृष्टियुक्त समाराधना से देवी शारदा प्रसन्न हो गयीं[1]। इस साधना के अवसर पर ही साक्षात् सरस्वती उनके सम्मुख प्रकट होकर कहने लगी "वत्स, तुम्हारी समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण होंगीं। समस्त वादियों को पराजित करने की क्षमता तुम्हें प्राप्त होगी"। इस वाणी को सुनकर हेमचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अपनी आगे की यात्रा बिलकुल स्थगित करदी। वे वापिस लौट आये। ब्राह्मी देवी ने उन्हें काश्मीर जाने के लिये अनुमति नहीं प्रदान की। हेमचन्द्र इस प्रकार देवी की कृपा से सिद्ध सारस्वत बन गये।

काश्मीरवंशिनी ब्राह्मीदेवी की साधना का अर्थ यह है कि हेमचन्द्र ज्ञानवृद्धि करने के लिये काश्मीर जाना चाहते थे। उस समय काश्मीर पण्डितों के लिये प्रसिद्ध था क्योंकि श्री अभिनव गुप्त, मम्मट, आदि उद्भट विद्वान् उस समय काश्मीर में थे। काश्मीरवासिनी देवी की घटना से यद्यपि हेमचन्द्र के काश्मीर जाने की घटना का मेल नहीं बैठता, फिर भी सम्भव है कि उन्होंने काश्मीर के पण्डितों से अध्ययन किया हो। यद्यपि हेमचन्द्र के गुरु देवचन्द्र अत्यन्त विद्वान् थे तथापि उन्होंने ही सारे विषय हेमचन्द्र को पढ़ाये होंगे यह व्यवहार्य प्रतीत नहीं होता। स्तम्भतीर्थ में उन्हें पढ़ने के लिये पर्याप्त सुविधाएँ मिली होंगीं, यह सम्भव है। किन्तु अणहिलपुर के समान विद्या केन्द्र के रूप में स्तम्भ तीर्थ को प्रसिद्धि नहीं मिली। अतः सम्भव है, उन्होंने कुछ समय अणहिलपुर में भी अध्ययन किया हो। ब्राह्मी देवी की घटना से हेमचन्द्र की रचनाओं का काश्मीर ग्रन्थों से सम्बन्ध प्रतीत होता है। काश्मीरी पण्डित उस समय गुजरात में आते-जाते थे, यह बिल्हण के अगमन से ही पता लगता है।

१-प्रबन्धचिन्तामणि हेमसूरिचरितम् ८३-पृष्ठ ७७-९८।

२-प्रभावक्चरित हेमप्रबन्ध श्लोक ३७-४६ तक पृष्ठ २९८-९९

विशेष के लिये लाईफ आफ हेमचन्द्र-द्वितीय अध्याय-डा० बूल्हर तथा प्रो० पारिख कृत काव्यानुशासन की प्रस्तावना पृष्ठ CCLXVI-CCLXIX

"मुद्रित कुमुदचन्द्र" नाटक के अनुसार 'उत्साह' सिद्धराज जयसिंह का एक सभा पण्डित था। इस नाटक के रचयिता यशश्चन्द्र थे तथा यह नाटक वि० सं० ११८१ में खेला गया था। काश्मीरी पण्डितों ने आठ व्याकरणों के साथ 'उत्साह' नामक वैयाकरण को भी भेजा था तथा इन आठ व्याकरणों की सहायता से हेमचन्द्र ने अपना 'शब्दानुशासन' ग्रन्थ पूरा किया था। अतः अनुमान किया जा सकता है कि पं० उत्साह हेमचन्द्र को कुछ मार्गदर्शन मिला हो। काश्मीरी पण्डितों के साथ सम्पर्क की पुष्टि आन्तरिक प्रमाणों के आधार पर भी सिद्ध होती है। यह निर्विवाद है कि हेमचन्द्र का 'काव्यानुशासन' (सूत्र) मम्मट के 'काव्यप्रकाश' पर आधारित है। यह निर्विवाद है। रसशास्त्र पर चर्चा करते हुए 'नाट्यवेदविवृति' से उद्धरण देकर अभिनवगुप्तपादाचार्य का अनुसरण करने के विषय में वे बार-बार कहते हैं। 'काव्यप्रकाश' की प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति (ताड़पत्र पर) वि० सं० १२१५ की अणहिलपट्टन में लिखी गई अर्थात् कुमारपाल के राज्य तक विद्या के सम्बन्ध में काश्मीर और गुजरात का घनिष्ठ सम्बन्ध था।

ब्राह्मी देवी के वरदान से हेमचन्द्र के सिद्ध सारस्वत बनने की घटना भी असम्भव प्रतीत नहीं होती। इसका समर्थन उनके 'अलङ्कारचूड़ामणि' से भी होता है[1]। भारत में कई मनीषी विद्वानों ने मन्त्रों की साधना द्वारा ज्ञान प्राप्त किया है। हम नैषधकार श्री हर्ष तथा महाकवि कालिदास के सम्बन्ध में भी ऐसी बातें सुनते हैं। आचार्य सोमप्रभ के अनुसार हेमचन्द्र विविध देशों में परोपकारार्थ विहार करते रहे; किन्तु बाद में गुरुदेव के निषेध करने पर गुर्जर देश के पाटन नगर में ही भव्य-जनों को जागरित करते रहे। इस वर्णन से यह अनुमान किया जा सकता है कि गुर्जर एवम् पाटन में स्थिर होने के पूर्व भारतवर्ष का भ्रमण आचार्यजी ने किया होगा। आचार्य हेमचन्द्र में 'शतसहस्रपद' धारण करने की शक्ति विद्यमान थी।

राजाश्रय:—हेमचन्द्र और सिद्धराज जयसिंह

आचार्य हेमचन्द्र का गुजरात के राजा सिद्धराज जयसिंह के साथ सर्वप्रथम मिलन कब और कैसे हुआ, इसका सन्तोषजनक विवरण अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है। तर्क, लक्षण और साहित्य ये उस युग की महाविद्याएँ थीं। विद्या-प्राप्ति के हेतु एवं अपने पाण्डित्य की कसौटी पर कसने के लिये आचार्य होने के पूर्व उनका अणहिल्लपुर, पाटन में आना-जाना हुआ हो, यह सम्भव प्रतीत होता है।

---

१. प्रबन्धचिन्तामणि–सिद्धराजादि प्रबन्ध ५३-७६ पृष्ठ ६०

'प्रभावकचरित' एवं 'प्रबन्धचिन्तामणि' के अनुसार कुमुदचन्द्र के लोकविश्रुत शास्त्रार्थ के समय आचार्य हेमचन्द्र सभा-पण्डित के नाते उपस्थित थे। यह शास्त्रार्थ वि० सं० ११८१ में हुआ था[१]।

उस समय उनकी आयु ३६ वर्ष की थी तथा सूरिपद प्राप्त हुए १५ वर्ष व्यतीत हो चुके थे। 'प्रबन्धचिन्तामणि' के अङ्ग्रेजी अनुवादक प्रो० टॉनी के मतानुसार हेमचन्द्र ने सर्वप्रथम अपनी बहुमुखी विद्वत्ता से ही राजा को प्रभावित किया होगा तथा बाद में धार्मिक प्रभाव आया होगा। 'प्रभावकचरित' के अनुसार हेमचन्द्र का सिद्धराज जयसिंह से प्रथम मिलन अणहिलपुर के एक संकरे मार्ग पर हुआ। यहाँ से जयसिंह के हाथी को गुजरने में रुकावट पड़ी और इस प्रसङ्ग पर एक तरफ से हेमचन्द्र ने 'सिद्ध को निश्शंक होकर अपने गजराज को ले जाने के लिये कहा और श्लेष से स्तुति की'[२]। परन्तु इस उल्लेख में कितना ऐतिहासिक तथ्य है, यह कहना कठिन है। 'कुमारपालप्रबन्ध' में उल्लेख प्राप्त होता है कि हेमचन्द्र और जयसिंह का प्रथम समागम इस प्रसङ्ग से पूर्व भी हुआ था।

कहा जाता है कि इस श्लोक को सुनकर जयसिंह प्रसन्न हुए और उन्होंने हेमचन्द्रसूरि को अपने दरबार में बुलाया। यही वृत्तान्त कुछ रूपान्तर से 'प्रबन्धकोश' में मिलता है। 'एक दिन सिद्धराज जयसिंह हाथी पर बैठ कर पाटन के राजमार्ग से विचरण कर रहे थे। उनकी दृष्टि मार्ग में शुद्धिपूर्वक गमन करने वाले हेमचन्द्र पर पड़ी। मुनीन्द्र की शान्त मुद्रा ने राजा को प्रभावित किया और अभिवादन के पश्चात् उन्होंने कहा', "प्रभो! आप राजप्रासाद में पधारकर दर्शन देने की कृपा करें[३]"। तदनन्तर हेमचंद्र ने यथा समय राजसभा

१– प्रबन्धचिन्तामणि–जयसिंहदेव हेमसूरिसमागम : पृष्ठ वही
प्रभावकचरित-हेमचन्द्र : श्लोक ६८–७२

२– कारय प्रसरं सिद्धहस्तिराजमशङ्कितम्।
त्रस्यन्तु दिग्गजाः किं तैर् भूस्त्वयैवोद्धृतायता।१। प्रभावकचरित-श्लोक ६५

३– प्रबन्धचिन्तामणि, पृष्ठ ६७
"ओ सिद्ध, तुम्हारे सिद्ध गज निर्भयता से भ्रमण करें। दिग्गजों को काँपने दो। उनसे क्या लाभ? क्योंकि तुम पृथ्वी का भार वहन कर रहे हो।"

में प्रवेश किया और अपनी विद्वत्ता तथा चारित्र-बल से राजा को प्रसन्न किया। इस प्रकार राज-सभा में हेमचन्द्र का प्रवेश प्रारम्भ हुआ और इनके पाण्डित्य, दूरदर्शिता, तथा सर्व धर्म-स्नेह के कारण इनका प्रभाव राजसभा में उत्तरोत्तर बढ़ता गया।

कुमुदचंद्र के शास्त्रार्थ के अवसर पर सभा-पण्डित के नाते हेमचंद्र की उपस्थिति की घटना सत्य हो, तो निःसन्देह वि० सं० ११८१ के पूर्व वे सिद्धराज जयसिंह के सम्पर्क में आये होंगे। किन्तु उस समय सभा में इनका अपूर्व प्रभाव परिलक्षित नहीं होता। अतः इस लोक-विख्यात वाद-विवाद के निकटभूत-काल में ही इनका जयसिंह की राज सभा में प्रवेश हुआ होगा, यह सम्भव प्रतीत होता हैं। 'प्रबन्धचिन्तामणि' तथा 'प्रभावक्चरित' के अनुसार कुमारपाल तथा आचार्य हेमचन्द्र की प्रथम भेंट सिद्धराज जयसिंह के दरबार में हुई थी। यदि इस घटना को सत्य माना जाय तो यह सिद्ध होता है कि हेमचन्द्र वि० सं० ११८१ के कई वर्ष पूर्व ही अणहिलपुर में आ गये थे क्योंकि उस समय कुमारपाल को जयसिंह से भय नहीं था। प्रो० पारीख का मत है कि यह घटना वि० सं० ११६६ के आसपास घटी होगी[1]। जब सिद्धराज जयसिंह ने मालवा पर विजय प्राप्त की तब उस विजय के उपलक्ष में आचार्य हेमचन्द्र ने जैन प्रतिनिधि के नाते उनका स्वागत किया[2]। यह घटना वि० सं० ११६१–६२ में घटित हुई होगी।

सिद्धराज जयसिंह और आचार्य हेमचन्द्र का सम्बन्ध कैसा रहा होगा इसका अनुमान करने के लिए श्री सोमप्रभसूरि पर्याप्त जानकारी देते हैं[3]। "बुधजनों के चूड़ामणि आचार्य हेमचन्द्र भुवन-प्रसिद्ध सिद्धराज को सम्पूर्ण स्थानों में पृष्टव्य हुए। मिथ्यात्व से मुग्धमति होने पर भी उनके उपदेश से जयसिंह जिनेन्द्र के धर्म में अनुरक्तमना हुआ[4]। हेमचन्द्र के प्रभाव में आकर जयसिंह ने रम्य राजविहार बनवाया। उनके संस्कृत द्वयाश्रय महाकाव्य के

१– प्रो० पारीख – काव्यानुशासन – पृष्ठ ४०, प्रस्तावना

२– प्रभावक्चरित – पृष्ठ ३०० श्लोक ७२.
प्रबन्धचिन्तामणि, पृष्ठ ६०–७३

३– कुमारपाल प्रतिबोध, पृष्ठ २२ गा० ओ० सी० बड़ोदा

४– महालयो महायात्रा महास्थानं महासरः।
यत्कृतं सिद्धराजेन क्रियते तन्नकेनचित्॥

अनुसार सिद्धराज ने सिद्धपुर में महावीर स्वामी का मन्दिर भी बनवाया, सिद्ध-पुर में चार जिन् प्रतिमाओं से समृद्ध सिद्धविहार बनवाया[1]।

मालव विजय के पश्चात् जयसिंह की मृत्यु पर्यन्त हेमचन्द्र का उससे सम्बन्ध रहा अर्थात् वि० सं० ११९१ से वि० सं० ११९९ तक लगभग ७ वर्ष उनका जयसिंह से अटूट सम्बन्ध रहा। इन सात वर्षों में हेमचन्द्र की साहित्यिक प्रवृत्ति के अनेक फल गुजरात के माध्यम से भारत को मिले। साहित्यक दृष्टि से पहला श्रेष्ठ फल है—सुप्रसिद्ध "शब्दानुशासन"। मालव विजय के पश्चात् भोज-व्याकरण के साथ प्रतिस्पर्धा करने के लिए गुजरात का पृथक् व्याकरण ग्रन्थ सिद्धराज जयसिंह के आग्रह एवं अनुरोध पर आचार्य हेमचन्द्र ने बनाया[2]। प्रत्येक पाद के अन्त में चालुक्य वंशीय राजाओं की स्तुति में श्लोक लिखे। काकल कायस्थ जो आठ व्याकरणों के ज्ञाता थे, इस व्याकरण के अध्यापक नियुक्त किये गये। सिद्धराज जयसिंह की प्रेरणा से ही हेमचन्द्र को व्याकरण, कोश, छन्द तथा अलङ्कारशास्त्र रचने का अवसर प्राप्त हुआ और अपने आश्रय-दाता राजा का कीर्तन करने वाले, व्याकरण सिखाने वाले, तथा गुजरात के लोक-जीवन के प्रतिबिम्ब को धारण करने वाले 'द्वयाश्रय' नामक महाकाव्य रचने की इच्छा हुई।

सिद्धराज जयसिंह के लिए "मिथ्यात्वमोहितमति" विशेषण संस्कृत ग्रन्थों में मिलता है। इससे सिद्ध होता है कि वे अन्त तक शैव ही रहे हैं। फिर भी आचार्य हेमचन्द्र के साथ धर्म-चर्चा से उनमें जैनानुरक्ति जगी थी, ऐसा दिखाई देता है। अरबी भूगोलज्ञ अली इदसीं ने लिखा है कि "जयसिंह बुद्ध प्रतिमा की पूजा करता था"। यह उल्लेख डॉ. बूल्हर ने किया है[3]। हेमचन्द्र का अमृतमय वाणी में उपदेश न मिलने पर जयसिंह के चित्त में एक क्षण भी सन्तोष नहीं होता था, किन्तु सिद्धपुर में महावीर स्वामी का मन्दिर बनवाने पर उसकी देखभाल करने के लिये ब्राह्मणों को नियुक्त करने से सिद्धराज जयसिंह की केवल जैनानुरक्ति ही परिलक्षित होती है।

सिद्धराज जयसिंह स्वयं भी महान् विद्वान् था। 'मुद्रित–कुमुदचन्द्र' नाटक में जयसिंह की विद्वत्सभा का वर्णन आता है। वह जैन सङ्घों का

१– संस्कृत द्वयाश्रय महाकाव्य – सर्ग १५, श्लोक १६

२– प्रबन्धचिन्तामणि, पृष्ठ ६० तथा प्रबन्ध कोश –राजशेखरसूरि

३– लाईफ आफ हेमचन्द्र – डॉ. बूल्हर।

सम्मान करता था[1]। जब किसी सिद्धान्त के सम्बन्ध में शङ्का उत्पन्न होती थी तब जयसिंह स्वयं उसे दूर करता था। जयसिंह विद्वान् था। धर्मचर्चा सुनने की उसे बड़ी अभिरुचि थी। एक बार संसार-सागर से पार होने के इच्छुक सिद्धराज ने देवतात्व की पात्रता के विषय में सब दार्शनिकों से पूछा। सभी ने अपने-अपने मत की स्तुति एवं पर मत की निन्दा की। तब उन्होंने आचार्य हेमचन्द्र के सम्मुख शङ्का प्रकट की कि "प्रभो! संसार सागर से पार करने वाला कौन सा धर्म है?" इस प्रश्न के उत्तर में हेमचन्द्र ने शाम्ब का निम्नलिखित पुराणोक्त आख्यान कहा :—

"शेखपुर में शाम्ब नामक एक सेठ और यशोमती नाम की उसकी पत्नी रहती थी। पति ने अपनी पत्नी से अप्रसन्न होकर एक दूसरी स्त्री से विवाह कर लिया। अब वह नवोढ़ा के वश होकर बेचारी यशोमती को फूटी आँखों से देखना भी बुरा समझने लगा। यशोमती को अपने पति के इस व्यवहार से बड़ा कष्ट हुआ और वह प्रतिकार का उपाय सोचने लगी।

एक बार कोई कलाकार गौड़ देश से आया। यशोमती ने उसकी पूर्ण श्रद्धाभक्ति से सेवा की और उससे एक ऐसी औषधि ली, जिसके द्वारा पुरुष पशु बन सकता था। यशोमती ने आवेशवश एक दिन भोजन में मिलाकर उक्त औषधि अपने पति को खिला दी, जिससे वह तत्काल बैल बन गया। अब उसे अपने इस अधूरे ज्ञान पर बड़ा दुःख हुआ। वह सोचने लगी कि वह उस बैल को पुरुष किस प्रकार बनाए? अतः लज्जित और दुःखित होकर जंङ्गल में एक वृक्ष के नीचे बैलरूपी पति को घास चराया करती थी और बैठी-बैठी विलाप करती रहती। दैवयोग से एक दिन शिव और पार्वती विमान में बैठे हुए आकाश-मार्ग से उसी ओर जा रहे थे। पार्वती ने, उसका करुण विलाप सुनकर शङ्कर भगवान् से पूछा, 'स्वामिन् इसके दुःख का क्या कारण है?' शङ्कर ने पार्वती की शंङ्का का समाधान किया और कहा कि इस वृक्ष की छाया में ही इस प्रकार की औषधि विद्यमान है जिसके सेवन से यह पुनः पुरुष बन सकता है। इस संवाद को यशोमती ने भी सुन लिया और उसने तत्काल ही उस छाया को रेखाङ्कित कर दिया और उसके समस्त मध्यवर्ती अङ्कुरों को तोड़-तोड़ कर बैल के मुख में डाल दिया। घास के साथ-साथ औषधि के चले जाने पर वह बैल पुनः पुरुष बन गया।"

१– मुद्रित-कुमुदचन्द्र अङ्क ५ – पृष्ठ ४५

आचार्य हेमचन्द्र ने आख्यान का उपसंहार करते हुए कहा, "राजन् जिस प्रकार नाना प्रकार की घास के मिल जाने से यशोमती को औषधि की पहचान नहीं हो सकी, उसी प्रकार इस युग में कई धर्मों से सत्य-धर्म तिरोभूत हो रहा है, परन्तु समस्त धर्मों के सेवन से उस दिव्य औषधि की प्राप्ति के समान पुरुष को कभी न कभी शुद्ध-धर्म की प्राप्ति हो ही जाती है[1]। जीव-दया, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवम् अपरिग्रह के सेवन से बिना किसी विरोध के समस्त धर्मों का आराधन हो जाता है। आचार्य के इस उत्तर ने समस्त सभासदों को प्रभावित किया। आचार्य हेमचन्द्र अनेकान्त को सर्व-दर्शन-सङ्ग्रह के रूप में भी घटाते हैं[2]। यह सर्व-दर्शन मान्यता की दृष्टि साम्प्रदायिक चातुरी थी (जैसा कि डा० बूल्हर मानते हैं), अथवा सारग्राही विवेक-बुद्धि में से परिणत थी, इसका निर्णय करने का कोई बाह्य साधन नहीं। परन्तु अनेकान्तवाद के रहस्यज्ञ हेमचन्द्र में ऐसी विवेक-बुद्धि की सम्भावना है।

आचार्य हेमचन्द्र तथा उनके आश्रयदाता सिद्धराज जयसिंह लगभग समवयस्क थे। सिद्धराज का जन्म उनसे केवल तीन वर्ष पूर्व ही हुआ था। अतः इन दो महानुभावों का परस्पर सम्बन्ध गुरु-शिष्य के समान कभी नहीं रहा प्रतीत होता है। फिर भी सिद्धराज सदैव हेमचन्द्र के प्रभाव में रहे। हेमचन्द्र ने सर्व-दर्शन के सम्मत होने का उपदेश किया तो सिद्धराज ने सर्व धर्मों का समान आराधन किया। यही कारण है कि सिद्धराज ने प्रजाजनों के साथ सदैव अत्यन्त उदार व्यवहार किया। उसके राज्य में वैदिक, सनातन धर्म के साथ जैन सम्प्रदाय की भी बहुत अभिवृद्धि हुई। जैन सम्प्रदाय की अभिवृद्धि में सम्भवतः सिद्धराज की माता मयणल्लादेवी भी कारण रही होंगी, क्योंकि वे स्वयं जैन-धर्म में दीक्षित थीं। सिद्धसेन, दिवाकरसेन, उदयन आदि कुछ मन्त्री-गण भी जैन थे। जयसिंह ने वि० सं० ११५१–११९९ तक राज्य किया। इनके स्वर्गवास के समय हेमचन्द्र की आयु ५४ वर्ष की थी। वे तब तक अच्छी प्रतिष्ठा पा चुके थे।

हेमचन्द्र और कुमारपाल—

सिद्धराज के कोई पुत्र नहीं था, इससे उनकी मृत्यु के पश्चात्

१– सर्वदर्शनमान्यता नामक प्रबन्ध–प्रबन्धचिन्तामणि-पृष्ठ ७०

२– सिद्धहेम– सकल दर्शनसमूहात्मकम् स्याद्वादसमाश्रयणम् अतिरमणीयम्. पृष्ठ ८–सि. हे. शब्दानुशासन तत्व प्रकाशिका महार्णवन्यास Edited by पं० भगवानदास, १९२१, पाटन

राजगद्दी का झगड़ा खड़ा हुआ और अन्त में कुमारपाल वि० सं० ११९९ में मार्गशीर्ष कृष्ण चतुर्दशी को राज्याभिषिक्त हुआ।

सिद्धराज जयसिंह अपने जीवन काल में कुमारपाल को मारने की चेष्टा में था[1]। अतः यह अपने प्राण बचाने के लिए गुप्तवेष धारण कर भागता हुआ स्तम्भतीर्थ पहुँचा। यहाँ पर वह हेमचन्द्र और उदयन मन्त्री से मिला। दुःखी होकर कुमारपाल ने हेमसूरि से कहा, "प्रभो! क्या मेरे भाग्य में इसी तरह कष्ट भोगना लिखा है; या और कुछ भी?" सूरीश्वर ने विचार कर कहा, "मार्गशीर्ष बदी १४ में आप राज्यासनासीन होंगे। मेरा यह कथन कभी असत्य नहीं हो सकता।" उक्त वचन सुनकर कुमारपाल बोला, "प्रभो! यदि आपका वचन सत्य सिद्ध हुआ तो आप ही पृथ्वीनाथ होंगे; मैं तो आपके चरणकमलों का सेवक बना रहूँगा।" इस पर स्मित हास्य करते हुए सूरीश्वर बोले, हमें राज्य से क्या काम? यदि आप राजा होकर जैन धर्म की सेवा करेंगे तो हमें प्रसन्नता होगी[2]। तदनन्तर सिद्धराज के भेजे हुए राजपुरुष कुमारपाल को ढूँढते हुए स्तम्भतीर्थ में ही आ पहुँचे। इस अवसर पर हेमचन्द्राचार्य ने उसे अपने वसतिगृह के भूमिगृह में छिपा दिया और उसके द्वार को पुस्तकों से ढँक कर उसके प्राण बचाए। तत्पश्चात् सिद्धराज जयसिंह की मृत्यु हो जाने पर हेमचन्द्र की भविष्यवाणी के अनुसार कुमारपाल सिंहासनासीन हुआ।

राजा बनने के समय कुमारपाल की अवस्था ५० वर्ष की थी। इसका समर्थन 'प्रबन्धचिन्तामणि', 'पुरातनप्रबन्धगृह' तथा 'कुमारपालप्रबन्ध' से भी होता है। इसका लाभ यह हुआ कि उसने अपने अनुभव और पुरुषार्थ द्वारा राज्य की सुदृढ़ व्यवस्था की। यद्यपि यह सिद्धराज के समान विद्वान् और विद्या-रसिक नहीं था, तो भी राज्य-प्रबन्ध के पश्चात् वह धर्म तथा विद्या से प्रेम करने लगा था।

कुमारपाल की राज्य प्राप्ति का समाचार सुनकर हेमचन्द्रसूरि कर्णावती से पाटन आए। उदयन मन्त्री ने उनका स्वागत किया। इन्होंने मन्त्री

१– कुमारपाल को हीनकुल में समझने के कारण ही सिद्धराज उसे मारना चाहते थे –नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ६ पृष्ठ ४४३–४६८

२– प्रबन्धचिन्तामणि –कुमारपालादि प्रबन्ध, पृष्ठ ७७–९८
कुमारपाल हेमसूरि समागम वर्णनम्, पृष्ठ ८२

से पूछा, "अब राजा मेरा स्मरण करता है या नहीं ?" इस पर मन्त्री ने सङ्कोच का अनुभव करते हुए, स्पष्ट कहा "नहीं, अब स्मरण नहीं करता"। सम्भवतः राज्य-प्रबन्ध में बहुत अधिक व्यस्त होने के कारण तथा शत्रुओं का दमन करने में रत होने के कारण कुमारपाल को स्वस्थ चिंतन करने का अवकाश नहीं मिला होगा। अस्तु।" तब सूरीश्वर हेमचन्द्र ने मन्त्री से कहा, "आज आप राजा से कहें कि वह अपनी नयी रानी के महल में न जाए। वहाँ आज दैवी उत्पात होगा। यदि राजा आपसे पूछे कि यह बात किसने बतलायी तो बहुत आग्रह करने पर ही मेरा नाम बतलाना।" मन्त्री ने ऐसा ही किया। रात्रि को महल पर बिजली गिरी और रानी की मृत्यु हो गई। इस चमत्कार से अतिविस्मित हो राजा मन्त्री से पूछने लगा कि यह बात किस महात्मा ने बतलायी थी ? राजा के विशेष आग्रह करने पर मन्त्री ने गुरुजी के आगमन का समाचार सुनाया। राजा ने प्रमुदित होकर उन्हें महल में बुलाया। सूरीश्वर पधारे। राजा ने उनका सम्मान किया और प्रार्थना की, 'उस समय आपने हमारे प्राणों की रक्षा की और यहाँ आने पर हमें दर्शन भी नहीं दिये। लीजिए अब आप अपना राज्य सम्हालिए'। सूरि ने प्रत्युत्तर में कहा, "राजन् ! यदि कृतज्ञता के कारण प्रत्युपकार करना चाहते हैं तो आप जैन धर्म स्वीकार कर उस धर्म का प्रसार करें।" राजा ने शनैः शनैः उक्त आदेश को स्वीकार करने की प्रतिज्ञा की। कुमारपाल ने अपने राज्य में प्राणिवध, मांसाहार, असत्य-भाषण द्यूत-व्यसन, वेश्या-गमन, पर-धन हरण, मद्य-पान आदि का निषेध कर दिया। कुमारपाल के आचार-विचार और व्यवहार देखने से अनुमान होता है कि उसने जीवन के अन्तिम दिनों में जैन धर्म स्वीकार कर लिया होगा।

आचार्य हेमचन्द्र के महावीर-चरित के कतिपय श्लोकों के आधार पर कुमारपाल और हेमचन्द्र के मिलने के सम्बन्ध में डा. बूल्हर ने बताया है कि हेमचन्द्र कुमारपाल से तब मिले जब उनके राज्य की समृद्धि और विस्तार चरम सीमा पर पहुँच गया था[1]। डा. बूल्हर की इस मान्यता की आलोचना 'काव्यानुशासन' की भूमिका में प्रो. रसिकलाल पारीख ने की है। उन्होंने उक्त कथन को विवादास्पद सिद्ध किया है। उनके मत के अनुसार महावीर चरित का वर्णन उन दोनों की परिपक्व सम्बन्ध-अवस्था का वर्णन है, प्रारम्भिक नहीं। फिर भी धर्म का विचार करने का अवसर उस प्रौढ़ वय के राजा को राज्य की सुस्थिति के बाद ही मिला होगा।

१– महावीर-चरित श्लोक ५३ (४५–५८)

दोनों के प्रथम मिलन के सम्बन्ध में एक और घटना प्रकाश में आयी है। एक बार कुमारपाल जयसिंह से मिलने गया था। मुनि हेमचन्द्र को व्यासपीठ पर बैठे देखकर वह अत्यधिक आकृष्ट हुआ और उनके भाषणकक्ष में जाकर भाषण सुनने लगा। उसने पूछा, मनुष्य का सबसे बड़ा गुण क्या है? हेमचन्द्र ने प्रत्युत्तर में कहा, "दूसरों की स्त्रियों में माँ-बहन की भावना रखना, सबसे बड़ा गुण है"। यदि यह घटना ऐतिहासिक है तो अवश्य ही वि. सं. ११९९ के आसपास घटी होगी क्योंकि उस समय कुमारपाल को अपने प्राणों का भय नहीं था[1]।

"कुमारपाल प्रतिबोध" के अनुसार मन्त्री वाग्भटदेव बाहडदेव द्वारा कुमारपाल के राजा होने के पश्चात् वह हेमचन्द्र के साथ गाढ़ परिचय में आया होगा[2]।

"प्रभावक्चरित से ज्ञात होता है कि जब कुमारपाल अर्णोराज को जीतने में असफल रहा तो मन्त्री वाहड की सलाह से उसने अजितनाथ स्वामी की प्रतिमा का स्थापन-समारोह किया, जिसकी विधि आचार्य हेमचन्द्र ने सम्पन्न करायी थी[3]।

यह तो सत्य है कि राज्य-स्थापना के आरम्भ में कुमारपाल को धर्म के विषय में सोच-विचार करने का अवकाश नहीं था, क्योंकि पुराने राज्याधिकारियों से उसे अनेक प्रकार से सङ्घर्ष करना पड़ा था। वि.सं. १२०७ के लगभग उसका जीवन आध्यात्मिक होने लगा था। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि हेमचन्द्र का सम्पर्क कुमारपाल से पहले ही हो चुका था। राजा होने के १६ वर्ष बाद उसने जैन धर्म अङ्गीकार किया था अथवा नहीं, इस विषय में पर्याप्त मत-भेद है। श्री ईश्वरलाल जैन के अनुसार कुमारपाल ने मार्गशीर्ष शुक्ल द्वादशी वि. सं.१२१६ को श्रावक् धर्म के १२ व्रत स्वीकार कर विधि पूर्वक जैन धर्म में दीक्षा ग्रहण की। जैन धार्मिक ग्रन्थों में भी इस कथन् की पुष्टि की है[4] किन्तु अन्य ग्रन्थों से इसकी पुष्टि न होने के कारण, यह बात विवादास्पद

१- काव्यानुशासन-भूमिका- PPcc Lxxxiii—eeLxxxIV

२- कुमारपाल प्रबन्ध, पृष्ठ १८-२२

३- प्रभावक्चरित, पृष्ठ ३००-४००

४- द्वादशव्रत-अणुव्रत-५-गुणव्रत-३, शिक्षाव्रत-४, (पृष्ठ ४५)

प्रतीत होती है। प्रभासपट्टन के गण्ड 'भाव वृहस्पति' ने वि. सं. १२२९ के भद्रकाली शिलालेख में कुमारपाल को "माहेश्वरनृपाग्रणी" कहा है। हेमचन्द्राचार्य के संस्कृत 'द्वयाश्रय' काव्य के २० वें सर्ग में कुमारपाल की शिवभक्ति का उल्लेख है। यह सत्य प्रतीत होता है कि आचार्य हेमचन्द्र के उपदेश से कुमारपाल का जीवन क्रमशः उत्तरावस्था में प्रायः द्वादशव्रतधारी श्रावक् जैसा हो गया था[1]। आचार्य हेमचन्द्र स्वयं अपने ग्रन्थों में कुमारपाल को "परमार्हत्' कहते हैं[2]। सोमप्रभकृत 'कुमारपाल प्रतिबोध' के अनुसार आचार्य हेमचन्द्र ने राजा कुमारपाल को जैन धर्मावलम्बी बनाया[3]। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि उसने अपने कुलदेव शिव की पूजा छोड़ दी थी। कुमारपाल की सुप्रसिद्ध सोमेश्वर यात्रा से उसका शैव रहना ही अधिक युक्तिसङ्गत प्रतीत होता है।

आचार्य हेमचन्द्र के प्रभाव से उनके निर्देशन में ही कुमारपाल ने गुजरात को दुर्व्यसनों से मुक्त करने का योग्य प्रयास किया। द्यूत और मद्य का प्रतिबन्ध कर निर्वंश के धनापहरण का नियम भी उसने बन्द करवाया। यज्ञ में पशुहिंसा बन्द करवायी। कुमारपाल के सामन्तों के शिलालेखों के अनुसार उसके अधीन १८ प्रान्तों में १४ वर्ष तक पशुवध के निषेध का आदेश प्रसारित हुआ[4]।

गुजरात के प्रसिद्ध राजा सिद्धराज जयसिंह तथा कुमारपाल के समकालीन होने पर भी आचार्य हेमचन्द्र का कुमारपाल के साथ गुरु-शिष्य जैसा सम्बन्ध था। इसी महापुरुष के प्रभाव में कुमारपाल के राज्य में जैन सम्प्रदाय ने सर्वाधिक उन्नति की। उसने अनेक जैन मन्दिर बनवाये; चौदह सौ (१४००) विहार भी बनवाये एवं जैन धर्म को राज्य-धर्म बनाया। उसके कुमार विहार का वर्णन हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्रसूरि ने 'कुमारविहारशतक' में किया है। 'मोहराज पराजय' नाटक में इन घटनाओं का रूपकमय उल्लेख है। 'कुमारपाल'

१– ईश्वरलाल जैन–हेमचन्द्राचार्य–आदर्श ग्रन्थमाला मुलतान शहर

२– त्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरितम्–पर्व १० प्रशस्तिः
　　चौलुक्यः परमार्हतो विनयवान् श्रीमलराजान्वयी।

३– भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान। –हीरालाल जैन, पृष्ठ १५

४– पूर्व वीरजिनेश्वरे—श्री हेमचन्द्रो गुरु।
　　पुरातन प्रबन्ध सङ्ग्रह–कुमारपाल देव–तीर्थ यात्रा प्रबन्धः

ने अनेक तालाब, धर्मशालाएँ, विश्राम-स्थल, विहारादि आचार्य हेमचन्द्र की प्रेरणा से ही बनवाये। इनमें दीक्षाविहार, धुन्धुका में झोलिकाविहार, पिता की स्मृति में त्रिभुवनपालविहार, अपनी स्मृति में कुमारविहार, मूषकविहार, करम्बविहार इत्यादि महत्वपूर्ण हैं। श्री तारङ्गतीर्थ अजितनाथ भगवान का विशाल एवम् गगनचुम्बी शिखर, सैकड़ों नवीन मन्दिर, हजारों पुराने मन्दिरों का जीर्णोद्धार कुमारपाल ने करवाया। केदार तथा सोमनाथ का भी उद्धार उसी ने किया। उसने सात बड़ी यात्राएँ की और ६ लाख रत्न पूजा में चढ़ाये[1]।

कुमारपाल की प्रार्थना पर आचार्य हेमचन्द्र ने 'योगशास्त्र', 'वीतरागस्तुति' एवम् 'त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित' पुराण की रचना की। संस्कृत में 'द्वयाश्रय काव्य के अन्तिम सर्ग तथा प्राकृत द्वयाश्रय कुमारपाल के समय में ही लिखे गये। 'प्रमाणमीमांसा' की रचना इसी समय में हुई। हेमचन्द्र ने पूर्व रचित ग्रन्थों में संशोधन, स्वोपज्ञ टीकाएँ एवं 'अभिधान चिंतामणि' में कुमारपाल की प्रशस्ति लिखी है। कुमारपाल ने ७०० लेखकों को बुलवाकर हेमचन्द्र के ग्रन्थ लेखबद्ध करवाये। उसने २१ बड़े ज्ञान भाण्डार निर्मित कराये।

आचार्य हेमचन्द्र के आस्थान (विद्या-मण्डप) का मनोहर वर्णन 'प्रभावक् चरित' में मिलता है। 'हेमचन्द्र का आस्थान, जिसमें विद्वान प्रतिष्ठित थे, ब्रह्मोल्लास का निवास और भारती का पितृगृह था। यहाँ महाकवि अभिनव ग्रन्थ निर्माण में निमग्न थे। वहाँ पट्टिका और पट्ट पर लेख लिखे जा रहे थे एवम् शब्द-व्युत्पत्ति के लिए उहापोह होते रहने से वहाँ पुराण कवियों द्वारा प्रयुक्त शब्द दृष्टान्त रूप से उल्लिखित किये जाते थे। सम्भवतः सिद्धराज ने आचार्यजी को एक विशाल ग्रंथालय सुगम किया होगा। जैन लोग कहते हैं कि १०० शिष्यों का परिवार उन्हें नित्य घेरे रहता था और जो ग्रन्थ गुरु लिखाते थे, उनको वह लिख लिया करता था।

साहित्यिक जीवन— प्रभावशाली व्यक्तित्व—अवसान

आचार्य हेमचन्द्र का जीवन जैन धर्म के प्रचार में तथा कुमारपाल को उपदेश देते हुए साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में सर्जना करते हुए ही व्यतीत होने लगा। उन्होंने ४–५ हजार सूत्रों में 'शब्दानुशासन' को पूरा करके १८,००० श्लोकों की वृहद्वृत्ति तथा सामान्य पाठकों के लिए लघुवृत्ति भी लिखी। उसमें गणपाठ, धातुपाठ, उणादि लिङ्गानुशासन प्रकरण भी जोड़े। समस्त व्याकरण

१—हेमचन्द्राचार्य-ईश्वरलाल जैन

को सूत्रानुक्रम से उद्धृत करते हुए 'कुमारपाल-चरित्र' भी एक विशाल द्वयाश्रय काव्य के रूप में रचा, एक व्यक्ति की व्याकरणशास्त्र की यह उपासना अनुपमेय है। फिर जब पुराण, काव्य, दर्शन, कोश, छन्द आदि विषयों की उनकी अन्य कृतियों का भी लेखा-जोखा लगाया जाता है ; तब उनकी आश्चर्यजनक प्रतिभा के प्रति अपार श्रद्धा जागृत होती है।

आचार्य हेमचन्द्र के प्रभावशाली व्यक्तित्व के सम्बन्ध में विन्टरनित्ज महोदय ने लिखा है कि 'आचार्य हेमचन्द्र के कारण ही गुजरात श्वेताम्बरियों का गढ़ बना तथा वहाँ १२ वीं १३ वीं शताब्दी में जैन-साहित्य की विपुल समृद्धि हुई । विन्टरनित्ज महोदय के अनुसार वि० सं० १२१६ में कुमारपाल पूर्णतया जैन बने तथा उनकी दीक्षा के दिन पृथ्वीपाल मन्त्री की प्रार्थना पर हरिभद्रसूरि ने "नेमिचरित" को पूरा किया। इसीलिये जैन साहित्य में विशेषकर धार्मिक क्षेत्र में हेमचन्द्र का नाम अग्रणी है। गुजरात में तो जैन सम्प्रदाय के विस्तार का सबसे अधिक श्रेय इन्हें ही है।

आचार्य हेमचन्द्र उत्कृष्ट ज्योतिषी थे। उन्होंने कुमारपाल को राज्या-रोहण की तिथि बता दी थी तथा दैवी दुर्घटना की सूचना देकर कुमारपाल के प्राण बचाये थे।

हेमचन्द्र अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि थे। धार्मिक उदारता भी उनमें थी। प्रबन्धचिन्तामणि में इस विषय में एक सुन्दर उपाख्यान दिया है। 'एक बार राजा कुमारपाल के सामने किसी मत्सरी ने कहा, "जैन प्रत्यक्ष देव सूर्य को नहीं मानते।' इस पर हेमचन्द्र ने उत्तर दिया "वाह ! कैसे नहीं मानते ?"

> अधाम धाम धामैव वयमेव हृदिस्थितम् ।
> यस्यास्तव्यसनें प्राप्ते त्यजामों भोजनोदके ॥

अर्थात् हम जैन लोग ही प्रकाश के धाम श्री सूर्यनारायण को अपने हृदय में

१—प्रभावक्चरित पृष्ठ ३१४ श्लोक २९२-२९४

२—मोहराजपराजय अङ्क ५ तथा काव्यानुशासन प्रस्तावना पृष्ठ २८९ तथा २९१

3. History of Indian Literature by Winternitz, Vol. II Page - 482 - 83; 5 11

स्थित रखते हैं, उनके अस्तरूपी व्यसन को प्राप्त होते ही हम लोग अन्न-जल तक त्याग देते हैं। इस उत्तर को सुनकर उन ईर्ष्यालुओं का मुँह बन्द हो गया।

आचार्य हेमचन्द्र में सर्वधर्म-सहिष्णुता बहुत थी। एक बार देवपत्तन के पुजारियों ने आकर राजा से निवेदन किया "सोमनाथ का मन्दिर बहुत जीर्ण-शीण हो गया है"। उनकी प्रार्थना सुनते ही राजा ने जीर्णोद्धार का कार्य आरम्भ कर दिया। कुछ दिनों पश्चात् फिर वहाँ के मन्दिर के सम्बन्ध में पञ्चकुल का पत्र आया। तब राजा कुमारपाल ने गुरु हेमचन्द्र से पूछा "इस धर्म-भवन के निर्माणार्थ क्या करना चाहिये।" हेमचन्द्र ने कहा "आपको या तो ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुए देवार्चन में संलग्न रहना चाहिये अथवा मन्दिर के ध्वजा-रोपण तक मद्य-मांस के त्याग का व्रत धारण करना चाहिये।" राजा ने सूरीश्वर के परामर्शानुसार उक्त व्रत धारण किया। 'प्रबन्धचिन्तामणि' में अन्य उपाख्यान भी हैं जिनसे उनकी धार्मिक उदारता प्रकट होती है।

जब राजा कुमारपाल ने सोमनाथ की यात्रा की तो आचार्य हेमचन्द्र को भी साथ में चलने का निमन्त्रण दिया। उन्होंने तुरन्त स्वीकार कर उत्तर दिया—"भला भूखे से निमन्त्रण का आग्रह क्या? हम तपस्वियों का तो तीर्थाटन मुख्य धर्म ही है"। इसके पश्चात् राजा ने उनको सुखासन वाहनादि ग्रहण करने को कहा। परन्तु उन्होंने पैदल यात्रा करने की इच्छा प्रकट की और कहा कि हमारा विचार शीघ्र ही प्रयाण करने का है जिससे शत्रुञ्जय, गिरनारादि महा-तीर्थों की भी यात्रा कर आपके पहुँचते-पहुँचते हम देवपत्तन पहुँच जाएँ। राजा ने यात्रा आरम्भ की। वे देवपत्तन के निकट आ पहुँचे; परन्तु वहाँ आचार्यजी के दर्शन नहीं हुए, पर जब नगर में राजा का प्रवेशोत्सव सम्पन्न किया जा रहा था उस समय सूरीश्वर भी उपस्थित थे। राजा ने बहुत भक्ति से सोमनाथ के लिङ्ग की पूजा की और गुरु से कहा कि आपको कोई आपत्ति न हो तो आप भी त्रिभुवनेश्वर श्री सोमेश्वर देव का अर्चन करें। आचार्य हेमचन्द्र ने आह्वान अवगुण्ठन मुद्रा, मन्त्र, न्यास विसर्जनादि स्वरूप पंचोपचार विधि से शिव की पूजा की तथा निजनिर्मित श्लोकों से स्तुति की[1]। कहा जाता है कि उन्होंने

---

१ —भव बीजांकुर जननारा गाद्या: क्षयमुपा गता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णु वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै।।

इस अवसर पर राजा को साक्षात् महादेव के दर्शन कराये। इस पर राजा ने कहा कि महर्षि हेमचन्द्र सब देवताओं के अवतार और त्रिकालज्ञ हैं। इनका उपदेश मोक्षमार्ग को देने वाला है। संस्कृत द्वयाश्रय काव्य के सर्ग ५, श्लोक १३३–१४१ में शिवस्तुति द्रष्टव्य है।

कुमारपाल ने जीवहिंसा का सर्वत्र निषेध करा दिया था। इनकी कुल-देवी कण्टेश्वरी देवी के मन्दिर में पशुबलि होती थी। आश्विन मास का शुक्ल-पक्ष आया तो पुजारियों ने राजा से निवेदन किया कि यहाँ पर सप्तमी को ७०० पशु और ७ भैंसे, अष्टमी को ८०० पशु और ८ भैंसे, तथा नवमी को ९०० पशु और ९ भैंसे राज्य की ओर से देवी को चढ़ाये जाते हैं। राजा इस बात को सुनकर आचार्य हेमचन्द्र के पास गया, और इस प्राचीन कुलाचार का वर्णन किया। उन्होंने कान में ही राजा को समझा दिया। इसे सुनकर राजा ने कहा, अच्छा, जो दिया जाता है वह हम भी यथाक्रम देंगे। तदनन्तर राजा ने देवी के मन्दिर में पशु भेजकर उनको ताले में बन्द करा दिया और पहरा रख दिया। प्रातःकाल स्वयम् राजा आया और देवी के मन्दिर के ताले खुलवाये। वहाँ सब पशु आनन्द से लेटे थे। राजा ने कहा देखिये, ये पशु मैंने देवी को भेंट किये थे, यदि उन्हें पशुओं की इच्छा होती तो वे इन्हें खा लेती, परन्तु देवी ने एक पशु को भी नहीं खाया। इससे स्पष्ट है कि उन्हें मांस अच्छा नहीं लगता। तुम उपासकों को ही यह भाता है। राजा ने सब पशुओं को छुड़वा दिया। दशमी की रात को राजा को कण्टेश्वरीदेवी स्वप्न में दिखायी दीं और उन्होंने राजा को शाप दिया जिससे वह कोढ़ हो गया। मन्त्री उदयन ने बलि देने की सलाह भी दी, परन्तु राजा ने किसी के प्राण लेने की अपेक्षा अपने प्राण देना अच्छा समझा। जब आचार्य हेमचन्द्र को इस सङ्कट का पता लगा तो उन्होंने जल मन्त्रित करके दे दिया जिससे राजा का दिव्यरूप हो गया। इस प्रकार आचार्य हेमचन्द्र की महत्ता के सम्बन्ध में अनेक आख्यान उपलब्ध होते हैं[1]।

कहा जाता है कि काशी से विश्वेश्वर नामक कवि पाटन आया और वहाँ हेमचन्द्र की विद्वत्समिति में सम्मिलित हुआ। उसने वक्रोक्ति से हेमचन्द्र के प्रति

१– हेमसूरी दर्शितं कुमारपालास्य सोमेश्वर प्रत्यक्षम्-पृष्ठ ८४-८५ तथा 'प्रबन्ध-कोश'-पृष्ठ ४७-४८।

इङ्गित करते हुए कहा "कम्बल और लट्ठ लिये हुए हेमग्वाल तुम्हारी रक्षा करे।" इतना कह वह चुप हो गया। कुमारपाल भी वहाँ विद्यमान थे। इस वाक्य को निन्दाविधायक समझ उनकी त्योरी चढ़ गई। हेम कवि को तो लोगों के हृदय और मस्तिष्क की परीक्षा करनी थी, उसने यह दृश्य देखकर तुरन्त अधोलिखित श्लोकार्ध पढ़ा जिसका आशय है कि वह गोपाल जो षड्दर्शन रूपी पशुओं को जैन तृणक्षेत्र में हाँक रहा है[1]। इस उत्तरार्द्ध से उसने समस्त सभ्यों को सन्तुष्ट कर दिया।

कुमारपाल ने अपने धर्मगुरु आचार्य हेमचन्द्रसूरी के पास जैन धर्म की गृहस्थ-दीक्षा (श्रावक धर्म-व्रत) स्वीकार करते समय सबसे पहले जब अहिंसा-व्रत स्वीकार किया, उस समय को लक्ष्य करके रूपकात्मक प्रबन्ध का प्रणयन प्रबन्धचिन्तामणि के परिशिष्ट में किया गया है। इसमें अहिंसा को एक राज-कन्या माना है जो हेमचन्द्र के आश्रम में पलकर बड़ी उम्रवाली वृद्धाकुमारी हो गई है। अन्यान्य राजाओं के अधार्मिक आचरण देखकर वह किसी के साथ विवाह करना नहीं चाहती। कुमारपाल, जो हेमचन्द्र का शिष्य बना है, उसके धर्मभाव से मुग्ध होता है। आचार्य के आदेश से वह उसका पाणिग्रहण कर लेता है।

कुमारपाल हेमचन्द्र के पास विद्याध्ययन करते थे। वे विद्वत्सभा में समस्या-पूर्ति तो करते ही थे; तीर्थयात्रा में वे कुमारपाल के साथ यात्रा भी करते थे। एक बार यात्रा करते हुए वे सम्पूर्ण सङ्घ के साथ धुन्धुक्क नगर में आये। वहाँ उन्होंने आचार्य के जन्मस्थान में स्वयम् बनाये हुए १७ हाथ ऊँचे झोलिकाविहार में महोत्सव किया[2]।

हेमचन्द्र के प्रभाव से महान शैव मठाधीश गण्ड वृहस्पति जैन आचार्यों का वन्दन करते थे। इतना होने पर भी वे अन्ध-श्रद्धा के पक्षपाती नहीं थे। उन्होंने महावीर-स्तुति में स्पष्ट कहा है-'हे वीर प्रभु केवल श्रद्धा से ही आपके

१- पातु को हेमगोपालः कम्बलं दण्डमुद्वहन्।
षड्दर्शनपशुग्रामं चारयन् जैन-गोचरे।। प्रभावकचरित-पृष्ठ ३१५ श्लोक ३०४

२- प्रबन्धचिन्तामणि कुमारपालादि प्रबन्ध-पृष्ठ ८४

प्रति पक्षपात नहीं है और नहीं किसी के द्वेष के कारण दूसरे से अरुचि है; मन्त्रों, आगमों के ज्ञान और यथार्थ परीक्षा के बाद तेरी शरण ली है[1] । आचार्य केवल भावनाप्रधान नहीं थे, बुद्धिप्रधान थे तथा वे कालिदास की उक्ति "सन्त: परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते" के अनुसार व्यवहार करने वाले थे ।

वृद्धावस्था में हेमचन्द्रसूरि को लूता रोग लग गया; परन्तु अष्टांगयोगाभ्यास द्वारा लीला के साथ उन्होंने उस रोग को नष्ट किया । ८४ वर्ष की अवस्था में अनशनपूर्वक अन्त्याराधन क्रिया उन्होंने आरम्भ की तथा कुमारपाल से कहा "तुम्हारी आयु के भी ६ मास शेष हैं ।" कुमारपाल को धर्मोपदेश देते हुए दशम् द्वार से उन्होंने प्राण-त्याग कर दिया[2] । इस प्रकार वि० सं० १२२९ में आचार्य हेमचन्द्र ने अपनी ऐहिक लीला समाप्त की । उनके शरीर की भस्म को इतने लोगों ने अपने मस्तक पर लगाया कि अन्त्येष्टि-क्रिया के स्थान पर एक गड्ढा हो गया जो आज भी हेमखड्ड के नाम से प्रसिद्ध है । श्री हेमचन्द्राचार्य का समाधि-स्थल शत्रुञ्जय पहाड़ पर स्थित है । दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनों-ही इन स्थानों की भक्तिभाव से यात्रा करते हैं । प्रभावकचरित के अनुसार राजा कुमारपाल को आचार्य का वियोग असह्य रहा और छ: मास पश्चात् वह भी स्वर्ग सिधार गया ।

इस तरह यदि यह कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी कि तर्क, लक्षण, और साहित्य में पाण्डित्य प्राप्त करने के साधन देकर हेमचन्द्र ने गुजरात को स्वावलम्बी बनाया । हेमचन्द्र गुजरात के विद्याचार्य हैं । भारतवर्ष के संस्कृत-साहित्य के इतिहास में इन्हें महापण्डितों की प्रथम पङ्क्ति में स्थान प्राप्त है गुजरात में उनका स्थान राजा-प्रजा के आचार सुधारक रूप से महान् आचार्य का है । हेमचन्द्र का व्यक्तित्व बहुमुखी था । ये एक साथ महान् सन्त, शास्त्रीय विद्वान, वैयाकरण, दार्शनिक, काव्यकार, योग्य लेखक और लोक-चरित के अमर सुधारक थे । इनके व्यक्तित्व में स्वर्णिम प्रकाश की वह आभा थी जिसके प्रभाव से सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल जैसे सम्राट आकृष्ट हुए थे । ये

१– न श्रद्धयैव त्वयि पक्षपातो न द्वेषमात्रादरूचि परेषाम्
यथावदाप्ता तात परीक्षयाच त्वामेव वन्दे । प्रभुमाश्रिता स्म: ।।
महावीर स्तुति–श्लोक ५

२– हेमाचार्य कुमारपालयो मृत्युवर्णनम्–प्रबन्धचिन्तामणि, पृष्ठ–९५

विश्वबन्धुत्व के पोषक और अपने युग के प्रकाश-स्तम्भ ही नहीं, अपितु युग-युग के प्रकाश-स्तम्भ हैं। इस युग-पुरुष को साहित्य और समाज सर्वदा नतमस्तक हो नमस्कार करता रहेगा।

हेमचन्द्र और उनका युग

आचार्य हेमचन्द्र का युग गुजरात के साहित्य एवम् संस्कृति के इतिहास का स्वर्ण-युग कहा जा सकता है। इस समृद्धि के लिए राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियाँ पूर्णतया अनुकूल थीं। अनहिलवाड़ में चालुक्य वंश के मूल प्रतिष्ठापक श्री मूलराज से लेकर कुमारपाल के उत्तराधिकारियों तक जो नृप हुए उनमें चरित्र एवम् सद्गुणों का उत्तरोत्तर विकास पाया जाता है। मन्दिरों का जीर्णोद्धार करना, नवनिर्माण करना तथा धर्मप्रसार में योगदान देना इन राजाओं का आनुवंशिक कार्य था[1]। सातवीं शती के दो गुर्जर नरेशों जयभट और दण्ड के दानपत्रों में 'वीतराग' और 'प्रशान्तराग' विशेषण पाये जाते हैं, वे उनके जैनानुराग को ही प्रकट करते हैं[2]। मूलराज ने अनहिलवाड़ में 'मूलवसतिका' नामक जैन मन्दिर बनवाया। देवगुप्त के शिष्य शिवचन्द्र तथा उनके शिष्यों ने गुर्जर देश में जैन धर्म का खूब प्रचार किया और उसे बहुत से जैन मन्दिरों के निर्माण द्वारा अलङ्कृत किया।

भीम के राज्य में जैन धर्म का विशेष प्रसार हुआ। उसके मन्त्री प्राग्वाट वंशी विमलशाह ने आबू पर आदिनाथ का वह जैन मन्दिर बनवाया जिसमें भारतीय स्थापत्य-कला के उत्कृष्ट दर्शन होते हैं। इसकी सूक्ष्म चित्रकारी, बनावट की चतुराई तथा सुन्दरता जगत्-विख्यात है। इस प्रकार १२ वीं शताब्दी में गुजरात के सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक इतिहास की विधायक कड़ी के रूप में आचार्य हेमचन्द्र युगान्तरकारी और युगसंस्थापक व्यक्तित्व को लेकर अवतीर्ण हुए थे।

आचार्य हेमचन्द्र ने पूर्व प्रसिद्ध सभी आचार्यों से प्रेरणा प्राप्त की होगी। संस्कार समृद्धि का उन्हें जरूर लाभ मिला होगा। हरिभद्रसूरि, जिन्होंने 'षड्दर्शनसमुच्चय' की रचना श्रीमाल नगर में ही की थी, हेमचन्द्र की महत्वा-

---

१ –चौलुक्य कुमारपाल–भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी।

२– "भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान" डा० हीरालाल जैन

कांक्षा के प्रेरणा-स्रोत बन होंगे। 'रत्नाकरवर्तिका' के रचयिता श्री रत्नप्रभ-सूरि हेमचन्द्र के ज्येष्ठ समकालीन ही थे। इस प्रकार तत्कालीन परिस्थितियों का लाभ हेमचन्द्र को पूरा-पूरा मिला होगा।

हेमचन्द्र सिद्धराज जयसिंह के सभापण्डित थे। उस समय सिंह नामक सांख्यवादी, जैन वीराचार्य, 'प्रमाणनयतत्वावलोक', और 'स्याद्वाद-रत्नाकर' नामक टीका के रचयिता, प्रसिद्ध तार्किक वादि देवसूरि प्रख्यात विद्वान् थे। 'कुमुदचन्द्र' नाटक में जयसिंह की विद्वत्सभा का वर्णन है। उसमें तर्क, भारत, पाराशर, महर्षिसम महर्षि, शारदा देश के सुविख्यात 'उत्साह' पण्डित, सागर-सम सागर पण्डित तथा प्रमाणशास्त्र पारङ्गत 'राम' का उल्लेख है। बड़नगर की प्रशस्ति के रचयिता प्रज्ञाचक्षु प्राग्वाट् (पोरवाड़), कवि श्रीपाल और महा-विद्वान् महामति भागवत एवम् देवबोध परस्पर स्पर्धा करते हुए भी जयसिंह को मान्य थे। वाराणसी के भावबृहस्पति ने भी पाटन में आकर शैवधर्म के उद्धार के लिए जयसिंह को समझाया था। इसी भावबृहस्पति को कुमारपाल ने सोम-नाथ पाटन का गण्ड (रक्षक) भी बनाया था। इसके अतिरिक्त मलधारी हेम-चन्द्र 'गणरत्नमहोदधि' के कर्ता वर्धमानसूरि, 'वाग्भटालङ्कार' के कर्ता वाग्भट आदि विद्वान् पाटन में प्रसिद्ध थे। जिस पण्डित-मण्डल में आचार्य हेमचन्द्र ने प्रसिद्धि प्राप्त की वह साधारण नहीं था, किन्तु उनका प्रभाव प्रारम्भ से ही अक्षुण्ण रहा।

श्री देवसूरि, जो वादिदेवसूरि नाम से प्रसिद्ध थे, आचार्य हेमचन्द्र के साथ सिद्धराज जयसिंह की सभा में थे। एक बार कुमुदचन्द्र नामक दिगम्बर विद्वान् कर्णावती में आये। शास्त्रार्थ का दिन निश्चित हुआ। मयणल्ला देवी कुमुदचन्द्र की पक्षपातिनी थी। उस सभा में प्रभु श्री देवसूरि ने मुनीन्द्र हेमचन्द्र के साथ एक ही आसन को अलङ्कृत किया था। हेमचन्द्र ने अवस्था में कम होने पर भी आचार्यत्व की दृष्टि से वरिष्ठ होने के नाते, देवसूरि की सहायता की। उस समय सम्भवतः देवसूरि के समान हेमचन्द्र प्रसिद्ध नहीं थे। वाद-विवाद के अन्त में कुमुदचन्द्र ने कहा, 'श्री देवाचार्य ने मुझे जीत लिया'। श्री हेमचन्द्र ने कहा, 'सूर्य के समान देवाचार्य कुमुदचन्द्र को न जीत पाते तो श्वेता-म्बर संसार में कौन कटि में वस्त्र पहनने पाता।' 'प्रबन्धचिन्तामणि' के अनुसार

इस वाद-विवाद सभा में काकल कायस्थ भी उपस्थित थे। प्रभावक् के अनुसार उत्साह पण्डित भी वहाँ विद्यमान थे।

समकालीन आचार्यों में हेमचन्द्र का स्थान सर्वोपरि माना जाता है, क्योंकि समकालीन आचार्यों ने विशेषकर धार्मिक एवम् दार्शनिक पक्ष का ही मण्डन किया था। कुछ विद्वानों ने तीर्थङ्करों के चरित्र भी लिखे। किन्तु साहित्य, दर्शन एवम् धर्म के प्रत्येक पहलू पर समान रूप से साधिकार प्रकाश डालने वाला एक भी लेखक नहीं हुआ। देवसूरी ने 'प्रमाणनयतत्वालोकालङ्कार' तथा 'स्याद्वादरत्नाकर' नामकवृहट्टीका की रचना की; किन्तु वे टीकाएँ हेमचन्द्र की प्रमाणमीमांसा से निकृष्ट हैं। श्री दत्तसूरि के प्रशिष्य और यशोभद्रसूरि के, जिनका निर्वाण गिरनार में हुआ, शिष्य प्रद्युम्नसूरि ने 'स्थानक प्रकरण' लिखा। उनके शिष्य देवचन्द्र ने स्थानक प्रकरण पर टीका तथा 'शान्तिजिन चरित' लिखा। देवचन्द्र ने 'चन्द्रलेखा विजय प्रकरण' भी लिखा। हरिभद्रसूरि ने सं० १२१६ में 'नेमिचरित' पूरा किया। सोमप्रभसूरि ने 'कुमारपाल प्रति बोध' लिखा जिसमें हेमचन्द्र की महत्ता पर प्रकाश डाला गया। यशपाल ने 'मोहराज विजय' नाटक में कुमारपाल के जैनधर्म-वरण के विषय में वर्णन किया है। सोमदेव के पुत्र वाग्भट ने 'नेमिनाथ चरित' लिखा। आचार्य हेमचन्द्र का शिष्य-सम्प्रदाय भी बहुत बड़ा था। सम्राट कुमारपाल, उदयन मन्त्री आम्रभट्ट, वाग्भट, चाहड, खोलक, राजवर्गीया प्रजावर्गीय, आदि श्रावक शिष्यों के अतिरिक्त प्रबन्धशतकर्तृ कवि रामचन्द्रसूरि, अनेकार्थ कोश के टीकाकार महेन्द्रसूरि, गुणचन्द्रगणि, वर्धमानगणि, देवचन्द्रगणि, यशश्चन्द्रगणि, महान्वैयाकरण उदयचन्द्रगणि आदि इनके शिष्य थे।

इस प्रकार इस युग में साहित्य-सर्जना पर्याप्त मात्रा में हुई यद्यपि इसमें टीकाएँ तथा सार अधिक हैं। वास्तु-कला पर इस युग का प्रभाव पड़ा। कला की दृष्टि से भी यह युग बड़ा सफल रहा है। वास्तु-कला की विभिन्न शैलियों का विकास हेमचन्द्र-युग में ही हुआ। जैनों ने भवन-निर्माण में बहुत अधिक रुचि दिखायी। हेमचन्द्र के प्रभाव से गुजरात, काठियावाड, कच्छ, राजपूताना एवम् मालवा में जैनधर्म फैला। कुमारपाल प्रतिबोध के अनुसार पाटन में कुमार-विहार, पार्श्वनाथ में २४ तीर्थङ्करों के सोने, चाँदी एवम् ताँबे की प्रतिमाएँ हैं, तथा त्रिभुवन विहार में ७२ मन्दिर, जिनमें नेमिनाथ की सोने की प्रतिमा है, बने हैं। कुमार विहार में चैत्र और आश्विन की पूर्णिमा को रथ-यात्रा निकलती थी।

माण्डलिक राजाओं ने भी अपने-अपने नगरों में विहार बनवाये । गुजरात से वास्तु-कला में निष्णात लोगों की माँग दक्षिण में भी की जाती थी । उस युग में विद्या और कला को जो प्रेरणा मिली थी, उसमें हेमचन्द्र को भी विद्वान् होने के साधन सुलभ हुए होंगे ।

अनुश्रुति के अनुसार मालवा-विजय के पश्चात् सिद्धराज जयसिंह ने अवन्तिनाथ का विरुद धारण किया था । चालुक्य वंश में मालवा के साथ प्रतिस्पर्धा एवम् ईर्ष्या की भावना राजा भीमदेव प्रथम से चली आरही थी । अचार्य हेमचन्द्र के समय यह राजनीतिक स्पर्धा साहित्यिक स्पर्धा में परिणत हो गयी । मालवा की विजय के पश्चात् साहित्य एवम् संस्कृति के क्षेत्र में भी मालवा पर विजय प्राप्त कर सिद्धराज जयसिंह ने अवन्तिनाथ विरुद यथार्थ किया । साहित्यिक क्षेत्र में गुजरात को विजयश्री प्रदान करने हेतु आचार्य हेमचन्द्र ने प्रत्येक क्षेत्र में मौलिक साहित्य की रचना की ।

हेमचन्द्र का रचनाकाल

आचार्य हेमचन्द्र का सिद्धराज जयसिंह के साथ प्रथमपरिचय लगभग वि० सं० ११६६ के बाद हुआ होगा; क्योंकि सूरिपद प्राप्त होने के बाद ही उन्हें राजाश्रय मिला होगा । जयसिंह ने वि० सं० ११९१-९२ में मालवा पर विजय प्राप्त कर अवन्तिनाथ का विरुद धारण किया । तब सिद्धराज के आग्रहानुसार हेमचन्द्र ने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ शब्दानुशासन 'सिद्धहेम' व्याकरण नाम से लिखा । प्रबन्धचिन्तामणि के अनुसार यह ग्रन्थ एक वर्ष में पूर्ण हुआ । 'सपादलक्षप्रमाणं ग्रन्थ संवत्सरे रचयांचक्रे' इस व्याकरण में सवा लाख पङ्क्तियाँ थीं । इतना बड़ा ग्रन्थ एक वर्ष में पूरा हुआ होगा इसमें सन्देह है । डा० बूल्हर ने 'सिद्धहेम' की प्रशस्ति के आधार पर यह कहा है कि मालव-विजय के पश्चात् एवम् तीर्थ-यात्रा से पूर्व व्याकरण-रचना सम्पन्न हुई होगी जिसके लिये वे ३ वर्ष का समय मानते हैं । दो-तीन वर्ष का समय ग्रहीत कर लेने पर शब्दानुशासन का रचनाकाल वि० सं० ११९२-९५ तक माना जा सकता है । डा० बूल्हर के मत से दोनों कोश जयसिंह की मृत्यु के पूर्व रचे गये होंगे । इसी प्रकार संस्कृत द्वयाश्रय के प्रथम चौदह सर्गों की भी रचना उनके सामने ही हुई होगी; किन्तु सम्पूर्ण द्वयाश्रय काव्य वि० सं० १२२० के पूर्व नहीं हो सका होगा ।

तदनन्तर उन्होंने 'काव्यानुशासन' लिखा होगा । 'काव्यानुशासन' में कुमारपाल का कहीं भी नाम नहीं है । अतः उक्त ग्रन्थ कुमारपाल से पूर्व जय-

सिंह के राज्य में ही 'शब्दानुशासन' के बाद लिखा गया होगा। इसका रचना-काल वि. सं. ११९५–९६ तक होना सम्भव है। 'हेम वृहद्वृत्ति' के व्याख्याकार पं. चन्द्रसागर सूरि के मतानुसार हेमचन्द्राचार्य ने व्याकरण की रचना सं० ११९३–९४ में की थी। डा० बूल्हर के मत से 'काव्यानुशासन' तथा 'छन्दोऽनुशासन' कुमारपाल के प्रारम्भिक राज्यकाल में रचे गये होंगे। बूल्हर का का मत, कि 'छन्दोऽनुशासन' में राजा की स्तुति नहीं है, भ्रान्त है। 'छन्दोऽनुशासन' में सिद्धराज जयसिंह एवम् कुमारपाल दोनों की स्तुतियाँ है। जिनमें ४ जयसिंह के लिए तथा ४९ दूसरे चालुक्य नृपों के लिए हैं; किन्तु अधिकांश में कुमारपाल की स्तुतियाँ है। अतः 'छन्दोऽनुशासन' कुमारपाल के राज्यकाल में ही रचा गया होना चाहिये।

राजा कुमारपाल के आग्रह से आचार्य हेमचन्द्र ने 'योगशास्त्र', 'वीतरागस्तुति', 'कुमारपाल चरित' (प्राकृत द्वयाश्रय काव्य) एवम् 'त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित' की रचना की। उनकी अन्तिम रचना 'प्रमाणमीमांसा' थी, यह उनकी स्वलिखित प्रस्तावना से सिद्ध होता है[1]। कुमारपाल का शासन-काल वि० सं० १२२९ तक था और वही हेमचन्द्र का जीवन-काल था। वे कुमारपाल के ६ मास पूर्व ही स्वर्गवासी हो चुके थे, अतः हेमचन्द्र का रचना-काल निश्चित रूप से वि० सं० ११९२ से १२२८ तक माना जा सकता है। डा० बूल्हर के मत से कुमारपाल के प्रारम्भिक राज्यकाल में कोशों के शेष परिशिष्ट तथा 'देशी नाममाला' की रचना हुई होगी। तीन निघण्टु इसी काल के हैं। देशी नाममाला की विस्तृत टीका का रचना-काल डा० बूल्हर वि० सं० १२१४–१५ मानते हैं। 'योगशास्त्र' तथा 'वीतरागस्तोत्र', वि० सं० १२१६ के पश्चात् लिखे गये होंगे। तत्पश्चात् टीका लिखी गयी होगी। 'त्रिषष्टिशलाका-पुरुष चरित' का रचना-काल डा० बूल्हर वि० सं० १२१६–१२२९ के बीच मानते हैं। 'कुमारपाल चरित', 'संस्कृत द्वयाश्रय काव्य' के अन्तिम पाँच सर्ग तथा 'अभिधान चिन्तामणि' की टीका भी इसी काल की समझनी चाहिये; क्योंकि 'अभिधान चिन्तामणि' में 'योगशास्त्र' एवम् 'त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित' दोनों

---

१ –आनन्तर्यो वाथ शब्दः शब्दकाव्यछन्दो नु शासनेभ्योऽनंतरं प्रमाण मीमांस्यत इत्यर्थः इति स्वयमेव आचार्योक्त्यैव प्रतीयते–आर्हतमत प्रभाकर प्रकाशन प्रमाणमीमांसा-मोतीलाल वाधाजी, १९६ भवानी पेठ, पूना, तथा त्रि० ष० पु० च० १८–१९

का उल्लेख है। निश्चित रूप से वि० सं० १२१६ के पश्चात् अनेकार्थ कोश की टीका आचार्य की दृष्टि के पश्चात् महेन्द्रसूरि शिष्य ने लिखी होगी। डा० बूल्हर 'प्रमाणमीमांसा' को वि० सं० १२१६-२९ के बीच में रखते है। इस तरह, आचार्य का रचना-काल सं० ११९२ से आरम्भ होता है तथा १२२९ तक समाप्त होता है।

हेमचन्द्र के संस्कृत ग्रन्थों की संख्या और उनका विषयानुसार वर्गीकरण

हेमचन्द्र द्वारा रचित पङ्क्तियों की संख्या ३॥ करोड़ बतायी जाती है। यदि हम इसे अतिशयोक्ति मान लें, तो उनकी १०० से अधिक रचनाएँ होंगी। रचनाओं को देखने से यह स्पष्ट होता है कि हेमचन्द्र अपने समय के अद्वितीय विद्वान थे। साहित्य के सम्पूर्ण इतिहास में किसी दूसरे ग्रन्थकार की इतनी अधिक और विविध विषयों की रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं। रचनाओं की संख्या के सम्बन्ध में 'प्रभावकचरित' का हेमसूरि प्रबन्ध द्रष्टव्य है जिसमें १२ ग्रन्थों के नाम गिनाये हैं–

व्याकरणं पंचांगं प्रमाणशास्त्रं प्रमाणभीमांसाम् ।
छन्दोंलंकृति चूडामणीच शास्त्रे विभुर्व्यधित ॥
एकार्थानकार्था देश्या निगण्टु इति च चत्वारः ।
विहिताश्च नाम कोशाः भुवि कविता नयुपाध्यायाः ॥
त्रयुत्तरषष्ठिशलाका–नरेशव्रत गृहिव्रत विचारे ।
अध्यात्म योगशास्त्रं विदधेच द्वयाश्रयं महाकाव्यम् ॥
चक्रे विंशतिमूच्चैः स वीतरागस्तवानांच ।
इति तद्विहित ग्रन्थ-संख्यैव हि न विद्यते ॥
नामापि न विदन्त्यन्येत्वां मादृशा मंदबुद्धयः ॥ ८३२–८३६

काव्यमाला सीरीज़ के अन्तर्गत काव्यानुशासन की प्रस्तावना में औफ्रेचेट कॅटलॉग (Aufrech's catalogus) दिया हुआ है। उस सूची के अनुसार 'अनेकार्थ कोश' अनेकार्थ शेष, 'अभिधानचिन्तामणि',(नाममाला व्याख्या) 'अलङ्कार चूडामणि', 'उणादि सूत्रवृत्ति', 'काव्यानुशासनम्' 'छन्दोऽनुशासनम्' तदवृतिः 'देशीनाममाला', सवृत्ति, द्वयाश्रय काव्य, सवृत्ति, धातुपाठ सवृत्ति, धातुपारायण सवृत्ति, धातुमाला, नाममाला शेष, निघण्टु शेष, प्रमाणमीमांसा सवृत्तिः बलाबल सूत्र बृहदवृतिः बालभाषा व्याकरण सूत्रवृत्ति, योग-शास्त्र, विभ्रमसूत्र लिङ्गानुशासन सवृत्ति, शब्दानुशासन सवृत्ति, शेष सङ्ग्रह, शेष सङ्ग्रह सारोद्धार इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ मानी गयी हैं।

डा० हीरालाल जैन के अनुसार हेमचन्द्र ने 'उत्तराध्ययन' पर टीका लिखी थी। 'सर्वदर्शन सङ्ग्रह' में हेमचन्द्र के नाम पर दो ग्रन्थों के नाम और हैं 'आवश्यक सूत्र भाष्यवृत्ति' तथा 'आप्तनिश्चयालङ्कार'। सम्भवतः माधवाचार्य के समय इन ग्रन्थों की प्रसिद्धि रही होगी, इसलिये 'सर्वदर्शन सङ्ग्रह' में उनका उल्लेख है। 'आप्तनिश्चयालङ्कार' का उल्लेख श्री वरदाचारी ने भी किया है। साथ में 'लघुअर्हन्नीति' नामक नवीन संक्षिप्त ग्रन्थ का उल्लेख किया है। कहीं-कहीं 'न्याय बलाबलसूत्राणि' तथा 'सप्तसन्धान महाकाव्यम्' के उल्लेख मिलते हैं। विषयानुसार महत्वपूर्ण रचनाएँ निम्न प्रकार हैं–

(१) **पुराण**–'त्रिशष्टिशलाका पुरुषचरित'– इसमें संस्कृत काव्य शैली द्वारा जैनधर्म के २४ तीर्थंकरों, १२ चक्रवर्तियों, ६ नारायणों, ६ प्रतिनारायणों एवम् ६ बलदेवों, इस प्रकार ६३ प्रमुख व्यक्तियों के चरितों का वर्णन किया गया है। यह ग्रन्थ पुराण और काव्य-कला दोनों ही दृष्टि से उत्तम है। परिशिष्ट पर्व तो भारत के प्राचीन इतिहास की गवेषणा में बहुत उपयोगी है।

(२) **काव्य**–'द्वयाश्रय काव्य'– इस नाम के दो कारण है। प्रथम कारण तो यह है कि संस्कृत और प्राकृत दोनों ही भाषाओं में लिखा गया है। द्वितीय कारण यह भी सम्भव है कि इस कृति का उद्देश्य अपने समय के राजा कुमारपाल का चरित्र वर्णन करना हैं। और इससे भी अधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य संस्कृत और प्राकृत व्याकरण के सूत्र-क्रमानुसार नियमों के उदाहरण प्रस्तुत करना है।

(३) **स्तोत्र**–'द्वात्रिंशिकाएँ'– स्तोत्र-साहित्य की दृष्टि से उत्तम कृतियाँ 'वीतरागस्तुति' और 'महावीर स्तोत्र' भी सुन्दर मान जाते हैं। 'वीतराग स्तोत्रों की संख्या २० है।

(४) **व्याकरण** –'शब्दानुशासन'– संस्कृत- प्राकृत दोनों भाषाओं के लिए यह व्याकरण उपयोगी और प्रामाणिक माना जाता है। इसमें सूत्रवृत्ति, लघु तथा वृहद्वृत्ति, तथा गणपाठ, धातुपाठ, उणादि सूत्र मिलाकर ८४००० श्लोक हैं।

(५) **छन्द** –'छन्दोऽनुशासन' –इसमें संस्कृत, प्राकृत एवम् अपभ्रंश-साहित्य के छन्दों का निरूपण किया गया है। इन्होंने छन्दों के उदाहरण अपनीं मौलिक रचनाओं द्वारा दिये है। इसमें रसगङ्गाधर के समान सब कुछ आचार्य का अपना है।

(६) **अलङ्कार** –'काव्यानुशासन'– यह अपने विषय का साङ्गो-

पाङ्ग ग्रन्थ है ।ग्रन्थकार ने स्वयम् ही सूत्र, अलङ्कार–चूडामणि नाम की वृत्ति एवम् विवेक नाम की टीका लिखी है । इसमें काव्य के प्रयोजन, हेतु अर्थालङ्कार, गुण-दोष, ध्वनि इत्यादि सिद्धान्तों पर हेमचन्द्र ने गहन एवम् विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया है ।

(७) **कोश** —इनके ४ प्रसिद्ध कोश हैं– १, 'अभिधान-चिन्तामणि' २, 'अनेकार्थसङ्ग्रह' ३, 'निघण्टु' ४, 'देशीनाममाला' । प्रथम में अमरकोश के समान संस्कृत की एक वस्तु के लिए अनेक शब्दों का उल्लेख है । दूसरा कोश एक शब्द के अनेक अर्थों का निरूपण करता है । तीसरा वनस्पति शास्त्र का कोश है । चौथा ऐसे शब्दों का कोश है जो उनके संस्कृत अथवा प्राकृत व्याकरण से सिद्ध नहीं होते । प्राकृत, अपभ्रंश एवम् आधुनिक भाषाओं के अध्ययन के लिए यह कोश बहुत ही उपयोगी है ।

(८) **न्याय**– 'प्रमाणमीमांसा'– इसमें प्रमाण और प्रमेय का सविस्तार विवेचन विद्यमान है ।

(९) **योगशास्त्र**– इसमें जैन-दर्शन के ध्येय के साथ योग की प्रक्रिया के समन्वय का प्रयास किया गया है । इसकी शैली पतंजली के योगसूत्र से मिलती है । पर विषय और वर्णनक्रम दोनों में मौलिकता और भिन्नता है ।

द्वादश व्रत— अणुव्रत–५– १. अहिंसा, २. सत्य, ३. अस्तेय, ४. ब्रह्मचर्य और ५. अपरिग्रह ।

गुणव्रत–३– १. दिग्विरतिः, २. भोगोपभोगमान और ३. अनर्थं दण्ड विरमण ।

शिक्षाव्रत–४– १. सामयिकव्रत, २. देशावकासिक, ३. पोषध और अतिथि संविभाग ।

आचार्य के ३६ गुण—

(१) तप-१२– १. अनशन, २. अवमौदर्य, ३. वृत्तिपरिसंख्यान, ४. रसपरित्याग, ५. विविक्तशैंय्यासन, ६. कायक्लेश, ७. प्रायश्चित्त, ८. विनय, ९. वैयावृत्य, १०. स्वाध्याय, ११. व्युत्सर्ग और १२. ध्यान ।

(२)धर्म-१०– १. उत्तमक्षमा, २. मार्दव, ३. आर्जव, ४. शौच, ५. सत्य, ६. संयम, ७. तप, ८. त्याग, ९. आकिंचन्य और १०. ब्रह्मचर्य ।

(३)आचार-५–	१. ज्ञानाचार, २. दर्शनाचार, ३. तपाचार ४. वीर्याचार और ५. चरित्राचार।
(४)आवश्यक ६–	१. सामायिक, २. चतुर्विशंतिस्तव, ३. वन्दना, ४. प्रतिक्रमण, ५. कायोत्सर्ग, और ६. प्रत्याख्यान।
(५)गुप्ति ३–	१. कायगुप्ति, २. वचनगुप्ति और ३. मनोगुप्ति।
३६	

अध्याय–२

हेमचन्द्र के काव्य-ग्रन्थ

द्वयाश्रय काव्य तथा कुमारपालचरितम्

आचार्य हेमचन्द्र ने अनेक विषयों पर विविध प्रकार के काव्य रचे हैं। उनके काव्य-साहित्य में इतिहास है, पुराण है, दर्शन है एवम् भक्ति भी है। सत्य बात यह है कि आचार्य मूलतः जैनधर्म के उद्धारक एवम् प्रचारक रहे हैं। जीवन का प्रधान लक्ष्य जैनधर्म का प्रचार होने के कारण उनकी प्रत्येक साधना उसी लक्ष्य की पूर्ति की ओर अग्रसर हुई। अश्वघोष के समान हेमचन्द्र भी सोद्देश्य काव्य-रचना में विश्वास रखते थे। इनका काव्य "काव्यमानन्दाय," न होकर 'काव्यम् धर्म-प्रचाराय' है। ऐसी रचनाओं में काव्य-तत्व के विशेषरूप से न रहने पर भी समाज के अभ्युदय के लिए योजना अवश्य होती है। काव्य के मुख्य प्रयोजन के साथ आश्रयदाता की पाण्डित्यपूर्ण प्रशंसा एवम् धर्म-गुरु तीर्थङ्करों के प्रति भक्ति-भावयुक्त श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना भी उनके काव्य का उद्देश्य प्रतीत होता है। इस दृष्टि से आचार्य हेमचन्द्र के काव्य तीन श्रेणियों में विभाजित किये जा सकते हैं– (१) ऐतिहासिक काव्य (२) पुराण (३) भक्ति एवम् दर्शन काव्य। उनका द्वयाश्रय महाकाव्य निश्चितरूप से ऐतिहासिक काव्य है। 'त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित' एक पुराण काव्य है, जिसमें जैनधर्म एवम् संस्कृति का विशद् वर्णन है। 'द्वात्रिंशिका' के अन्तर्गत दो छोटे-छोटे काव्य हैं जिनमें जैन-दर्शन की दृष्टि से स्वमत मण्डन एवम् परमत खण्डन विद्यमान है। 'वीतराग स्तोत्र' विशुद्ध रूप से भक्तिकाव्य है जिसका संस्कृत स्तोत्र-साहित्य में महत्व पूर्ण स्थान है।

संस्कृत द्वयाश्रय काव्य—

शास्त्र-काव्य की परम्परा में आचार्य हेमचन्द्र के द्वयाश्रय काव्य का स्थान अपूर्व है। उनका यह काव्य व्याकरण, इतिहास और काव्य तीनों का वाहक है[1]। "द्वयाश्रय" काव्य में दो भाग हैं। "द्वयाश्रय" नाम से ही स्पष्ट है कि उसमें दो तथ्यों को सन्निबद्ध किया गया है। प्रथम भाग में २० सर्ग और २८८८ श्लोक हैं। द्वितीय भाग ८ सर्गों में विभाजित है। यह प्राकृत-भाषा का काव्य है। ऐतिहासिक लक्ष्य के साथ-साथ निश्चित् रूप से व्याकरण भी इसका लक्ष्य है। क्योंकि अपने ही व्याकरण में दिये हुए नियमों के उदाहरणों को दिखाना भी इस काव्य का प्रयोजन है। अतः इसमें चालुक्य वंश के चरित्र के साथ व्याकरण के सूत्रों के उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं[2]। इस काव्य में कुमारपाल एवम् उनके पूर्वजों का वृत्तान्त विस्तृत रूप में मिलता है जो चालुक्य वंश के इतिहास के लिए स्पष्टतया मूल्यवान है। कल्हण के अनन्तर रचे गये ऐतिहासिक काव्यों में जैन मुनि हेमचन्द्र विशेष उल्लेखनीय हैं जिन्होंने अनहिलवाड़ के चालुक्य वंशीय राजा कुमारपाल के सम्मानार्थ 'द्वयाश्रय' काव्य की रचना की। प्राकृत द्वयाश्रय काव्य को कुमारपालचरित भी कहते हैं। जैन कवि हेमचन्द्र ऐतिहासिक विषय पर निबद्ध महाकाव्यों की रचना में नितान्तदक्ष हैं; परन्तु इनका साहित्यिक तथा ऐतिहासिक मूल्य परिवर्तनशील है[3]। हेमचन्द्र ने द्वयाश्रय काव्य में गुजरात के राजाओं का चरित अपने आश्रयदाता एवम् प्रिय-शिष्य कुमारपाल तक निबद्ध किया है। यह ऐतिहासिक होने के साथ-साथ शास्त्र-काव्य भी है तथा संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के व्याकरण जानने के लिए नितान्त उपयोगी है।

हेमचन्द्र का संस्कृत द्वयाश्रय[4] काव्य बहुगुण सम्पन्न है। इस महाकाव्य में उन्होंने सूत्रों का सन्दर्भ देकर अपनी विशिष्ठ प्रतिभा का परिचय दिया है। इसमें सृष्टि-वर्णन, ऋतु-वर्णन, रस-वर्णन, आदि सभी महाकाव्य के गुण वर्तमान हैं।

---

१ –विश्व-साहित्य की रूप-रेखा–भगवतशरण उपाध्याय।

२ –संस्कृत-साहित्य का इतिहास–ए०वी०कीथ–तथा बलदेव उपाध्याय

३ –संस्कृत-साहित्य की रूपरेखा–नानूराम व्यास और चन्द्रशेखर पाण्डे तथा रामजी उपाध्याय का संस्कृत-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

४ –द्वयाश्रय काव्य Commentary by अभयतिलक गणी Vor I & II by A. V. Kathawate ; Bombay, Sanskrit and Prakirt series vol I, 1921, Vol II, 1915

संक्षेप में द्वयाश्रय महाकाव्य की विषय-वस्तु निम्नानुसार है :—

संस्कृत-कवि परम्परा का अनुसरण करते हुए आचार्य हेमचन्द्र भी मङ्गलाचरण से काव्य का आरम्भ करते हैं। तत्पश्चात् चालुक्य वंश की स्तुति, अणहिलपट्टन का रस-भरित वर्णन करके चालुक्य वंश के मूल-पुरुष मूलराज का वर्णन प्रारम्भ करते हैं। यहाँ प्रथम सर्ग समाप्त होता है। मूलराज के स्वप्न में श्री शम्भु का उपदेश, बन्दीकृत प्रभात-वर्णन, ग्राहरिपु को दण्ड देने के लिए मन्त्रियों को प्रोत्साहन, इत्यादि वर्णन में द्वितीय सर्ग समाप्त होता है। तृतीय सर्ग शरत्कल-वर्णन से आरम्भ होता है। तत्पश्चात् मूलराज की विजय-यात्रा का उपक्रम, प्रस्थान, जम्बूमालि में सरोवर के किनारे सेना-निवास का सुन्दर वर्णन आता है। चौथे सर्ग में मूलराज के पास ग्रहारि के दूत का आगमन, सम्भाषण, मूलराज का सम्यक् उत्तर, मूलराज के द्वारा प्रेषित दूत का ग्रहारि को सन्देश, ग्रहारि का रण के लिए प्रस्थान, मार्ग में अरिष्ट दर्शन, देवतायन तोड़ते हुए जम्बूमालि में आगमन, इत्यादि बातें समाहित हैं। पञ्चम सर्ग में वीर-रसपूर्ण युद्ध-वर्णन है। ग्रहारि की प्राण-रक्षा के लिए उसकी पत्नी की याचना, मूलराज के राजधानी में पुनरागमन के साथ यह सर्ग समाप्त होता है। मूलराज के चामुण्डराज नाम का पुत्र होता है। चामुण्डराज का वर्णन यहाँ प्रारम्भ होता है। लाट देश के राजा को दण्ड देने के लिए मूलराज तथा चामुण्डराज दोनों श्वभ्रवती तटपर गये। दोनों के युद्ध-वर्णन, लाट हनन के पश्चात् चामुण्ड के राज्याभिषेक तथा मूलराज के स्वर्ग-गमन वर्णन में छटा सर्ग समाप्त होता है। चामुण्डराज के वल्लभराज, दुर्लभराज और नागराज के नाम तीन पुत्र हुए। वल्लभराज द्वारा मालव देश पर आक्रमण, वहाँ शीतलिका रोग से पीड़ित होकर वल्लभराज का स्वर्ग-गमन, चामुण्ड का पुत्र शोक, दूसरे पुत्र दुर्लभराज को गद्दी पर बैठाकर नर्मदा किनारे तप करने के लिए चामुण्डराज का गमन दुर्लभराज का महेन्द्र की बहन दुर्लभ देवी के स्वयम्बर में जाना, विवाह करना, विवाहोत्सव का वर्णन, नागराज का भी महेन्द्र की दूसरी भगिनी से विवाह, तत्पश्चात् युद्ध के लिए तैयार नृप-गण को मार कर राजधानी में दुर्लभराज का पुनरागमन, इत्यादि विषय सप्तम सर्ग में वर्णित हैं। नागराज को भीम नाम का पुत्र हुआ। भीम का राज्याभिषेक, भीम का चर से भाषण, सिन्ध-पति हम्मुक और भीमराज का युद्ध, हम्मुक की पराजय, इत्यादि विषय अष्टम सर्ग में सम्मिलित हैं। भीमदेव का चेदि देश गमन, दूत का आगमन, सम्मान, भीमराज का वापस चला आना; भीमराज के क्षेमराज और कर्णदेव नामक दो पुत्र हुए।

क्षेमराज के देवप्रसाद नाम का पुत्र हुआ। कर्ण का राज्याभिषेक, भीमराज का स्वर्ग-गमन,क्षेमराज का सरस्वती नदी के पास मण्डूकेश्वर पुण्यक्षेत्र में तप करना, उनकी सेवा के लिए पुत्र देवप्रसाद का जाना, उसे दधिस्थली का प्राप्त होना, जयकेशी की पुत्री मयणल्ल देवी से कर्ण का विवाह; इन सब बातों का वर्णन नवम् सर्ग में है। दशम् सर्ग में कर्ण का सन्तान रहित रहना, लक्ष्मी देवी भवन-गमन, लक्ष्मी देवी की उपासना, वर्षा ऋतु का वर्णन, प्रलोभनार्थ अप्सराओं का आगमन, कर्ण का स्थिरत्व, भग्नमनोरथा अप्सराओं का चला जाना, फिर कि ीं उग्र पुरुष का कर्ण को खाने के लिए दौड़ना, कर्ण का अविचलित रहना, अन्त में लक्ष्मी देवी का प्रसन्न होना, कर्ण के द्वारा लक्ष्मी की स्तुति, पुत्र-प्राप्ति का वर देकर लक्ष्मी का अंतर्द्धान होना, कर्णराज का राजधानी वापस लौटना वर्णित है। ग्यारहवें सर्ग में लक्ष्मी देवी की कृपा से श्रीमती मयणल्ला देवी गर्भवती रहती है तथा दसवें मास में जयसिंह का जन्म होता है। यहाँ बाल-वर्णन विस्तार पूर्वक मिलता है। जयसिंह का राज्याभिषेक कर कर्ण देव स्वर्ग सिधार जाते हैं। देवप्रसाद अपना पुत्र त्रिभुवनपाल जयसिंह के हाथों में देकर चिता में प्रवेश करते हैं। बारहवें सर्ग में राक्षसों का उपद्रव बताने के लिए ऋषियों का आगमन होता है। तदनुसार बर्बर राक्षसों का वध करने के लिए जयसिंह प्रस्थान करते हैं। युद्ध होता है। अन्त में पत्नी की प्रार्थना पर जयसिंह राक्षस को छोड़ देते हैं और फिर घर आते हैं। तेरहवें सर्ग में बर्बर राक्षसों ने कई भेंटें दीं उनसे जयसिंह का अच्छा मनोरंजन होता है। जनश्रुति सुनने के लिए जयसिंह नगर के बाहर जाते हैं। वहाँ सरस्वती नदी के किनारे नागमिथुन-दर्शन होता है। दूसरे दिन रात में योगिनी के साथ राजा का वार्तालाप होता है। चौदहवें सर्ग में यशोवर्मा राजा को मित्र बनाकर कालिका योगिनी की पूजा करता है। राजा सेना के साथ प्रस्थान करता है। अन्त में यशोवर्मा राजा को बाँधता है। पन्द्रहवें सर्ग में सिद्धराज जयसिंह राजधानी में आकर उद्दण्डों को दण्ड देता है। सोमनाथ की पवित्र यात्रा करता है। वहाँ कुमारपाल राजा होगा, ऐसा कहकर शम्भु अंतर्द्धान हो जाते हैं। यहाँ यात्रा-वर्णन, ऋतु-वर्णन, तथा मन्दिर-स्थापना का अति सुन्दर वर्णन है। अन्त में जयसिंह का स्वर्ग-गमन होता है। सोलहवें सर्ग में कुमारपाल का राज्याभिषेक होता है। उस समय पर्याप्त लोग इसका विरोध करते हैं। कुमारपाल अर्बुदगिरि जाते हैं। यहाँ अर्बुद पर्वत का सुन्दर वर्णन है। प्रायः सभी ऋतुओं का वर्णन यहाँ आता है। सत्रहवें सर्ग में स्त्रियों का पुष्पोच्चय, वल्लभों के साथ गमन, नदी, जलक्रीड़ा, निशा, सुरत, सूर्योदय, आदि का

सुन्दर वर्णन है। अट्ठारहवें सर्ग में कुमारपाल का अरणोराज से युद्ध का वर्णन है तथा उसमें अरणोराज का पराभव बतलाया गया है। उन्नीसवें सर्ग में अरणोराज जल्हण कन्या को कुमारपाल को देते हैं। कुमारपाल उससे विवाह करते हैं। इस बात का विरोध करने वाले वल्लाल का सेनापति पराभव करते हैं। अन्यान्य शत्रुओं को जीतकर कुमारपाल पृथ्वी का न्यायपूर्वक शासन करते हैं। बीसवें सर्ग में एक दिन रात में उनका एक ग्रामीण से संवाद होता है। कुमारपाल आर्या घोषणा कर पति-पुत्र हीन स्त्री की आत्मोत्सर्ग से रक्षा करते हैं तथा अनाथों की सम्पत्ति न लेने का नियम बनाते हैं। यहाँ केदार हर्म्य का सुन्दर वर्णन है। अणहिलपुर में कुमारपालेश्वर नामक देवपत्तन, पितृवेश्मन कुमारपाल बनवाते हैं।

इस काव्य की श्लोक-संख्या सर्गानुसार इस प्रकार है--

सर्ग १,-२०१, सर्ग २-११०, सर्ग ३-१६०, सर्ग ४-०६४, सर्ग ५-१४२, सर्ग ६-१०७, सर्ग ७-१४२, सर्ग ८-१२५, सर्ग ९-१७२, सर्ग १०-०९०, सर्ग ११-११८, सर्ग १२-८१, सर्ग १३-११०, सर्ग १४-०७४, सर्ग १५-१२४, सर्ग १६-०९७, सर्ग १७-१३८, सर्ग १८-१०६, सर्ग १९-१३७, सर्ग २०-१०२,

वर्णन की दृष्टि से प्रथम सर्ग में नगर-वर्णन, दूसरे सर्ग में प्रभात-वर्णन, तीसरे, दसवें, पन्द्रहवें, और सोलहवें सर्ग में विविध ऋतुओं का वर्णन, पाँचवें, छठे, आठवें, बारहवें, तथा अठ्ठाहरवें सर्ग में युद्ध-वर्णन, सातवें तथा पन्द्रहवें सर्ग में यात्रा-वर्णन, सोलहवें सर्ग में पर्वत-वर्णन, उन्नीसवें सर्ग में विवाह-वर्णन, सत्रहवें सर्ग में स्त्रियों का पुष्पोच्चय, वल्लभों के साथ गमन, नदी, जलक्रीड़ा, निशा, सुरत, एवम् सूयर्दोय आदि का वर्णन है। संस्कृत महाकाव्य के सभी लक्षण इसमें विद्यमान हैं। अतः महाकाव्य की दृष्टि से भी यह एक अत्यन्त सफल रचना है।

प्राकृत-द्वयाश्रय काव्य अथवा कुमारपालचरित—

आचार्य हेमचन्द्र ने स्वरचित प्राकृत-व्याकरण के नियमों को स्पष्ट करने के लिए प्राकृत-द्वयाश्रय काव्य की रचना की। इसमें ८ सर्ग हैं। आरम्भ के ६ सर्गों में महाराष्ट्रीय प्राकृत के उदाहरण और नियम वर्णित हैं। शेष दो सर्गों में शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका पैशाची और अपभ्रंश भाषा के उदाहरण प्रयुक्त हैं। 'कुमारपालचरित' के अन्तिम सर्ग में १४-८२ तक पद्य अपभ्रंश में मिलते हैं। इन पद्यों में धार्मिक उपदेश भावना प्रधान है। अपभ्रंश

में अनेक नये छन्दों का प्रादुर्भाव हुआ जिनका संस्कृत में अभाव है। अपभ्रंश में ह्रस्व और दीर्घ स्वर के व्यत्यय के नियम का हेमचन्द्र ने निर्देश किया है। जैसे—सरस्वती-सरसई, माला-माल, ज्वाला-जाल, मारिअ-मारिआ। इस काव्य का प्राकृत में वही महत्व और स्थान है जो संस्कृत में भट्टि काव्य का; किन्तु भट्टि काव्य में वह पूर्णता तथा क्रमबद्धता नहीं है जो हेमचन्द्र की कृति में मिलती है। यह शास्त्रीय काव्य है। इस पर पूर्ण कलश गणी की संस्कृत टीका भी है।

कथावस्तु—

अणहिलपुर नगर में कुमारपाल शासन करता था। इसने अपने भुजबल से राज्य की सीमा को बहुत विस्तृत किया था। प्रातःकाल स्तुति-पाठक अपनी स्तुतियाँ सुनाकर राजा को जाग्रत करते थे। शयन से उठकर राजा नित्यकर्म कर तिलक लगाता और द्विजों से आशीर्वाद प्राप्त करता था। वह सभी लोगों की प्रार्थनाएँ सुनता, मातृगृह में प्रवेश करता और लक्ष्मी की पूजा करता था। तत्पश्चात् व्यायाम शाला में जाकर व्यायाम करता था। इन समस्त क्रियाओं के अनन्तर वह हाथी पर सवार होकर जिन-मन्दिर में दर्शन के लिए जाता था। वहाँ जिनेन्द्र भगवान की विधिवत पूजा-स्तुति करने के अनन्तर संगीत का कार्यक्रम आरम्भ होता था। तदनन्तर वह अपने अश्व पर आरूढ़ होकर धवलगृह में लौट आता था।

मध्याह्न के उपरांत कुमारपाल उद्यान-क्रीड़ा के लिए जाता था। इस प्रसङ्ग में कवि ने वसन्त ऋतु की सुषमा का व्यापक वर्णन किया है। क्रीड़ा में सम्मिलित नर-नारियों की विभिन्न स्थितियाँ वर्णित हैं। जब ग्रीष्मऋतु का प्रवेश होता है, तो कवि ग्रीष्म की उष्णता और दाह का वर्णन करता है। इस प्रसङ्ग में राजा की जल-क्रीड़ा का विवरण दिया गया है। वर्षा, हेमन्त और शिशिर, इन तीनों ऋतुओं का चित्रण भी सुन्दर किया है। उद्यान से लौटकर राजा कुमारपाल अपने महल में आता है और सान्ध्य-कर्म करने में संलग्न हो जाता है। चन्द्रोदय होता है। कवि आलङ्कारिक शैली में चन्द्रोदय का वर्णन करता है। कुमारपाल मण्डपिका में बैठता है, पुरोहित मन्त्रपाठ करता है। बाजे बजते हैं, और वारवनितायें थाली में दीपक रखकर उपस्थित होती हैं। राजा के समक्ष सेठ, सार्थवाह आदि महाजन आसन ग्रहण करते हैं। तत्पश्चात् सन्धि-विग्राहिक राजा के बलवीर्य का यशोगान करता हुआ विज्ञप्ति पाठ आरम्भ

करता है—"हे राजन् ! आपकी सेना के योद्धाओं ने कोकण देश में पहुँच कर मल्लिकार्जुन नामक कोकणाधीश की सेना के साथ युद्ध किया और मल्लिकार्जुन को परास्त किया है। दक्षिण दिशा को जीत लिया गया है। पश्चिम का सिन्धु देश आपके अधीन हो गया है। यवन नरेश ने आपके भय से ताम्बूल का सेवन त्याग दिया है। वाराणसी, मगध, गौड़, कान्यकुब्ज, चेदि, मथुरा और दिल्ली आदि नरेश आपके वशवर्ती हो गये हैं।"

इन क्रियाओं के अनन्तर राजा शयन करने चला जाता है। सोकर उठने पर परमार्थ की चिन्ता करता है। आठवें सर्ग में श्रुतदेवी के उपदेश का वर्णन है। इसमें मागधी पैशाची, चूलिका पैशाची और अपभ्रंश के उदाहरण आये हैं। इस सर्ग में आचार सम्बन्धी नियमों के साथ उनकी महत्ता एवम् उनके पालन करने का फल भी प्रतिपादित है।

आलोचना—

इस महाकाव्य की कथा-वस्तु एक दिन की प्रतीत होती है। यद्यपि कवि ने कथा को विस्तृत करने के लिए ऋतुओं तथा उन ऋतुओं में सम्पन्न होने वाली क्रीड़ाओं का व्यापक चित्रण किया है, तो भी कथा का आयाम महाकाव्य की कथा-वस्तु के योग्य बन नहीं सका है। विज्ञप्ति निवेदन में दिग्विजय का चित्रण आ गया है। पर यह भी कथा-प्रवाह में साधक नहीं है। कथा की गति वर्तुलाकार-सी प्रतीत होती है। और, दिग्विजय का चित्रण उस गति में मात्र बुलबुला बनकर रह गया है। अतः संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि इस महाकाव्य की कथा-वस्तु का आयाम बहुत छोटा है। एक अहोरात्र की घटनाएँ रस-संचार करने की पूर्ण क्षमता नहीं रखती है।

नायक का सम्पूर्ण जीवन-चरित्र समक्ष नहीं आ पाता है। उसके जीवन का उतार-चढ़ाव प्रत्यक्ष नहीं हो पाया है। अतः धीरोदात्त नायक के चरित्र का सम्पूर्ण उद्घाटन न होने के कारण कथा-वस्तु में अनेकरूपता का अभाव है। अवान्तर-कथाओं की योजना भी नहीं हो पायी है। विज्ञप्ति में निवेदित घटनाएँ नायक के चरित्र का अंग बनकर भी उससे पृथक जैसी प्रतीत होती हैं। अतएव कथा-वस्तु में शैथिल्य दोष होने के साथ कथानक की अपर्याप्तता नामक दोष भी है।

वस्तु-वर्णन की दृष्टि से यह महाकाव्य सफल है। ऋतु-वर्णन, सन्ध्या, उषा, प्रातःकाल एवम् युद्ध आदि के दृश्य सजीव हैं। व्याकरण के उदाहरणों को समाविष्ट करने के कारण कृत्रिमता अवश्य है। पर इस कृत्रिमता ने काव्य के सौन्दर्य को अपकर्षित नहीं किया है। प्राकृतिक दृश्यों के मनोरम चित्रण और प्रौढ़ व्यंञ्जनाओं ने काव्य को प्रौढ़ता प्रदान की है। इसमें सन्देह नहीं कि शास्त्रीय काव्य में व्याकरण के जटिल नियमों के उदारहण उपस्थित करने हेतु कथानक में सर्वाङ्गपूर्णता का सन्निवेश होना कठिन हो गया है। वस्तु-विन्यास में प्रबन्धात्मक प्रौढ़ता आडम्बर युक्त उदाहरणों के कारण नहीं आने पायी है। फिर भी कथानक में चमत्कार-कमनीयता का अभाव नहीं है। यह काव्य कलावादी है। इसमें शाब्दी क्रीड़ा भी वर्तमान है। सुन्दर-सुन्दर वर्णनों की योजना कर कवि ने उक्त कथा-वस्तु में अलङ्कार-वैचित्र्य-और कल्पना-शक्ति के मिश्रण द्वारा चमत्कृत करने की सफल योजना की है। कवि हेमचन्द्र की अनेक उक्तियों में स्वाभाविकता, व्यंग्य तथा पाण्डित्य भरा हुआ है। कुमारपाल की दिनचर्या पाठकों को सुसंस्कृत जीवन बनाने के लिए प्रेरणा देती है। जिनेन्द्र-वन्दन एवम् अन्य धार्मिक कार्यों में राजा का प्रतिदिन भाग लेना वर्णित है। इस काव्य में केवल राजा के विलासी जीवन का ही वर्णन नहीं है, अपितु उसके कर्मठ एवम् नित्य-कार्य करने में अप्रमादी जीवन का चित्रण है। नायक का चरित्र उदात्त और भव्य है। उसके महनीय कार्यो का सटीक वर्णन किया गया है।

त्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरितम्—

जैन-कवि धर्मभावना को काव्य के माध्यम से व्यक्त करना आवश्यक मानते हैं। इसीलिये जैन-संस्कृति के काव्य-ग्रन्थों में भी धार्मिक भावना का विशेष प्रभाव रहता है। जैन धर्म में प्राचीन पौराणिक परम्परा का अभाव-सा था। इसी अभाव की पूर्ति के लिए बारहवीं शताब्दी में हेमचन्द्र द्वारा त्रिषष्ठि-शलाकापुरुषचरित नामक पुराण काव्य की रचना की गयी। यह ग्रन्थ गुजरात नरेश कुमारपाल की प्रार्थना से लिखा गया था, और ई० स० ११६०–७२ के बीच पूर्ण हुआ। इसमें १० पर्व हैं, जिनमें २४ तीर्थङ्करादि ६३ महापुरुषों का चरित वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ का विषय-क्रम निम्नानुसार है—

पर्व १– आदिनाथ चरित्र–भरतचक्रवर्ती–दो महापुरुषों के चरित इसमें हैं।
पर्व २– अजितनाथ चरित्र–सगर चक्रवर्ती–इन दो महापुरुषों के चरित इसमें हैं।

पर्व ३– सम्भवनाथ से लेकर शीतलानाथ तक ८ तीर्थङ्करों के चरित इसमें वर्णित हैं।

पर्व ४– श्रेयांसनाथ जी से धर्मनाथ जी तक ५ तीर्थङ्करों, ५ वासुदेव, ५ बलदेव, ५ प्रतिवासुदेवों, और चक्रवर्ती मघवा व सनत्कुमार कुल २२ महापुरुषों के चरित इसमें वर्णित है।

पर्व ५– शान्तिनाथ जी का चरित १ भव में तीर्थङ्कर और चक्रवर्ती दो पदवी वाला होने से दो चरित गिने गये हैं।

पर्व ६– कुन्थुनाथ जी से मुनि सुव्रतस्वामी तक ४ तीर्थङ्करों का, ४ चक्रवर्तियों का, २ वासुदेव, २ बलदेव, २प्रतिवासुदेव मिलकर १४ महापुरुषों के चरित इसमें वर्णित हैं। इसमें भी ४ चक्रवर्ती में कुन्थुनाथ जी और अरिनाथ जी उसी भव में चक्रवर्ती भी हुए थे, अतः उन्हें भी सम्मिलित किया गया है।

पर्व ७– निमिनाथ चरित तथा १०, ११ वें चक्रवर्ती, ८ वें वासुदेव, बलदेव, प्रतिवासुदेव, अर्थात राम, लक्ष्मण एवं रावण का चरित, कुल ६ महापुरुषों का चरित इसमें वर्णित है। इस पर्व में बड़ा भाग रामचन्द्रादि के चरित का होने से इसे जैन रामायण कहते हैं।

पर्व ८– नेमिनाथ जी तथा ९ वें वासुदेव, बलदेव, प्रतिवासुदेव अर्थात् कृष्ण, बलभद्र तथा जरासन्ध को मिलाकर ४ महापुरुषों के चरित इसमें हैं। पाण्डव नेमिनाथ जी के समकालीन होने थे अतः उनके चरित भी इस पर्व में समाविष्ट हैं।

पर्व ९– पार्श्वनाथ जी तथा ब्रह्मदत्त नाम के १२ वें चक्रवर्ती को मिलाकर दो महापुरुषों के चरितों का वर्णन इसमें है।

पर्व १०– इसमें श्री महावीरस्वामी का चरित है; किन्तु प्रसङ्गोपात्त श्रेणिक (बिम्बसार या भिम्बसार) अभयकुमार, आदि अनेक महापुरुषों के अधिक विस्तार पूर्वक चरित इसमें लिखे गये हैं। यह पर्व सब पर्वों की अपेक्षा बड़ा है और वीर भगवान का चरित इतने विस्तार से दूसरे ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं होता। इस प्रकार १० पर्वों में कुल मिलाकर ६३ शलाका महापुरुषों का चरित इसमें सम्मिलित किये गये हैं।

साधारण जानकारी के लिये ६३ महापुरुषों के नाम दिये जाते हैं–

तीर्थङ्कर २४– १. ऋषभ, २. अजित, ३. शम्भव, ४. अभिनन्दन ५. सुमति, ६ पद्मप्रभ, ७. सुपार्श्व, ८. चन्द्रप्रभ, ९. सुविधि,

१० शीतल, ११ .श्रेयांस, १२. वासुपूज्य, १३ विमल, १४ .अनन्तजित्, १५. धर्म, १६. शान्ति, १७. कुन्थु, १८. अर, १९. मल्लि, २०. मुनिसुव्रत, २१. नमि (निमि), २२. नेमि, २३. पार्श्व (नाथ) और २४. वीर ।

चक्रवर्ती १२– १. भरत, २. सगर, ३. मघवा, ४. सनत्कुमार, ५. शान्ति, ६. कुन्थु, ७. अर, ८. सुभूमः, ९. पद्म, १०. हरिषेण, ११. जय और १२. ब्रह्मदत्त ।

वासुदेव ९– १. त्रिपृष्ट, २. द्विपृष्ट, ३. स्वयम्भू, ४. पुरुषोत्तम, ५. पुरुषसिंह, ६. पुरुषपुण्डरीक, ७. दत्त, ८. नारायण और ९. कृष्ण।

बलदेव ९– १. अचल, २. विजय, ३. भद्र, ४. सुप्रभ, ५. सुदर्शन, ६. आनन्द, ७. नन्दन, ८. पद्म और ९. राम ।

प्रतिवासुदेव ९- १. अश्वग्रीव, २. तारक, ३. मेरक, ४. मधु, ५. निशुम्भ, ६. बलि, ७. प्रह्लाद, ८. लङ्केश (रावण) और ९. मगधेश्वर (जरासन्ध) ।

"त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित" ३२००० श्लोक प्रमाण पुराण है । इसमें त्रैलोक्य का वर्णन पाया जाता है । इसमें परलोक, ईश्वर, आत्मा, कर्म, धर्म, सृष्टि आदि विषयों का विशद विवेचन किया गया है । इसमें दार्शनिक मान्यताओं का भी विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। इतिहास, कथा एवं पौराणिक तथ्यों का यथेष्ट समावेश किया गया है ! सृष्टि, विनाश, पुनर्निर्माण, देवताओं की वंशावली, मनुष्यों के युगों, राजाओं की वंशावलि का वर्णन आदि पुराणों के सभी लक्षण पूर्णरूपेण इस महद् ग्रन्थ में पाये जाते हैं ।

"स्थाविरावलिचरित" अथवा 'परिशिष्टपर्वन्' यह 'त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित' का ही एक परिशिष्ट है। डा० हर्मन जेकोबी ने इसे सम्पादित कर १८८३ ई० में कलकत्ता से प्रकाशित किया । इसमें कुल १३ सर्ग तथा ३४२० श्लोक हैं । विषयानुक्रमणिका निम्न प्रकार है—

सर्ग १ श्लो० सं० ४७४ : जम्बूस्वामी पूर्वभव वर्णन ।

„ २ „ „ ७४५ : जम्बूस्वामी विवाह, कुबेरदत्त कथा, महेश्वर दत्तकथा कर्षक कथा, वानर-वानरी कथा, नूपुर पण्डिता, शृगाल कथा, विद्युन्मालिक कथा, शंखधर्म कथा, शिलाजतु वानर कथा ।

सर्ग ३ श्लो० सं० २९२ : सिद्धिबुद्धि कथा, जात्यश्वकिशोर कथा, ग्राम कूटसुत

कथा, सोल्लक कथा, शकुनि कथा, चित्र सुहृद कथा, विप्र दुहितृ नाग श्री कथा, ललिताङ्ग कथा, सपरिवार जम्बू प्रव्रज्या प्रभव, प्रव्रज्या वर्णन।

सर्ग ४ श्लो० सं० ६१ : जम्बूस्वामी का महानिर्वाण।

" ५ " " १०७ : प्रभवदेवत्वशय्यम्भव चरित वर्णन।

" ६ " " २५२ : यशोभद्र, देवीभाव, भद्रबाहू शिष्य चतुष्टयवृत्तान्त, अन्निका पुत्र कथा, पाटलीपुत्र प्रवेश, उदयितारक कथा, नन्दराज्य लाभ कीर्तन।

सर्ग ७ श्लो० सं० १३८ : काल्पकामात्य संकीर्तन।

" ८ " " ४६९ : शकटारमरण—स्थूलभद्रदीक्षाव्रतचर्या, सम्भूत विजय स्वर्गगमन, चाणक्य-चन्द्रगुप्त कथा, बिन्दुसार-जन्म, राज्य-वर्णन।

सर्ग ९ श्लो० सं० ११३ : बिन्दुसार-अशोक, श्री कुणाल कथा, सम्प्रति-जन्म, राज्य-प्राप्ति स्थूलभद्रपूर्वग्रहण, श्री भद्रबाहू, स्वर्ग-गमन वर्णन।

सर्ग १० श्लो० सं० ४० : आर्य महागिरि, आर्यसुहस्ति, दीक्षा, स्थूलभद्र स्वर्ग-गमन।

सर्ग ११ श्लो० सं० १७८ : सम्प्रतिराज चरित्र, आर्य महागिरि, स्वर्ग गमन, अवन्ति सुकुमार नलिनी गुल्मगमन, आर्य सुहस्ति स्वर्ग-गमन वर्णन।

सर्ग १२ श्लो० सं० ३८८ : वज्रस्वामी जन्मव्रत प्रभाव वर्णन।

सर्ग १३ श्लो० सं० २०३ : आर्यरक्षित व्रत ग्रहण पूर्वार्धागम, वज्रस्वामी स्वर्ग-गमन, तद्वंशविस्तार वर्णन।

भारत के प्राचीन इतिहास की गवेषणा में 'परिशिष्ट पर्व' बहुत उपयोगी है। प्रो० जैकोबी ने 'स्थविरावलि चरित' सहित 'त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित' को रामायण, महाभारत की शैली में रचे गये एक जैन महाकाव्य के रूप में स्वीकार किया है[1]। यह ग्रन्थ पुराण और काव्य-कला दोनों ही दृष्टियों से उत्तम है। इस विशाल ग्रन्थ का कथा-शिल्प महाभारत की तरह है। आचार्य हेमचन्द्र ने अपने इस ग्रन्थ को महाकाव्य कहा है। उसकी संवाद-शैली, उसके लोक तत्वों और उसकी अवान्तर कथाओं का समावेश इस ग्रन्थ को पौराणिक

१ — डॉ. जेकोबी—स्थविरावलिचरित—इन्ट्रोडक्शन पृ. २४; ऐशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता; १८८३।

शैली के महाकाव्यों की कोटि में ले जाता है ।

इस पुराण-काव्य का सप्तम् भाग जैन रामायण कहलाता है ; क्योंकि इसमें राम-कथा वर्णित है जिसमें प्राकृत 'पउमचरियम' तथा संस्कृत 'पद्म पुराण' का अनुसरण किया गया है । हेमचन्द्र केवल किसी एक परम्परा के व्यक्ति नहीं थे बल्कि एक महान् शिल्पी भी थे । उनके इस रूपान्तर में कुछ महत्वपूर्ण संशोधन, विशेषकर चरित्र-चित्रण में, हैं । इसमें राम न तो अवतार स्वरूप माने गये हैं, और न रावण खल-नायक । भरत की माता कैकेयी का शोभनीय वर्णन है । जब भरत राज्यगद्दी छोड़ देते हैं तो वह पश्चाताप् करती है और राम की खोज में भरत का साथ देती है । वह अश्रुमिश्रित चुम्बनों द्वारा राम को अभिभूत कर देती है और उनसे वापिस लौटने का आग्रह करती है । रावण के चरित्र को भी उभार कर प्रस्तुत किया गया है ।

यह महाकाव्य सुदीर्घ होने के कारण आयासकर प्रतीत होता है । किन्तु इसकी भाषा जटिल न होकर, सरल है । १० पर्व में महावीर तीर्थङ्कर का जीवन-चरित्र वर्णित है जो स्वतंत्र प्रतियों के रूप में भी पाया जाता है । इसमें सामान्यतः आचारांग व कल्पसूत्र में वर्णित वृत्तान्त समाविष्ट किया गया है । हाँ, मूल घटनाओं का विस्तार व काव्यत्व हेमचन्द्र का अपना है । यहाँ महावीर के मुख से वीर निर्वाण से १६६९ वर्ष पश्चात् होने वाले आदर्श नरेश कुमारपाल के सम्बन्ध की भविष्यवाणी करायी गयी है । इसमें राजा श्रेणिक, युवराज अभय, एवम् रोहिणेय चोर आदि की अनेक कथाएँ भी आयी हैं । महावीर के जीवन-चरित्र वर्णन में बहुतकुछ संयत ऐतिहासिक दृष्टि पायी जाती है । इससे हमें हेमचन्द्र के सम्बन्ध में भी कुछ निश्चित् जानकारी प्राप्त होती है । इसी पर्व में अनेक रचनाओं की कथानक सम्बन्धी पुराकथाएँ तीर्थ-स्थानों के विषय में हैं । जैन धर्म के विभिन्न धर्माचार्यों के विगत अवतारों के समावेश से कथानक और भी वृहत् हो गया है । सामान्य कथानकों को बहुधा आलङ्कारिक तथा विस्तृत रूप प्रदान किया जाता है । इसमें अनेक धर्म निरपेक्ष निदर्शन भी प्रस्तुत किये गये हैं । समय-समय पर हम नाटकीय सम्भावनाओं से परिपूर्ण मर्मस्पर्शी कथाओं का विवरण पाते हैं । दीक्षा लेने के बाद भगवान् महावीर के पास एक ही वस्त्र था । राजकुमार होने के कारण वह वस्त्र अत्यन्त मूल्यवान था । एक गरीब ब्राह्मण ने उन्हें राजपुत्र समझकर याचना की । महावीर ने कहा "मैंने अब सब कुछ छोड़ दिया है । देने के लिये मेरे पास कुछ भी नहीं है । वस्त्र का आधा भाग मैं तुम्हें देता हूँ ।" ब्राह्मण ने

वह आधा वस्त्र लेकर उसे सुधारने के लिए कारीगर के पास दिया। कारीगर ने कहा इसका दूसरा टुकड़ा यदि लाओगे तो इसकी कीमत बढ़ेगी। वह ब्राह्मण महावीर के पीछे-पीछे घूमने लगा। महावीर का आधा वस्त्र किसी पेड़ में उलझ गया, ब्राह्मण ने उसे निकालकर ले लिया। महावीर ने उस दिन से फिर कभी भी वस्त्र ही धारण नहीं किया।

इसी प्रकार एक दूसरी कथा है। वर्षाऋतु में भगवान महावीर एक कुलपति के आश्रम में रहे। कुलपति ने उनके लिए एक घास की झोंपड़ी बना दी। समीप के गाँव से गायें आयीं। उन्होंने उस कुटी का तृण भक्षण किया। महावीर ने कुटिया की रक्षा न करते हुए गायों को उसी प्रकार खाने दिया। आश्रम-वासियों ने इसके लिए महावीर को ही दोष दिया। महावीर ने आश्रम छोड़ दिया। इस प्रकार वैराग्य, धैर्य, दीर्घदर्शिता, क्षमा इत्यादि गुणों का आदर्श बतलाने वाली अनेक कथाएँ महावीर-चरित में हैं।

इस ग्रन्थ का अन्तिम भाग परिशिष्टपर्व यथार्थतः एक स्वतन्त्र ही रचना है और वह ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण है। इसमें महावीर के पश्चात् उनके केवली शिष्यों तथा दशपूर्वी आचार्यों की परम्परा पायी जाती है। इस भाग को स्थविरावलि चरित भी कहते हैं। यह केवल आचार्यों की नामावली मात्र नहीं है, किन्तु यहाँ उनसे सम्बद्ध नाना लम्बी-लम्बी कथाएँ भी कही गयी हैं, जो उनसे पूर्व आगमों की नियुक्ति, भाष्य, चूर्णि आदि टीकाओं से और कुछ सम्भवतः मौखिक परम्परा से संकलित की गयी हैं। इनमें स्थूलभद्र और कोशा वेश्या का उपाख्यान, कुवेरसेना नामक गणिका के कुवेरदत्त और कुवेरदत्ता नामक पुत्र-पुत्रियों में परस्पर प्रेम की कथा, आर्य स्वयम्भव द्वारा अपने पुत्र मनक के लिए दशवैकालिक सूत्र की रचना का वृत्तान्त तथा आगम के संकलन से सम्बन्ध रखने वाले उपाख्यान, नन्द राजवंश सम्बन्धी कथानक, एवम् चाणक्य और चन्द्रगुप्त द्वारा उस राजवंश के मूलोच्छेद का वृत्तान्त आदि अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। ग्रन्थ-कर्ता ने अपने इस पुराण को महाकाव्य कहा है। यद्यपि रचना का बहुभाग कथात्मक है और पुराणों की स्वाभाविक सरल शैली का अनुसरण करता है, तथापि उसमें अनेक स्थलों पर रस-भाव व अलङ्कारों का ऐसा समावेश है, जिससे इसका महाकाव्य-पद भी प्रमाणित होता है। डा० ए० वी० कीथ के अनुसार इसमें वर्णित कथाएँ पौराणिक उपाख्यानों के ढंग की न होकर विशेष रूप से साधारण लोक-कथा के प्रकार की हैं। ये पुराकथाएँ शैली और कहावतों में धार्मिक साहित्य की कृति के निकट पहुँचने की प्रवृत्ति

प्रदर्शित करती है। स्थूलभद्र की कथा इस प्रकार का एक दृष्टान्त है। तीन भिक्षुओं ने अपने आचार्य के सम्मुख व्रत धारण किया। प्रथम ने कहा कि वह सम्पूर्ण वर्षाकाल में एक सिंह की गुहा के सम्मुख बैठेंगे। दूसरे ने कहा कि इस अवधि में एक ऐसे सर्प की बाँबी के सम्मुख आवास ग्रहण करेंगे जिसका दर्शन मात्र ही प्राणघातक होता है। तृतीय ने कहा कि सम्पूर्ण वर्षाऋतु में वह एक जल-चक्र पर बैठेंगे। तब भिक्षु स्थूलभद्र आये; उन्होंने यह जान लिया कि मन का नियंत्रण शरीर के संयम की अपेक्षा कहीं दुष्कर है। भिक्षु होने के पूर्व वह एक वेश्या कोशा के प्रेमी रह चुके थे। अब वह यह घोषित करते हैं कि चार मास तक वह उसके घर में ब्रह्मचर्य की अपनी प्रतिज्ञा खण्डित किये बिना ही निवास करेंगे। वह इस कार्य में केवल सफल ही नहीं होते, बल्कि कोशा के हृदय में भी परिवर्तन ले आते हैं। आचार्य उनका जयघोष करते हैं। इसके अतिरिक्त जैन-लोकाचार जानने के लिए यह उपयुक्त ग्रन्थ है। बहुत-सी जैन-प्रथाओं का उद्‌गम इसमें देखने को मिलता है[1]।

वीतरागस्तोत्रम्— यह एक भक्तिस्तोत्र है। आचार्य हेमचन्द्र को भक्त का हृदय मिला था, अर्हन्तस्तोत्र, महावीर स्तोत्र एवम् महादेव स्तोत्र इसके प्रमाण हैं। वीतरागस्तोत्र में १८६ पद्य हैं। कुल २० स्तवों में इनका विभाजन किया गया है। अधिकांश स्तवों में ८-८ श्लोक हैं। विषय-विवरण इस प्रकार है—

(१) प्रस्तावना स्तव (२) सहजातिशय वर्णन स्तव (३) कर्मक्षय जातिशय वर्णन स्तव (४) सुकृतातिशय वर्णन स्तव (५) प्रतिहार्यस्तव (६) विपक्ष-निरास स्तव (७) जगत कर्तृत्वनिरास स्तव (८) एकान्त निरास स्तव (९) कलि-प्रशम स्तव (१०) अद्‌भुत स्तव (११) अचिन्त्य महिमा स्तव (१२) वैराग्य स्तव (१३) विरोध स्तव (१४) योगसिद्ध स्तव (१५) भक्ति स्तव (१६) आत्म-गर्हा स्तव (१७) शरणगमन स्तव (१८) कठोरोक्ति स्तव (१९) अज्ञास्तव और (२०) आशीस्तव।

वीतराग स्तोत्र के अन्त में आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है कि इन स्तवों को

१– Helen–M. Johnson त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरितम्
Book II vol II & III Preface 20-40 G. O. S. 1931
"It is in itself almost a hand book of Jainism for Lexi cographer. It has a largea-mount of new materi al and for the student of folkloreans and the origin of customs, it gives the Jain tradition which is very different from Hindu."

पढ़कर कुमारपाल चालुक्य नरेश अपने मनोरथ पूर्ण करें। अतः अपने आश्रय-दाता एवम् शिष्यस्वरूप कुमारपाल के लिए वीतराग स्तोत्रों की उन्होंने रचना की, यह बात सिद्ध है। वीतराग स्तोत्र का उल्लेख 'मोहराज-पराजय' नामक नाटक में 'वीस दिव्य गुलिका' के नाम से आया है।

संस्कृत स्तोत्र काव्यों में 'वीतराग स्तोत्र' का विशिष्ट स्थान है। भक्ति के कारण यह बड़ा ही मधुर काव्य बन पड़ा है। काव्यकला की दृष्टि से भी यह काव्य श्रेष्ठ है। इसमें भक्ति के साथ जैन-दर्शन सर्वत्र व्याप्त है। काम-राग और स्नेह-राग का निवारण सुकर है; किन्तु अति पापी दृष्टिराग का उच्छेदन तो पण्डित और साधुसन्तों के लिए भी दुष्कर है[1]। संकुचित साम्प्रदायिक राग दुष्कर है यह कहकर आचार्य हेमचन्द्र ने व्यापक दृष्टि-कोण अपनाने के लिए प्रेरणा दी है। दृष्टिदोष के कारण ही मत-मतान्तरों में संकीर्णता आ जाती है। 'वीतराग स्तोत्र' में सर्वत्र भक्ति के साथ समन्वयात्मकता एवं व्यापक दृष्टिकोण दिखाई देता है। इसी से वे जितनी श्रद्धा से महावीर को नमन करते हैं उतनी ही श्रद्धा से अन्य देवताओं को भी[2]। संक्षेप में आचार्य हेमचन्द्र के भक्ति स्तोत्रों में रस हैं, आनन्द है और हृदय को आराध्य में तल्लीन करने की सहज प्रवृत्ति हैं। अतः उनका स्थान स्तोत्र साहित्य में विशिष्ट है। 'वीतराग स्तोत्र' में जैन दर्शन का काव्यमय वर्णन भी है।

द्वात्रिंशिका— 'द्वात्रिंशिकाओं' के रचयिता के रूप में आचार्य हेमचन्द्र बहुत प्रसिद्ध हैं। भक्ति की दृष्टि से इन स्तोत्रोंका जितना महत्व है, उससे कहीं अधिक काव्य की दृष्टि से उनका महत्व है। ये दो लघुकाय ग्रन्थ काव्य की दृष्टि से बहुत सुन्दर हैं। एक का नाम हैं, 'अन्ययोगव्यवछेद' तथा दूसरे का नाम 'अयोगव्यवछेद द्वात्रिंशिका' है। दोनों में यथानाम ३२-३२ श्लोक है। उन्होंने 'अन्ययोगव्यवच्छेद' में अन्य दर्शनों का खण्डन किया है। तथा 'अयोग-व्यवच्छेद' में केवल स्वपक्षसिद्धि अर्थात् जैन मत की पुष्टि की है। डा० आनन्द शंकर ध्रुव ने उनके अन्ययोगव्यवच्छेद पर जो अभिमत प्रकट किया है वह आचार्य के सभी स्तोत्रों पर पूर्ण रूप से लागू होता है। उनके मत से चिन्तन

१— कामराग स्नेहराग वीषत्करः निवारणौ।
दृष्टिरागस्तु पापीयान् दुरुछेदः सतामपि ॥१॥

२— यो विश्वं वेद विद्यं..............बुद्धं वा वर्धमानं शतदलनिलयं केशवं वाशिवं वा,
त्रैलोकर्य सकलं..................स महादेवो मया वन्द्यते ॥

और भक्ति का इतना सुन्दर समन्वय इस काव्य में हुआ है कि यह दर्शन तथा काव्य कला दोनों ही दृष्टि से उत्कृष्ट कहा जा सकता है[1]।

अन्ययोगव्यवच्छेद द्वात्रिंशिका— इसमें मुख्यतः परपक्षदूषण ही बतलाये गये हैं। प्रथम तीन श्लोकों में केवल ज्ञानी भगवान् की स्तुति करके उनके ४ अतिशय बतलाये हैं– (१) ज्ञानातिशय (२) अपायागमातिशय (३) वचनातिशय और (४) पूजातिशय। इसमें ज्ञान के साथ चरित्र का भी महत्व बतलाया गया है। "सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः" बतलाकर आचार्य ने यथार्थवाद को प्रतिष्ठित किया है। जैन दर्शन अनन्त रूपों से सत्य का दर्शन कराता हुआ यथार्थवाद पर प्रतिष्ठित है। इसके श्लोक ४ से ६ तक वैशेषिक दर्शन की आलोचना की गई है। सामान्य विशेष का सिद्धान्त प्रतिपादित कर एक ही सत्य के भिन्न-भिन्न अस्वथा स्वरूप बताये हैं। इस जगत का कोई कर्ता है, वह एक है, सर्वव्यापी है, स्वतन्त्र है, नित्य है-जिन नैयायिको की इस प्रकार की दुराग्रह-रूपी विडम्बनाएँ हैं, हे जिनेन्द्र! तुम उनके उपदेशक नहीं हो। नित्य-अनित्य स्याद्वाद के ही रूप हैं। इस प्रकार हेमचन्द्र के मत से वैशेषिक दर्शन में भी अनेकान्तवाद स्थित है। चित्ररूप भी एक रूप का ही प्रकार है। ईश्वर शासक भले ही हो सकता है, किन्तु निर्माता नहीं। हेमचन्द्र ने समवायवृत्ति की आलोचना की और सत्ता, चैतन्य एवं आत्मन् का भी खण्डन किया है। उन्होंने विभुत्व की भी आलोचना की है। उनके अनुसार आत्मा सावयव और परिणामी है, वह समय पर बदलती रहती है। १० वें श्लोक में न्याय दर्शन की आलोचना है, श्लोक ११ तथा १२ में पूर्व मीमांसा की कड़ी आलोचना है। कर्मकाण्ड के

---

1 "The former (अन्ययोगव्यवच्छेद) is a genuine devotional lyric, pulsating with reverence for the Master and is at the same time a revient of some of the tenets of the rival schools on which the Jaina sees reason to differ. Devotion and thought are happiy blended together in one whole and are expressed in such noble and dignified language that it deserves to rank as a piece of Literature no less than that of philosophy." P. C. XX IV स्याद्वाद-मञ्जरी टीका of अन्ययागव्यवच्छेद Published by Bombay Sanskrit and Prakrit Series No XXXIII in 1933 edited by आनन्द शंकर ध्रुव।

अन्तर्गत हिंसा का जो विधान किया गया है, उसकी तीव्र आलोचना है। 'हिंसा-चेत् धर्म हेतु कथम् ? धर्महेतुश्चेद, हिंसाकथम् ? स्वपुत्रघातात् नृपतित्वलिप्सा !" टीकाकार मल्लिसेन व्यंग्य से कहते हैं 'यदि हिंसा है, तो धर्म हेतु कैसा; तथा धर्म हेतु है, तो हिंसा कैसी ? क्या अपने पुत्र की हत्या करके कोई नृपत्व चाहेगा ? उसी प्रकार अ पौरुषेयवाद का भी उन्होंने खण्डन किया है। श्लोक १३-१४ में वेदान्त की आलोचना की गयी है। यदि माया है, तो द्वैतसिद्धि अर्थात् माया और ब्रह्म दोनों की सत्ता सिद्ध है। यदि माया का अस्तित्व ही नहीं है, तो प्रपञ्च कैसा ? माता भी है और वन्ध्या भी है, यह असम्भव है। श्लोक १५ में सांख्यदर्शन का खण्डन है। चेतन-तत्व और जड़-प्रकृति का संयोग यदृच्छा से कैसे सम्भव है ? श्लोक १६, १७ १८ और १९ में हेमचन्द्र ने बौद्ध-दर्शन की आलोचना की है। बौद्धों के क्षणिकवाद् की आलोचना करते हुए आचार्य जी कहते हैं कि (१) किये गये कर्म का नाश, (२) नहीं किये हुए कर्म का फल, (३) संसार का विनाश, (४) मोक्ष का विनाश, (५) स्मरण-शक्ति का भंग हो जाना इत्यादि दोषों की उपेक्षा करके जो क्षणिकवाद मानने की इच्छा करता है वह विपक्षी बड़ा साहसी होना चाहिए। श्लोक २० में प्रत्यक्ष प्रमाण-वादी चार्वाक की आलोचना की गयी है। 'बिना अनुमान के हम सांप्रत-काल में भी बोल नहीं सकते'। श्लोक २१ से ३० तक में हेमचन्द्र जी ने जैन दर्शन को प्रतिष्ठित किया है। उसमें विशेषतः सत्य का अनेक विधस्वरूप, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, सप्तभंगी, स्याद्वाद, नयवाद, आत्माओं की अनेकता का प्रतिपादन किया है। अन्त में जैन दर्शन के व्यापकत्व के विषय में बतलाते हुए हेमचन्द्र कहते हैं कि जिस प्रकार दूसरे दर्शनों के सिद्धान्त एक दूसरे को पक्ष व प्रति-पक्ष बनाने के कारण मत्सर से भरे हुए हैं, उस प्रकार अर्हन मुनि का सिद्धान्त नहीं है; क्योंकि यह सारे नयों को बिना भेद-भाव के ग्रहण कर लेता है। श्लोक ३१ तथा ३२ में भगवान महावीर की स्तुति कर उपसंहार किया गया है।

अयोगव्यवच्छेद द्वात्रिंशिका — इसमें प्रामुख्य से स्वमतमण्डन अर्थात् जैन मत प्रतिष्ठापन किया गया है। प्रारम्भ में वे भगवान महावीर की स्तुति प्रस्तुत करते हैं। तत्पश्चात् अत्यन्त सरल एवम् सरस शब्दों में जैन धर्म के गुण गाये हैं। भगवान महावीर के प्रति भक्ति प्रकट करते हुए भी जैन धर्म का स्वरूप संक्षेप तथा प्रासादिक भाषा में वर्णित किया गया है। इसमें विवेचना का स्वरूप नितान्त विधायक है। संसार में आने का कारण आस्त्रव है और मोक्ष का कारण

है-संवर। जैनों के सिद्धान्त का यही सार है। शेष सब बातें इसी का विस्तार मात्र हैं। अनेकान्त मानने के कारण कोई भी विरोध उनके लिए असिद्ध है।

हेमचन्द्र की काव्य प्रवृत्तियाँ-हेमचन्द्र के काव्य का अन्तरंग-पक्ष-रस-भावादिभावपक्ष-

महाकवि का समय एक ओर तो युद्ध का था, जब सेना के बल राजपूत नवीन राज्यों की स्थापना करते थे; दूसरी ओर वह काल विलासिता का एवम् धर्म-प्रचार का भी था। इसलिये द्वयाश्रय काव्य में एक ओर वीरता की भावना व्याप्त है तो दूसरी ओर धर्म-प्रचार की भावना; तथा तीसरी ओर उनकी कविता श्रृङ्गार के अपूर्व आनन्द की उपलब्धि कराती है। पाठक भाव-विभोर हो जाते हैं। कवि के कहने में रस है, अत: वह पाठक के हृदय के भाव को उद्बुद्ध करके साधारणीकरण द्वारा रस का आस्वादन करा रहा है। द्वयाश्रय काव्य का मुख्य रस वीर है, शृंगार नहीं। इसमें नायक सिद्धराज की युद्ध-वीरता का बहुत ही विशुद्ध वर्णन किया है। उनके वर्णन व्यक्तियों में नव-जीवन का सञ्चार कराते हैं। कवि के चरितनायक हिन्दू-संस्कृति के रक्षक एवम् दुष्टों के संहारक हैं। वीर रस के सहयोगी रौद्र रस और भयानक रस का भी यथा स्थान समावेश हो गया है[1]।

श्रृङ्गार का होना युग का प्रभाव है ऐसा कहना चाहिए। महाकाव्य में युद्ध और यात्रा वर्णनों के साथ-साथ ऋतु-वर्णन, वन-विहार, जल-विहार, आदि की भी परिगणना कर दी गयी है। वीर और श्रृङ्गार का अपूर्व मिश्रण द्वयाश्रय काव्य में है। भक्ति का भी योग है। श्रृङ्गार के वर्णन में हेमचन्द्र जैसे पहुँचे हुए श्रृङ्गारी भी दिखायी देते हैं। भक्ति-प्रधानता कवि की अपनी चीज है। रचना में अलङ्कारमयता के होते हुए भी भाव की प्रधानता है। सभी वर्णनों में कवि की अपनी अनुभूतियाँ बोल रही हैं। कल्पना की उड़ान और अनुभूति की गहनता कवि की अपनी है। भाषा भी कवि की अपनी है-उनका उस पर अधिकार है। नवीन शब्दों की प्रसङ्गानुसार रचना का उसमें बाहुल्य है, फिर पद-योजना का सौष्ठव भी उनका अपना है[2]।

महाकवि जिस शैली के प्रवर्तक थे उसमें प्राय: रस, भाव, अलङ्कार बहुज्ञता आदि सभी बातें विद्यमान थीं। अश्वघोष और कालिदास की सहज एवम् सरल शैली जैसी शैली उनकी नहीं थी; किन्तु उनकी कविताओं में हृदय और मस्तिष्क का अपूर्व मिश्रण था। हेमचन्द्र का कथानक शिशुपाल-वध जैसा

---

१ —द्वयाश्रय-सर्ग ८; श्लोक ६१

२ —द्वयाश्रय-सर्ग ११; श्लोक ४७

कथानक नहीं, कालिदास के कथानक के समान विशाल कथानक का उनके काव्य में समावेश है। कई जगह प्रसङ्गों की उद्‌भावना बड़ी सुन्दर हुयी है। अनूठे दृष्यों की संरचना की गयी है। पाठक इन दृष्यों, प्रसङ्गों अथवा भावों में अपने आपको भूल जाता है। मध्ययुग के काव्य की समस्त विशेषताएँ इनके महाकाव्य में विद्यमान हैं। वर्णन-चातुर्य, भाव-गाम्भीर्य कोमलपदन्यास, क्लिष्ट पदोपन्यास, अद्वितीय शब्द-बन्ध आदि इस महाकाव्य में विद्यमान हैं। इनके काव्यों में प्रकृति-वर्णन प्रचुरमात्रा में हुआ है। प्रकृति के एक से एक सुन्दर चित्र वहां है। हृदय के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अन्तरङ्ग भावों को उनके सच्चे रङ्गरूप में दिखाना प्रत्येक कवि के लिए सम्भव नहीं है।

"नारिकेलफलसन्निमं वचो भारवेः" इस प्रकार की उक्ति पण्डितों ने महाकवि भारवि के सम्बन्ध में कही है। वह हेमचन्द्र के काव्य पर शत-प्रतिशत लागू होती है। पण्डित-शैली को अपनाने के कारण तथा शास्त्र-काव्य के रचयिता होने के कारण बाह्यतः उनका काव्य क्लिष्ट प्रतीत होता है, किन्तु जिस प्रकार नारियल के ऊपर का कठोर छिलका निकालने के बाद मधुर रस का आस्वादन होता है, ठीक उसी प्रकार हेमचन्द्र के काव्य के अन्तर भाग में-भावप्रान्त में प्रवेश करते ही - "नानाविधानि दिव्यानि, नानावर्णाकृतीनिच" इस गीतोक्ति के अनुसार त्रिविध सृष्टि का दर्शन होता है एवम् विविध रसों का आस्वादन होता है। रस-पक्ष में हेमचन्द्र भरत के रस-सम्प्रदाय के ही अनुयायी एवम् अभिनवगुप्तपादाचार्य के पद चिन्हों पर ही चलते प्रतीत होते हैं। अतः उनके काव्य में शास्त्र-पक्ष तथा सम्प्रदाय-पक्ष प्रबल होने पर भी भाव-पक्ष बिलकुल ही अशक्त नहीं हैं। काव्य-कला का सुन्दर दर्शन हेमचन्द्र के काव्य में होता है। अतः विद्वत् शिरोमणि आचार्य हेमचन्द्र संस्कृत साहित्य के एक सुप्रसिद्ध महाकवि हैं। इनकी रचना-शैली अत्यन्त मनोहर और अर्थ-गौरव से पूर्ण है इससे श्रेष्ठ कवियों की गणना में इनका प्रमुख स्थान है। इनका काव्य 'ओज, प्रसाद, माधुर्य, आदि काव्यगुणों से मण्डित है। उदाहरणार्थ–१२ वें सर्ग में बर्बर राक्षसों के साथ जयसिंह ने युद्ध किया, उस समय इनकी कविता ओजोगुण-मण्डिता हो जाती है[1]। प्रसाद गुण तो यत्र-तत्र-सर्वत्र बिखरा मिलता है। साधारण संस्कृत जानने वाला भी इस प्रसाद गुण के कारण रसास्वादन कर

1 —द्वयाश्रय–सर्ग १२; श्लोक ४७

सकता है। यह प्रसाद गुण उनके भक्ति काव्य में सर्वत्र व्याप्त है[1]। जो मनुष्य महावीर के पवित्र शासन में अविश्वास रखता है वह मानो पथ्य, कल्याण-कारी भोजन में ही शंका करता है। "संशयात्मा विनश्यति" गीतोक्ति की ध्वनि यहाँ मिलती है। उनके स्तोत्र काव्यों में जहाँ भक्ति है, वहाँ माधुर्य भी है[2]। संसार में विनाश एवम् निर्माण चल ही रहा है। किन्तु भगवन् जिनेन्द्र में विश्वास रखने से ही भवक्षय हो सकता है। द्वयाश्रय के १३ वें सर्ग में भी माधुर्य की कमी नहीं है[3]।

जिस प्रकार महाकवि कालिदास के रघुवंश में एक ही राजा का वर्णन न होते हुए पूरे रघुवंश का विस्तृत वर्णन है उसी प्रकार द्वयाश्रय काव्य में मूलराज चालुक्य नरेश से आरम्भ कर कुमारपाल के वंश तक अनेक राजाओं का वर्णन किया गया है। सम्भव है कि 'द्वयाश्रय' लिखने के समय कालिदास के रघुवंश का आदर्श उनके सामने रहा हो। जिस प्रकार रघुवंश में दिलीप, रघु, अज, दशरथ, राम इत्यादि पात्रों में चरित्र का उत्तरोत्तर विकास बतलाया है, उसी प्रकार यहाँ भी मूलराज, चामुण्डराज, दुर्लभराज, भीम, कर्ण जयसिंह, कुमार-पाल आदि पात्रों में चरित्र का उत्तरोत्तर उदात्त विकास बतलाया गया है। इस काव्य में सूर्यचन्द्र वंश का गौरव चालुक्य वंशियों को मिला। गुर्जर-भूमि हेमचन्द्र के लेखन में एक बड़ा राष्ट्र बन गयी। पाटन अयोध्या की शोभा को पार कर गया। मयणल्ला देवी के रूप में भारतीय पतिव्रता नारी का दर्शन होता है। सप्तम सर्ग में ही राज-वैभव का वर्णन करते हुए व्याकरण के दृश् (पश्य) धातु के वर्तमान काल के भिन्न-भिन्न रूप बतलाये हैं। इस राजा के द्वार में मांडलिक राजाओं के समूह सेवा के लिए अहमहमिका से स्पर्धा करने लगे।" यह राजा सदैव परोपकार के कार्यों में ही लगा रहता था[4]।

आचार्य हेमचन्द्र के प्राकृतिक वर्णन बहुत चमत्कार जनक हैं। आपने प्रकृति की पूरी नैसर्गिकता का प्रदर्शन करने के लिए अपने वर्णनों में प्राकृतिक वस्तुओं का सुन्दर चित्रण किया है। उदाहरणार्थ–संस्कृत द्वयाश्रय काव्य में ही

१— द्वयाश्रय–सर्ग १२; श्लोक ५४ तथा महावीर स्तोत्र–अयोगव्यवच्छेद, काव्यमाला;

२— द्वयाश्रय–सर्ग १२; श्लोक १६।

३— द्वयाश्रय–सर्ग १३; श्लोक १०२ तथा सर्ग ७; श्लोक १०६ और ६ तथा ७

४— द्वयाश्रय–सर्ग ३; श्लोक ५

तीसरे सर्ग में शरद्काल का वर्णन पढ़ते हुए 'भारवि' के किरातार्जुनीयम् की याद आये बिना नहीं रहती[1] । दूसरे सर्ग में प्रभात काल का सुन्दर वर्णन है । सुपक्वधान को देखकर रक्षा करने वाली गोपिकाएँ इतनी प्रमुदित हो जाती हैं कि वे दिनभर गाना गाकर व्यतीत करती हैं । उन्हें खेद क्षणभर भी नहीं होता[2] । प्रातःकाल में राजा ने सूर्य का अनुकरण किया है अथवा सूर्य ने राजा के प्रताप का अनुकरण किया है, इस सन्देह से सूर्य का प्रकाश मन्द हो गया है[3] । इसी प्रकार दशम् सर्ग में भी वर्षा-ऋतु का सुन्दर वर्णन है। पन्द्रह् तथा १६ वें सर्ग में सभी ऋतुओं का सुन्दर वर्णन मिलता है । १७ वें सर्ग में स्त्रियों का पुष्पोच्चय, वल्लभों के साथ गमन, जल-क्रीड़ा आदि का वर्णन पढ़ते समय माघ के 'शिशुपाल-वध' की बलात् याद आ जाती है । वैसे ही सर्ग १५ तथा ७ का यात्रा-वर्णन तथा प्रथम सर्ग का नगर-वर्णन, १६ वें का पर्वत-वर्णन भी माघ के 'शिशुपाल वध' के साथ साम्य रखता है[4] । प्रारम्भ में ही हेमचन्द्र ने अणहिलपुर का सुन्दर वर्णन किया है । उस समय स्वस्तिक के समान सुन्दर मकान बनते थे । प्राकृत द्वयाश्रय में नगर के बाहर प्राकारों का दर्पण के साथ सादृश्य दिखाकर वर्णन किया है। प्राकारों का ऊँचा भाग स्फटिक शिला का बना था, मानो स्वर्गाङ्गनाओं का वह दर्पण था । त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित के १० वें पर्व के १२ वें सर्ग में ३९ वें श्लोक में ऐसा ही वर्णन है । अणहिलपुर पट्टन का वर्णन करते हुए कवि वहाँ के लोगों का– उनकी मनोदशा का, चरित्र का भी वर्णन करते हैं। वहाँ के पण्डित लोग वाणी में संयम करके निरर्थक एक शब्द भी नहीं बोलते हैं[5] । यहाँ के विद्वानों की विद्वता को देखकर सप्त-ऋषि भी भूलोक छोड़कर चले गये[6] । साथ में व्याकरण के पारिभाषिक शब्दों का भी प्रयोग होने से कुछ क्लिष्टता अवश्य आ जाती है। १७ वें सर्ग का शृंगार दर्शनीय है। १९ वें सर्ग का विवाह-वर्णन नल-दमयन्ति के विवाह का नैषध की याद दिलाता है[7] ।

१— द्वयाश्रय सर्ग ४, श्लोक १७
२— द्वयाश्रय सर्ग १६, श्लोक ८२
३— द्वयाश्रय नर्ग २, श्लोक १७
४— द्वयाश्रय सर्ग १६, श्लोक १२, तथा सर्ग १५,श्लोक४१, और सर्ग१श्लोक,४
५— द्वयाश्रय सर्ग १, श्लोक ९ तथा १०
६— द्वयाश्रय सर्ग १, श्लोक १०
७— द्वयाश्रय सर्ग १७, श्लोक ६९

संक्षेप में, भारवि, माघ और श्री हर्ष इस बृहत्त्रयी ने जो कार्य संयुक्त रूप ले कर दिखाया वह अकेले आचार्य हेमचन्द्र ने किया है। कालिदास की उपमा, भारवि का अर्थ-गौरव, दण्डिन् का पद-लालित्य, माघ की वर्णन निपुणता तथा नैषध की विस्तृत अलङ्कृत चमत्कृत शैली; ये सभी गुण हेमचन्द्र के काव्य में पाये जाते हैं। इतना ही नहीं उपर्युक्त सभी काव्यों से इनके काव्य में अधिक गुण हैं क्योंकि उपर्युक्त काव्य न तो शास्त्रीय काव्य हैं और न पुराण। हेमचन्द्र ने 'द्वयाश्रय' में शास्त्रकाव्य तथा त्रिषष्ठिशलाकापुरुष चरित' पुराण लिखकर अपने साहित्य कर्तृत्व की परमावधि दिखायी है। इसके साथ धर्म-प्रचार का उद्देश्य भी सफल हुआ है! इस धर्माचार्य को साहित्य-सम्राट कहने में अत्युक्ति नही है।

युद्ध का वर्णन करते समय हेमचन्द्र ऐसी शब्दावली का प्रयोग करते हैं कि प्रत्यक्ष आँखों के सामने युद्ध होता-सा प्रतीत होता है, एवं वीर रस का स्फुरण हो जाता है[1]। मूलराज का गृहरिपु पर आक्रमण 'रघुदिग्विजय' की बराबरी करता है। जहाँ वीर रस का उत्कृष्ट आविर्भाव होता है, वहीं साथ में ९ वें सर्ग में क्षेमराज द्वारा सरस्वती नदी के पास मण्डूकेश्वर पुण्य क्षेत्र में तप करने के वर्णन में शान्त रस का राज्य है[2]। १०वें सर्ग में संतानरहित कर्ण-राज की संतान के लिए लक्ष्मीदेवी की उपासना होती है। तपस्या-भंग के लिए प्रलोभनार्थ अप्सराओं का आगमन होता है; किन्तु कर्ण तपस्या में स्थिर रहता है। पश्चात् एक अत्यन्त भयानक उग्र पुरुष कर्ण को खाने दौड़ता है। फिर भी कर्ण अविचलित रहता है। अन्त में लक्ष्मी प्रसन्न होती है तथा पुत्र होने का वरदान देती है। इस वर्णन में भयानक तथा अद्भुत रस का मिश्रण हुआ है[3]। पहले तो भयानक रस का आस्वादन होता है तथा बाद में अद्भुत रस अनुभव में आता है। ११ वें सर्ग में जयसिंह के बाल्य वर्णन के समय वात्सल्य रस का प्रादुर्भाव हो जाता है। १७ वें सर्ग में शृंगार का साम्राज्य फेल जाता है तथा बाल-ब्रह्मचारी, कट्टर धर्म-प्रचारक एवं साधनारत योगनिष्ठ मुनि इस प्रकार का उत्तान शृंगार का वर्णन करते है कि देखकर आश्चर्य होता है। पाँचवे सर्ग में ग्रहारि के साथ युद्ध करने के पश्चात् ग्रहारि के प्राण रक्षा के लिए उसकी पत्नी जब आँचल पसार कर भीख माँगती है तब करूणरस प्रदर्शित होता है।

१-- द्वयाश्रय सर्ग ११, श्लोक ७६

२-- द्वयाश्रय सर्ग ९, श्लोक ७९ से ८३

३-- संस्कृत द्वयाक्षय सर्ग १०, श्लोक ९०

कुमारपाल चरित में रस-भाव योजना – रस और भावाभिव्यञ्जन की दृष्टि से यह प्राकृत काव्य उच्च कोटि का है। शृंगार, शान्त, और वीर इन रसों से सम्बन्धित अनेक श्रेष्ठ पद्य आये हैं। एक विटपुरुष आसन पर बैठी हुई अपनी प्रिया की आँखे बन्द कर प्रेमिका का चुम्बन कर लेता है। कवि हेम ने इस सन्दर्भ का सरस वर्णन किया है[१]। जब उस प्रियतमा को उसकी धूर्तता का आभास मिला तो वह उससे रुष्ट हो गयी। अतः वह उसको प्रसन्न करता हुआ चाटुकारिता पूर्वक कहने लगा,'प्रिये, झूठी बात सुनकर क्रोध मत कर, मैं तुम्हारा हूँ और तुम मेरी हो। भला तुम्हारे अतिरिक्त मैं अन्य किसी से प्रेम कर सकता हूँ। तुम्हें भ्रम हो गया है'। इस प्रकार चाटुकारी की बातें कर उस विचक्षण गायिका को वह प्रसन्न करता है।

दशार्णपति को जीतकर कुमारपाल की सेना ने उसकी नगरी को लूटकर उसका सारा धन ले लिया। कवि ने इस युद्ध के इस प्रसङ्ग का सुन्दर वर्णन किया है[२]। अमथित दुग्ध के समान श्वेत कीर्तिधारी आपके तेज और प्रताप की उष्णता ने दशार्ण नृपति के कीर्तिरूपी पुरुष को म्लान कर दिया है। आपकी सेना ने समुद्र मन्थन के समान नगर का मन्थन कर सुवर्णरत्नादि को लूट लिया है। दशार्णपति का नगर समुद्र के समान विशाल था, इसी कारण कवि ने रूपक द्वारा जलधि कहा है। इन पद्यों में कवि ने रूपक अलङ्कार की योजना कर वीरता का वर्णन किया है। सेना द्वारा दशार्णपति के नगर को लूटे जाने का सुन्दर और सजीव चित्रण किया है।

भावों की शुद्धि पर बल देता हुआ कवि कहता है कि गंगा-जमुना आदि नदियों में स्नान करने से शुद्धि नहीं हो सकती। शुद्धि का कारण भाव है। अतः जिसकी भावनाएँ शुद्ध हैं, आचार-विचार पवित्र हैं, वही मोक्ष-सुख प्राप्त करता है[3]। गंगा, यमुना, सरस्वती और नर्मदा नदियों में स्नान करने से यदि शुद्धि हो तो महिष आदि पशु इन नदियों में सदा ही डुबकी लगाते रहते हैं, अतः

१–– प्राकृत द्वयाश्रय–सर्ग ३, श्लोक ७४ तथा ७५ गाथा।

२–– प्राकृत द्वयाक्षय–सर्ग ६, गाथा ८१-८२।,

अणकठिअ–दुद्ध सुइजस पयाव-धममट्टि आरि-जसकुसुम।
तुह गाष्ठिअ-वूहेणा विरोलिओ तस्स पुरजल ही॥
मन्त्रिह-दहिणो तुष्पंवधुरुप्लिआ तस्स नयरयोकणयं।
गिण्न्ने हिं तुह सेणिएहि अव अच्छिआ आहे॥ ६-८१-८२

३— प्राकृत द्वायाश्रय सर्ग ८ श्लोक ८०

उनकी शुद्धि भी हो जाना चाहिए। जो लोग अज्ञानता पूर्वक इन नदियों में स्नान करते हैं और अपने आचर-विचार को पवित्र नहीं बनाते उन्हें कुछ भी लाभ नहीं हो सकता। भावनाओं और क्रिया-व्यापारों को पवित्र रखने वाला व्यक्ति ही मोक्ष-सुख को पाता है।

इस प्रकार आचार्य हेमचन्द्र ने रस और भावों की सुन्दर और सजीव अभिव्यञ्जना की है। दोहक, मनोरमा आदि अन्य मात्रिक छन्दों का व्यवहार भी किया गया है। सर्गान्त में छन्द बदला हुआ है। वर्णिक छन्दों में इन्द्रवज्रा का प्रयोग अनेक स्थानों पर हुआ है। शास्त्रीय दृष्टि से इसमें महाकाव्य के सभी लक्षण घटित होते हैं। कथा सर्ग-बद्ध और शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार आठ सर्गों में विभक्त है। वस्तु-वर्णन, संवाद, भावाभिव्यञ्जन, एवं इतिवृत्त में सन्तुलन है।

द्वयाश्रय काव्य के वर्णन यथार्थवादी एवम् चित्रात्मक हैं। उदाहरणाथ अणहिलपुर का वर्णन, कर्ण जब तप कर रहे थे तब यकायक मानसून के आगमन का वर्णन, अर्बुदचल का वर्णन, सिन्धु नदी का वर्णन इत्यादि। ऋतु-वर्णन जल-विहार वर्णन भी अन्य महाकाव्यों से अधिक यथार्थवादी प्रतीत होते हैं। युद्ध वर्णन ओजो गुण सम्पन्न एवम् वीर रस पूर्ण है। मयणल्ल देवी की कथा सुन्दर है। उसमें भावनात्मक स्पर्श है। कम से कम इस भाग का वर्णन करते समय वे भूल गये होंगे कि वे एक महान् वैयाकरण थे। पठन करने का कुतुहल सदैव बना रहता है, प्रशस्तियाँ दरबारी कवित्व का सुन्दर नमूना हैं।

इस प्रकार 'द्वयाश्रय' काव्य का प्रधान रस वीर है; किन्तु अन्य सभी रसों का भी सुन्दर परिपाक हुआ है।' त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित' में वैदिक पुराणों के अनुसार ही अद्‌भुत शैली अथवा अतिशयोक्ति शैली को स्वीकार किया गया है, अतः अतिशयोक्ति अलङ्कार एवम् अद्‌भुत रस सर्वत्र विद्यमान है। धर्म-प्रभाव भी व्यापक होने के कारण शान्तरस भी आस्वाद्य है। साधारण लोगों में धर्म भावना जागृत करने के लिए यह आवश्यक भी है। किन्तु दूसरे वर्णन भी कम सुन्दर नहीं है। विशेषतः नगरों का वर्णन भव्य एवम् तत्कालीन वास्तुकला के अनुरूप मिलता है। इस महापुराण में धर्म-भावना ही केन्द्र बिन्दु का काम कर रही है। इस केन्द्र-बिन्दु के आसपास अनेक कहानियों का विस्तार है। इन कहानियों पर बुद्ध जातकों का पर्याप्तप्रभाव पड़ा है। एवम् उदात्तरस का परिपोष कर सत्य, शान्ति, क्षमा, अहिंसा आदि सद्‌गुणों को अपनाने के लिए ये कहानियाँ प्रेरणा देता हैं। हेमचन्द्र के काव्यग्रन्थ सदुक्तियों के आकर हैं। सर्वत्र सदुक्तियाँ बिखरी हुई मिलती हैं।

वीतराग स्तोत्र तथा द्वात्रिंशिका काव्य हेमचन्द्र के भक्ति काव्य के नमूने हैं। इनमें धर्म-तत्व के विवेचन के साथ भगवान महावीर के प्रति भक्ति की भावना ओतप्रोत है। अतः इन काव्यों में भक्ति रस है। भक्ति युक्त अन्तःकरण से भगवान महावीर की शरण में जाने के लिए कहा है। वीतराग स्तोत्रों को पढ़ते समय शिवमहिम्न स्तोत्र एवम् रामरक्षा स्तोत्र का स्मरण हो आता है।

हेमचन्द्र के भक्ति-काव्यों की सबसे बड़ी विशेषता है-उनकी शान्तिपरक्रता। कुत्सित परिस्थितियों में भी वे शान्त रस से नहीं हटे। उन्होंने कभी भी ओट में शृंगारिक प्रवृत्तियों को प्रश्रय नहीं दिया। भगवान् पति की आरती के लिए अंगूठों पर भगवती पत्नी का खड़ा होना ठीक है, किन्तु साथ हा पीन स्तनों के कारण उसके हाथ की पूजा की थाली के पुष्पों का बिखर जाना कहाँ तक भक्ति-परक है? राजशेखर सूरि के 'नेमिनाथ फागु' में राजुल का अनुपम सौन्दर्य अङ्कित है किन्तु उसके चारों और एक ऐसे पवित्र वातावरण की सीमा लिखी गयी है जिससे बिलासिता को सहलन प्राप्त नहीं हो पाती। उसके सौन्दर्य में जलन जहीं, शीतलता है। वह सुन्दरी है, पर पावनता की मूर्ति है। उसको देखकर श्रद्धा उत्पन्न होती है। आचार्य हेमचन्द्र के 'परिशिष्टपर्वन्' में कोशा के मादक सौन्दर्य और कामुक विलास-चेष्टाओं का चित्र खींचा गया है। युवा मुनि स्थूलभद्र के संयम को डिगाने के लिए सुन्दरी कोशा ने अपने विशाल भवन में अधिकाधिक प्रयास किया, किन्तु कृतकृत्य न हुई। कवि को कोशा की मादकता निरस्त करना अभीष्ट था। अतः उसके रतिरूप और कामुक भावों का अङ्कन ठीक ही हुआ। तप की दृढ़ता तभी है, जब वह बड़े से बड़े सौन्दर्य के आगे भी दृढ़ बना रहे। कोशा जगन्माता नहीं, वेश्या थी। वेश्या भी ऐसी वैसी नहीं, पाटलीपुत्र की प्रसिद्ध वेश्या। यदि आचार्य हेमचन्द्र उसके सौन्दर्य को उन्मुक्त भाव से मूर्तिमन्त न करते तो अस्वाभाविकता रह जाती। उससे एक मुनि का संयम बलवान प्रमाणित हुआ है।

निर्गुण और सगुण ब्रह्म की उपासना के रूप में दो प्रकार की भक्तियों से सभी परिचित हैं। किन्तु निराकार आत्मा और वीतराग साकार भगवान का स्वरूप एक मानने के कारण दोनों में जैसी एकता आचार्य हेमचन्द्र के काव्य में सम्भव हो सकी है वैसी अन्यत्र कहीं नहीं। अन्यत्र दोनों के बीच एक मोटी विभाजक रेखा पड़ी है। इनके काव्य में सिद्ध भक्ति के रूप में निष्कल ब्रह्म और तीर्थङ्कर भक्ति में सकल ब्रह्म का केवल विवेचन के लिए पृथक् निरूपण है, अन्यथा दोनों एक ही हैं।

आचार्य हेमचन्द्र का आराध्य केवल दर्शन और ज्ञान से नहीं अपितु चरित्र से भी अलङ्कृत है। इनके काव्य में चरित्र की भी भक्ति की गयी है। चरित्र और भक्ति का ऐसा समन्वय अन्यत्र दुर्लभ है। इस भक्ति का सम्बन्ध एक और बाह्य संसार से है, तो दूसरी ओर आत्मा से। इससे व्यक्तित्व में एक शालीनता आती है, व्यवहार में लोकप्रियता आती है, तथा आत्मा में परमात्मा का दिव्य तेज दमक उठता है। उन्होंने अर्हन्त और अर्हन्तप्रतिमा में कोई अन्तर स्वीकार नहीं किया है। चैत्य वन्दन के समान ही है। चैत्य यज्ञों के आवास-गृह हैं, उनकी भक्ति भगवान के भक्तों की ही भक्ति है।

बहिरङ्गपक्ष—भाषा, शब्द-शक्ति,अलङ्कार, छन्द आदि—

भाषा – त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित की भाषा सरल, सरस एवं ओज-मयी है। आख्यान साहित्य में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। जैन दर्शन का विवेचन भी सुरुचिपूर्ण है। इसमें वर्णन की अधिकता है। वैदिक पुराणों के समान ही हेमचन्द्र के पुराण में भी अतिशयोक्ति शैली का स्वच्छन्दता से प्रयोग किया गया है। तीर्थंङ्करों के अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन करने में आचार्य सिद्ध हस्त हैं। वैदिकों के कृष्णचरित्र के समान भगवान महावीर का चरित्र भी इतनी अद्भुत कथाओं से भरा है कि उसमें से वस्तुस्थिति का परिचय पाना अत्यन्त कठिन है। भगवान महावीर के मुख के आसपास सूर्य से सहस्र गुनी प्रभा है। उनका प्रतिबिम्ब नहीं गिरता। चरणों के नीचे सुवर्ण कमल उगे हुए हैं। एक करोड़ देव उनके परिवार में हैं। वे जहाँ जाते हैं सुवासित जलवृष्टि होती है, भूमि के कण्टक अधोमुख हो जाते हैं। आकाश में दुन्दुभी की ध्वनि होती है, आकाश में धर्मचक्र घूमता है, पुष्प वर्षा होती है और पक्षीगण उनकी प्रदक्षिणा करते हैं। उनका धर्म-ध्वज रत्नमय होता है। उनके शरीर में पसीना इत्यादि मल नहीं होते हैं। उनकी पलकें हिलती नहीं, चार मुख होते हैं, बाल और नाखून बढ़ते नहीं तथा वे आकाश में संचार करते हैं। तीर्थंङ्कर जहाँ स्थित होते हैं उस प्रदेश में शतयोजनपर्यन्त दुर्भिक्ष नहीं होता। अतिवृष्टि अथवा अनावृष्टि होती नहीं। उस राज्य में परचक्र का भय नहीं होता। उनका शरीर सुलक्षण, मल-रहित, रोग-रहित, सुगंधित तथा सुन्दर होता है। इस प्रकार सहजातिशय और देवकृत अतिशय उनमें होते हैं।

द्वयाश्रय काव्य में कुछ क्लिष्टता जरूर आ गयी है, किन्तु यह क्लिष्टता व्याकरण के नियमों को समझाने के कारण नहीं आई है, पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए चित्र काव्य की रचना से क्लिष्टता आयी है। कहते हैं कि वे सप्तसन्धान

शैली में सिद्धहस्त थे। काव्य के प्रवाह में व्याकरण के नियम बड़ी सरलता से स्पष्ट किये हैं[1]। "नमः स्वस्तिस्वधास्वाहाऽलैवषट् यौगाच्च" इस पाणिनि-सूत्र की सोदाहरण व्याख्या ही मानों उपस्थित की। है जहाँ द्वयाश्रय काव्य में क्लिष्टता है वहाँ उनके स्तोत्र-काव्यों में प्रसादयुक्त भाषा है। भक्तिरस का वहाँ राज्य है। धर्मविवेचन का स्तर भी उन्नत है। तपस्या एवं स्वानुभाव होने के कारण ही वे साहित्य में महावीर की भक्ति प्रदर्शित कर सके हैं। भक्ति युक्त स्तुति होने पर भी सुन्दर काव्य के गुण उनमें विद्यमान हैं।

शब्द-शक्ति :—अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना, इन तीनों शब्द-शक्तियों का हेमचन्द्र ने अपने काव्य में पर्याप्त उपयोग किया है। प्रायः धर्म-प्रचारक शब्द की अभिधा-शक्ति से ही काम लेते है। लक्षण व्यापार अथवा व्यञ्जना व्यापार में वे सिद्ध हस्त नहीं होते। आचार्य हेमचन्द्र जिन्होंने शब्दानुशासन एवं काव्यानुशासन की रचना की, व्यञ्जना में चमत्कार उत्पन्न करने में निष्णात थे[2]। अपराधी मनुष्य के ऊपर भी प्रभु महावीर के नेत्र दया से तनिक नींची झुकी हुई पुतली वाले तथा करुणावश आये हुए किंचित आँसुओं से आद्र हो गये इसमें आचार्य हेमचन्द्र ने व्यञ्जना द्वारा यह सूचित किया है कि पापी भी भगवान की शरण में जा सकता है। वह भी भगवान की दया का पात्र बनता है। इसमें गीता की उक्ति "स्त्रियों वैश्या तथा शूद्रोस्तेऽपि यान्ति परांगतिम्" की ध्वनि मिलती है। नगर वर्णन में वे प्रायः अभिधा का ही प्रयोग करते है।

अलङ्कार — स्वभावोक्ति, अतिशयोक्ति, दृष्टान्त, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति अपन्हुति, अर्थान्तिरन्यास आदि सभी महत्वपूर्ण अलङ्कारों का हेमचन्द्र ने काव्य के प्रवाह में प्रयोग किया है। अनुप्रास की छटा देखिये[3]। प्रातःकाल गोकुल में वृद्धनरों ने अपने बच्चों से कहा—दूध निकालो, दूध पात्र में रखो, पात्र में रख कर वस्त्र से आवरण करो। तुमने दूध पी लिया अथवा छाछ चाहिये अथवा

१—द्वयाश्रय सर्ग ३, श्लोक ३४

स्वधा पितृभ्यः इन्द्रायवषट् स्वाहा इविर्भुते।
नमो देवेभ्यः इत्यत्विग्वाचः सस्यश्रिया फलान् ।। ३–३४

२—द्वयाश्रय सर्ग २ श्लोक ४८।

१, योगशास्त्र मंगलाचरण

कृतापराधेऽपि जने कृपामन्थरसारयो :।
ईष द्बाष्पार्द्र योर्भद्रं श्री वीर जिननेमयोः।।

३—द्वयाश्रय सर्ग १ श्लोक १८-१०

पानी से चलेगा ? उत्प्रेक्षा का उदाहरण[1] –अणहिलपुर की स्त्रियाँ चरित्रवती हैं–चंचलता तो केवल सेना में हैं। अणहिलपुर के विद्वानों की विद्वता को देखकर सप्तर्षि भूलोक छोड़कर चले गये। सन्देह अलङ्कार का उदाहरण–इस नगर के लोग मृगनयनियों की तरफ देखकर तर्क करते हैं–ये प्रत्यक्ष कोमल हाथ हैं अथवा कमल ? हाथों के नख जो रक्तिमा लिये हुए हैं, कमलान्तर्गत केसर तो नहीं है ? इसमें मृगीदृशाम् में रूपक अलङ्कार ही है। अतिशयोक्ति देखिये[2]–राजा का प्रताप देखकर सूर्य भी मन्द पड़ गया। शायद उसका प्रताप राजा ने छीन लिया होगा। कथा का प्रभाव देखिये। उसमें नाद है, माधुर्य है स्वभावोक्ति के भी उदाहरण विद्यमान हैं[3]।

कुमारपाल चरित काव्य में स्वाभाविक माधुर्य और सौन्दर्य के रहने पर भी उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, दीपक, अतिशयोक्ति, रूपक, आदि अलङ्कारों की सुन्दर योजना की है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार के व्यवहार द्वारा कवि हेम ने सरसता के साथ काव्य में कमनीय भावनाओं का संयोजन किया है[4]। वसन्त के आगमन के समय उसका स्वागत करने के लिए वन के द्वार पर कोयल मधुर ध्वनि में मंगल-पाठ कर रही है। यह मंगल-पाठ ऐसा मालूम होता है कि जैसे काम विह्वल प्रोषितपतिकाएँ अपने पतियों के स्वागत के लिए मधुर वाणी में स्तुतिपाठ करती हों। अतिशयोक्ति के प्रयोग द्वारा तथ्य का स्पष्टीकरण मनोरम

१–द्वयाश्रय सर्ग १ श्लोक ३६

दुग्घ स्म दुग्धं स्म निधत्थपार्यां पिधत्तदात्थस्म च दात्तचापि।
तक्राणि वा दाद्ध किमम्बु दाद्धेत्याहुः समं सम्प्रति घोष वृद्धाः ॥ २–४८
अमूपाणी मृदू पद्म किमु किं नु नरवा अमी।
केसराणीनि तर्कयन्ते जनैरस्मिन्मृगीदृशाम् ॥ १–३६

२–द्वयाश्रय सर्ग २ श्लोक १७

त्वयामदीयोथ मया त्वदीयो राजन् प्रतापोनुकृत स्त्वयीति।
तर्कं कुलोभानुरुदेति मन्दमियाशयः संप्रति माद्विधाम् ॥ २–१७

३–अन्ययोग व्यवच्छेद श्लोक १९

४–कुमारपाल चरित सर्ग ३ श्लोक ३४।

रूप में इस प्रकार उपस्थित किया है[1]। गौर-वर्ण के नागरिक अपनी-अपनी पत्नियों सहित भवनों के ऊपर रमण करते हुए देव और नाग कुमारों द्वारा आश्चर्य पूर्वक देखे जाते हैं। अर्थात वहाँ की नारियाँ अपने सौन्दर्य से अप्सराओं को और पुरुष देवों को तिरस्कृत करते हैं।

छन्द — संस्कृत के सभी लोकप्रिय छन्दों का हेमचन्द्र ने अपने काव्य में उपयोग किया है। महाकाव्य के नियमों के अनुसार सर्ग के अन्त में छन्द में परिवर्तन होता है, मालिनी अथवा शार्दूल विक्रीडित छन्द का वे स्तुति में प्रयोग करते हैं। द्वात्रिंशिका स्तुति में उन्होंने रूढ़ि के अनुसार उपजाति छन्द का ही प्रयोग किया है तथा अन्त में शिखरिणी का प्रयोग किया गया है। रामायण, महाभारत तथा पुराणों को आदर्श मानकर हेमचन्द्र ने अपनी पुराण की रचना की जिसमें पुराणों के अनुसार अनुष्टुभ् छन्द का प्रयोग किया गया है। प्रो० जेकौबी का मत है कि काव्य की दृष्टि से इनका अनुष्टुभ् सदोष है। किन्तु पुराणों में अनुष्टुभ् इस प्रकार के ही पाये जाते हैं।

हेमचन्द्र के काव्य की महत्ता– महाकाव्य, पुराणकाव्य एवम् स्तोत्र काव्य आदि काव्य के प्रत्येक क्षेत्र में हेमचन्द्र की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के दर्शन होते हैं। इनके काव्य में विस्तार के साथ गम्भीरता भी है। केवल धर्म-प्रचार का हेतु सामने रखकर काव्यनिर्मित करने वाले महाकवियों में अश्वघोष के पश्चात् आचार्य हेमचन्द्र का ही नाम आदर पूर्वक लिया जा सकता है। किन्तु अश्वघोष का काव्य 'शास्त्र काव्य' नहीं है। हेमचन्द्र ने द्व्याश्रय 'शास्त्र काव्य' लिखकर गुजरात में प्रारब्धा शास्त्र काव्य-रचना-शैली की परम्परा को विकासित, वृद्धिगत तथा परिवर्धित किया। यद्यपि भट्टि के पश्चात् कतिपय शास्त्रकाव्य-कार हुए हैं फिर भी इनमें विशेष उल्लेखनीय आचार्य हेमचन्द्र ही हैं। 'भट्टिकाव्य-कार' ने अपने भट्टिकाव्य में केवल संस्कृत भाषा के सम्बन्ध में ही कहा है किन्तु हेमचन्द्र ने अपने शास्त्रकाव्य में संस्कृत, प्राकृत दोनों का सफलतापूर्वक वहन किया है। इस प्रकार भट्टि के पश्चात् प्रायः तीन-चार शताब्दियों तक जो परम्पार सुप्त सी हो गई थी उस परम्परा का उन्होंने न केवल उत्थान अपितु परिवर्धन भी किया।

१–कुमारपाल चरित सर्ग १ श्लोक १३।

सा वासना सा क्षणसन्ततिश्च ना भेदभेदामुभयैर्घटेते।
ततस्तटादाशि शकुन्तपोत न्यायात्त्वदुक्तानि परेश्रयन्तु ॥ १६

हेमचन्द्र अपने समय के अद्‌भुत पण्डित थे और उनकी कीर्ति का प्रसार उस समय के संस्कृत-शिक्षा के केन्द्र काश्मीर में भी हुआ था। महाकवि कालिदास की भाँति उन्होंने अपने काव्य का कथानक महाभारत अथवा पौराणिक स्रोत से नहीं किन्तु ऐतिहासिक स्रोतों से लिया और उस पर अपनी प्रखर प्रतिभा की छाप बैठा दी। सचमुच उनके 'द्वयाश्रय' काव्य में काव्यसौन्दर्य तथा व्याकरण का मणिकाञ्चन संयोग है। उनकी कविता संस्कृत-साहित्य की अनुपम उपलब्धि है। शब्दों के सुन्दर विन्यास में, भावों के समुचित निर्वाह में, कल्पना की ऊँची उड़ान में तथा प्रकृति के सजीव चित्रण में इस महाकाव्य का काव्यजगत् में अद्वितीय स्थान है। स्तोत्र काव्य की उनकी कविता सहृदयों के मन को हरती है। शब्द और अर्थ को नवीनता उसे सचमुच 'एकार्थमत्यजतोनवार्थवटनाम्' बना देती हैं। 'द्वयाश्रय, में एक ही विषय पर कई श्लोकों में वर्णन मिलेगा, पर सर्वत्र नवीन शब्दावली एवम् अभिनव पद-रचना उपलब्ध होती है। अतिशयोक्ति की उद्‌भावना में, उपमा, रूपक, यमक, अनुप्रास, विरोधाभास तथा श्लेष के समुचित प्रयोग में हेमचन्द्र अद्वितीय हैं। शब्दार्थ का सामञ्जस्य मनोहर है।

भट्टि के अतिरिक्त सम्भवतः महाकवि 'माघ' का 'शिशुपाल वध' भी हेमचन्द्र के सामने आदर्श रहा होगा। इनका सारा काव्य प्रौढ़ एवं उदात्त शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। प्रत्येक वर्णन सजीव एवम् सालङ्कार है।

कुछ आलोचकों ने द्वयाश्रय काव्य पर कृत्रिमता और आडम्बर की अधिकता का दोषारोपण किया है पर उनके काव्य के विशेष प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए यह कहना अनुचित न होगा कि उसमें वास्तविक काव्य के गुणों की कमी नहीं। पहले तो उन्हें व्याकरण के जटिल से जटिल नियमों के उदाहरण उपस्थित करते थे और दूसरे अपने काव्य के सर्वजनविदित कथानक में मौलिकता का सन्निवेश करना था। इसमें सन्देह नहीं कि इन उभय उद्देश्यों का एक साथ निर्वाह करना किसी भी कवि के लिए नितान्त कठिन कार्य है। इस कठिनाई के रहते हुए भी हेमचन्द्र के महाकाव्यों में रोचकता, मधुरता और काव्योचित सरसता का अभाव नहीं है। उनके प्रभावशाली संवाद, प्राकृतिक दृश्यों के मनोरम चित्रण, प्रौढ़व्यञ्जना प्रणाली तथा वस्तु-वर्णन उत्कृष्ट कोटि के हैं। हेमचन्द्र के काव्य का मूल्याङ्कन श्री विंटरनीत्ज, वरदाचारी एवम् एस० के० डे० ने उचित

रूप से किया है[1]। 'त्रिषष्ठिशलाकापुरुष चरित' में कथा के प्रवाह में बीच-बीच में जैनधर्म के सिद्धान्तों का आकर्षक रूप से प्रतिपादन किया गया है। कहीं-कहीं गूढ़ दार्शनिक तत्वों को काव्य रूप में प्रस्तुत करने के फलस्वरूप शैली में शिथिलता एवं दुरूहता आ गयी है।

पण्डित कवियों में स्थान– महाकवि कालिदास के पश्चात् महाकवि भारवि ने संस्कृत काव्य में एक नवीन 'शैली' को जन्म दिया। श्री बलदेव उपाध्याय ने उसे 'अलङ्कृत शैली' का नाम दिया। उसे कृत्रिम शैली भी कहते हैं। इस समय तक संस्कृत भाषा का क्षेत्र राजसभा तक ही सीमित रह गया था। राजसभा में उपस्थित पण्डित-समाज का मनोरंजन करना ही संस्कृत कवियों का कार्य हो गया था। अतः पण्डित जन के मनोरंजनार्थ पण्डित कवियों ने पाण्डित्यपूर्ण शैली,–अलङ्कृत शैली का आरम्भ किया। इस शैली के अन्तर्गत धीरे-धीरे भाषा ने अपनी सरलता छोड़कर क्लिष्ट शब्दों और दीर्घ समासों का आश्रय लिया। परिणामतः इन काव्यों में सरलता और स्वाभाविकता की कमी है। इन पण्डित कवियों ने काव्य का उद्देश्य बाह्य शोभा–अलङ्कार, श्लेष योजना एवम् शब्दविन्यासचातुरी तक ही सीमित कर दिया। अलङ्कार कौशल का प्रदर्शन करना तथा व्याकरण आदि शास्त्रों के नियमों के पालन में अपनी निपुणता सिद्ध करना ही उनका प्रधान लक्ष्य हो गया। काव्य का विषय गौण हो गया तथा भाषा और शैली को अलङ्कृत करने की कला प्रधान हो गयी।

इन काव्यों के रचयिता प्रायः राजाओं के आश्रित हुआ करते थे। ये राजा स्वयं साहित्यिक रुचि के व्यक्ति होते थे और उनमें वास्तविक गुणों की परीक्षा करने की क्षमता होती थी। राज-सभाओं के इस प्रभाव के कारण तत्कालीन संस्कृत महाकाव्यों पर राजकीय जीवन की–उसकी विलासिता तथा कृत्रिमता की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है। भाव-प्रदर्शन का स्थान वैदग्ध्य-प्रदर्शन ने

---

1 –The famous वीतराग स्तोत्र of the great आचार्य हेमचन्द्र written at the request of king Kumarpal is ostensibly a poem in praise of महावीर, the Passionless One; but it is also a poetical mannual of जैन doctrine divided into 20 parts ....written in the direct and forcible language of knowledge and adoration.

Aspects of Sanskrit Lietrature–S. K. Dey.

In his poem called कुमारपाल चरित written in Sanskrit and

ले लिया तथा कल्पना की प्रधानता हो गयी। इन काव्यों पर 'कामशास्त्र तथा अलङ्कार शास्त्र का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा। अलङ्कार शास्त्र ने काव्य सम्बन्धी नियमों को निर्धारित किया तथा कामशास्त्र ने नायक-नायिका के आचार-विचार को प्रस्तुत किया। शास्त्रीय सिद्धान्त की प्रधानता ने इन पण्डित कवियों को अपनी स्वतन्त्र उद्भावना-शक्ति के प्रति सतर्क कर दिया। उन्होंने शास्त्रीय मत को श्रेष्ठ, और अन्तः प्रेरणा को गौण मान लिया।

पण्डित कवियों की यह अलङ्कृत शैली इतनी लोकप्रिय हुई कि 'भारवि' के पश्चात् इस शैली से युक्त काव्य-निर्माण करने की होड़ लग गयी। 'शिशुपाल वध' के रचयिता 'माघ' ने मानों स्पर्धा की भावना रखकर ही अपने काव्य को 'भारवि' से भी अधिक पाण्डित्यपूर्ण बनाया। माघ के काव्य में भारवि के 'किरातार्जुनीय' का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है, तो रत्नाकर के 'हर विजय' नामक महाकाव्य पर माघ का प्रभाव स्पष्ट दर्शित होता है। भट्टि के 'भट्टि-काव्य' ने इस परम्परा में एक और अध्याय जोड़ दिया अलङ्कृत शैली के साथ-साथ व्याकरण के जटिल नियमों के उदाहरण प्रस्तुत करना भी इन पण्डित कवियों का लक्ष्य बन गया। इस प्रकार भारवि से आरम्भ होने वाला अलङ्कृत शैलीयुक्त काव्य 'शास्त्र काव्य' में परिणत हो गया। यह उसी अलङ्कृत शैली की चरम सीमा है।

Prakrit, the learned Jain Monk, Hemchandra proves himself simultaneously a poet, historian, and grammarian in the two languages. The work contains the history of चालुक्या particullarly of कुमारपाल in cantoes 16–20. This prince is extolled above all as a pious Jaina...............it is evident that कुमारपाल was full in life and at the peek of his fame when the poem was written.

H. Winternitz–History of India Literature Vol III P. I Page 102

"............Some poems were written for the main purpose of preaching the religion. परिशिष्ठ पर्वन् has a number of popular tales which the author introduced into his biogra-phical narrations about Jain Saints. History of Sanskrit Literature by वरदाचारी Page 84, 91, 101, 122, 126

इस पण्डित शैली का प्रभाव 'जैन महाकाव्यों' में भी परिलक्षित होता है। हरिचन्द्र नामक कवि ने 'धर्मशर्माभ्युदय' नामक महाकाव्य की रचना की, जो इसी कृत्रिम शैली का प्रतीक है। १२०० ई०के वाग्भट के 'नेमिनिर्वाण' काव्य पर 'धर्मशर्माभ्युदय' का प्रभाव परिलक्षित होता है। 'धर्मशर्माभ्युदय' में चित्रालङ्कारों की भरमार है। १२०० शताब्दी में ही महाकवि कविराज ने 'राघवपाण्डवीय' नामक महाकाव्य की रचना की। इसमें प्रत्येक श्लोक में श्लेष द्वारा रामायण और महाभारत की कथा का साथ-साथ वर्णन किया गया है। बाद में इस काव्य का भी अनुकरण होने लगा तथा व्याकरण प्रधान शास्त्र काव्य की परम्परा विकसित होने लगी। श्री हरदत्तसूरि के 'राघवनैषधीय' में नल और राम की ओर चिदम्बरकृत 'राघवयादवपाण्डवीय' में रामायण, महाभारत तथा भागवत् की कथा एक साथ वर्णित है। विद्यामाधव रचित' पार्वती रुक्मिणीय' में शिव-पार्वती तथा कृष्ण-रुक्मिणी के विवाह का एक साथ वर्णन किया गया है। बेंकटाध्वरि के 'यादवराघवीय' में सीधे पढ़ने से राम तथा उलटे पढ़ने से कृष्ण की कथा का वर्णन है। पण्डित काव्य का चरमोत्कर्ष श्री हर्ष के 'नैषध' में देखने को मिलता है जिन्होंने अपने काव्य को जानबूझ कर क्लिष्ट बनाया। उन्होंने कहा है, 'पण्डित होने का दर्प करने वाला कोई दुःशील मनुष्य इस काव्य के मर्म को हठपूर्वक जानने का चापल्य न कर सके इसलिये हमने जानबूझकर कहीं-कहीं इस ग्रन्थ में ग्रन्थियाँ लगा दी हैं। जो सज्जन श्रद्धा-भक्ति पूर्वक गुरु को प्रसन्न करके इन गूढ़ ग्रन्थियों को सुलझा लेंगे, वे ही इस काव्य के रस की लहरों में हिलोरे ले सकेंगे।'

पण्डित कवियों में आचार्य हेमचन्द्र का महत्वपूर्ण स्थान है, इनका काव्य 'पण्डितकाव्य' होकर 'शास्त्रकाव्य' भी है। इनके काव्य में कुछ ऐसी विशेषता पायी जाती है जो अन्य पण्डित कवियों के काव्य में नहीं पायी जाती है। पहली विशेषता तो यह है कि उसमें धर्म-प्रचार की भावना ओतप्रोत है। चमत्कृत शैली में व्याकरण बताते हुए उन्होंने अपने धर्म का प्रभावपूर्ण प्रचार किया है एवम् कुमारपाल को श्रावक धर्म में आचार-बद्ध किया है। यह बात अन्य पण्डित काव्य में तथा शास्त्र काव्य में नहीं पायी जाती। दूसरी विशेषता उनका काव्य ऐतिहासिक काव्य है। संक्षेप में, आचार्य हेमचन्द्र के काव्य में संस्कृत बृहत्त्रयी के अनुसार पाण्डित्यपूर्ण चमत्कृत शैली है, भट्टि के अनुसार व्याकरण का विवेचन है, अश्वघोष के अनुसार धर्म-प्रचार है एवम् कल्हण के अनुसार इतिहास भी है। इतनी सारी बातें एक साथ अन्य किसी भी काव्य में पायी नहीं जाती। अतः

निःसन्देह आचार्य हेमचन्द्र का पण्डित-कवियों में मूर्धन्य स्थान है। उनके जैसे पण्डित के द्वारा सिद्धराज जयसिंह की पण्डित सभा यथार्थ में पण्डित सभा हो गयी थी। 'सिद्ध हेम शब्दानुशासन', 'त्रिषष्ठिशलाकापुरुष चरित' आदि में उन्होंने को राजा की स्तुति में प्रशस्ति श्लोक लिखे हैं वे दरबारी काव्य के उत्कृष्ट नमूने हैं।

हेमचन्द्र के काव्य-ग्रन्थों का ऐतिहासिक एवम् पौराणिक पक्ष—

अन्य साहित्य के समान संस्कृत के ऐतिहासिक काव्य में भी आचार्य हेमचन्द्र का स्थान विशिष्ट है। संस्कृत ऐतिहासिक-काव्य में 'काव्य' को महत्व अधिक दिया जाता है, इतिहास को कम। कहीं-कहीं तो इतिहास के तरफ ध्यान ही नहीं दिया जाता, और कहीं कहीं इतिहास का अतिशयोक्ति में विपर्यास किया जाता है। इस प्रकार का विपर्यास विल्हण के 'विक्रमाङ्कदेवचरित' में देखा जा सकता है किन्तु आचार्य हेमचन्द्र के 'कुमारपाल चरित' अथवा 'द्वयाश्रय' काव्य में ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा नहीं की गयी है। इस दृष्टि से हेमचन्द्र के काव्य ग्रन्थों का ऐतिहासिक पक्ष अत्यन्त सबल सिद्ध होता है।

प्राचीन काल के पुराणों में तत्कालीन धार्मिक सामाजिक एवम् सांस्कृतिक जीवन का विशद् चित्र उपलब्ध होता है। बौद्धों और जैनों के ग्रन्थों में भी ऐतिहासिक व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है। प्राचीन राजाओं की प्रशस्तियों में ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध होते हैं। फिर भी इन्हें ऐतिहासिक काव्य नहीं कह सकते। अश्वघोष (१ ई०) का 'बुद्धचरित' ऐतिहासिक काव्य कहा जा सकता है किन्तु वह अधिकांशतः काव्य है। धर्मोपदेश उसका उद्देश्य है। अतः ऐतिहासिक दृष्टि से उसका महत्व नहीं है। सर्वप्रथम ऐतिहासिक गद्य-काव्य की रचना करने का श्रेय बाण भट्ट(ई०६०६-६४८)को है। उनके 'हर्षचरित' में महाराज हर्षवर्धन का चरित्र अङ्कित हैं। इसमें इतिवृत्तों का उल्लेख कवित्वमय भाषा व में दिया गया है। किसी घटना की तिथि भी नहीं दी गई है। राज्यवर्धन को मारने वाले गौडाधिप का 'हर्षचरित' में कहीं नाम तक नहीं बतलाया गया है, अतएव काव्य का ऐतिहासिक महत्व कम हो गया है। वाक्पति राज का 'गौडवहो' नामक प्राकृत ऐतिहासिक काव्य है (७३६ ई०)। गौडवहो में ऐतिहासिक बातों का वर्णन बहुत ही कम है। उसमें यशोवर्मा द्वारा एक गौड़ राजा के परास्त करने की घटना का वर्णन है, किन्तु उस गौड़ राजा के नाम का उल्लेख नहीं किया गया है। ई० १००५ में पदमगुप्त अथवा परिमल कालिदास का नवसाहसाङ्क चरित की रचना हुई। इसमें भी विस्तृत वर्णनों से

कथा का प्रवाह अवरुद्ध हो गया है तथा ग्रन्थ का ऐतिहासिक महत्व कम हो गया है। बिल्हण ने १०८५ई०के लगभग 'विक्रमाङ्कदेव चरित' नामक ऐतिहासिक काव्य की रचना की। इसमें चालुक्य वंशी राजा विक्रमादित्य का चरित्र वर्णित है, कवि ने अपने चरितनायक का अतिरंजित वर्णन किया है। जगह-जगह पौराणिक और अलौकिक प्रसङ्गों के उल्लेख से काव्य का ऐतिहासिक पक्ष निर्बल पड़ गया है। घटनाओं की तिथियाँ भी सूचित नहीं की गई है। महाकवि कल्हण-कृत राजतरङ्गिणी' (११४८–५१ ई०) ऐतिहासिक काव्यों में सबसे अधिक महत्वमय है। यदि कहा जाये कि 'राजतरङ्गिणी' संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक घटनाओं के क्रमबद्ध इतिहास लिखने का प्रथम प्रयास है तो अत्युक्ति नहीं होगी। कल्हण ने आदि काल से लेकर सन् ११५१ के आरम्भ तक काश्मीर के प्रत्येक राजा के शासनकाल की घटनाओं का यथाक्रम विवरण दिया है। संस्कृत के प्राचीन ऐतिहासिक महाकाव्यों में यही एकमात्र कृति है जिसमें तिथियों का निर्देश किया गया है। कहीं-कहीं कल्हण की कालगणना भ्रान्तिपूर्ण है। फिर भी 'राजतङरगिणी' संस्कृत की अमूल्य कृति है।

कल्हण के अनन्तर रचे गये ऐतिहासिक काव्यों में आचार्य हेमचन्द्र का 'कुमारपाल चरित' अथवा 'द्वयाश्रय' काव्य ही महत्वपूर्ण है। कहा जाता है कि अण्हिलवाड़ के चालुक्य वंशी राजा कुमारपाल के सम्मानार्थ इस ऐतिहासिक काव्य की रचना की गयी। प्रो० पारीख का यह मत, जो सर्वथा उचित प्रतीत होता है, कि संस्कृत द्वयाश्रय का अधिकांश भाग सिद्धराज जयसिंह के समय में लिखा गया होना चाहिए।

"द्वयाश्रय काव्य" में कुमारपाल के शासन का वर्णन करते हुए काव्य के १६ वें सर्ग से २० वें सर्ग तक जो कुछ कहा गया है उसमें कम से कम इतनी सत्यता है कि कुमारपाल जैन धर्म के सिद्धान्तों का सच्चा अनुयायी था। इसने अत्यन्त कठोर दण्ड का विधान करते हुए पशु-हिंसा का निषेध कर दिया था, और अनेकानेक जैन मन्दिरों का निर्माण कराया था। वह निश्चित रूप से जैन-धर्म के पक्ष-पात की नीति का अनुसरण करता था। कुमारपाल चरित में निम्नांकित ऐतिहासिक तथ्य पूर्णतया सत्य हैं– (१) कुमारपाल का राज्याधिकार, (२) सत्यधर्मज्ञान प्राप्त करने की उसकी मनीषा, (३) हेमचन्द्र का पूर्व कालीन जीवन, (४) हेमचन्द्र और कुमारपाल का सम्बन्ध, (५) कुमारपाल का जैन-महोत्सवों को मनाना, (६) सौराष्ट्र मन्दिरों की कुमारपाल की यात्रा (७) गिरनार पहाड़ पर सोपान बनाना, (८) विहार पौधशाला आदि का

निर्माण, (६) कुमारपाल का जैन धर्म में अतीव रुचि लेना, (१०) कुमारपाल का दैनिक कार्यक्रम, (११) नमस्कार मन्त्र में कुमारपाल की श्रद्धा तथा (१२) कुमारपाल के जीवन सम्बन्धी अन्य उल्लेख।

संस्कृत 'द्वयाश्रय काव्य' को "चालुक्यवंशोत्कीर्तन" भी कहा जाता है। श्री पारीख महोदय ने अपने ग्रन्थ अणहिलपुर के चालुक्य वंश के इतिहास में संस्कृत 'द्वयाश्रय काव्य' का एवं 'कुमारपाल चरित' का बहुत उपयोग किया है। "परिशिष्ठ पर्वन्" में महावीर के पश्चात् जम्बुस्वामी से लेकर वज्रस्वामी तक का इतिहास दिया गया है। इसी में सम्राट श्रेणिक, सम्प्रति, चन्द्रगुप्त, अशोक, इत्यादि राजाओं का इतिहास भी गुंथा हुआ है। हेमचन्द्र के परिशिष्ट पर्व के अनुसार महावीर के निर्वाण के १५५ वर्ष पश्चात् चन्द्रगुप्त मौर्य राजा हुआ। हेमचन्द्र के परिशिष्ट पर्व में बतलाया गया है कि स्वयम्भव आचार्य ने अपने पुत्र मनक को अल्पायु जानकर उसके अनुग्रहार्थ आगम के साररूप दैशवैकालिक सूत्र की रचना की। जिस प्रकार 'द्वयाश्रय काव्य' में ऐतिहासिक पक्ष सबल है उसी प्रकार आचार्य हेमचन्द्र के 'त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित में पौराणिक पक्ष सबल है। यद्यपि हेमचन्द्राचार्य स्वयं उसे एक महाकाव्य कहते हैं, फिर भी उसमें पौराणिक पक्ष सबल होने से वह एक जैन पुराण ही कहा जा सकता है। वैदिक पुराणों की सभी विशेषताएँ इस पुराण में विद्यमान हैं। इस पुराण में तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक, एवं सांस्कृतिक जीवन का भी विशद् चित्र उपलब्ध होता है। संस्कृत के कथा साहित्य में भी 'परिशिष्ठपर्वन्' का उच्च स्थान है। यह सत्य है कि उन कथाओं को जैन सम्प्रदाय के मतानुसार परिवर्तित किया गया है क्योंकि जैन सम्प्रदाय में अतीव आस्था होने के कारण उन्होंने वस्तुओं और घटनाओं को विशेष दृष्टिकोण से देखा है। यथानुसार चन्द्रगुप्त को एक जैन बताया गया है। इतना होने पर भी इस पुराण ने जैन संस्कृति में प्राचीन पौराणिक परम्परा के अभाव की पूर्ति की है।

ऐतिहासिक एवं पौराणिक पक्ष के समान आचार्य हेमचन्द्र का भक्तिपक्ष भी सबल है। भगवान महावीर की स्तुति में उन्होंने प्रौढ़ दार्शनिक स्तोत्र लिखे। इससे सिद्ध होता है कि वे केवल शास्त्रों के निर्माता नहीं किन्तु सरस, सुरुचिपूर्ण काव्य के रचयिता भी हैं। भक्ति की दृष्टि से भी इन स्तोत्रों का उतना ही महत्व है जितना कि एक सुन्दर काव्य-कृति की दृष्टि से। इस सम्बन्ध में प्रो. जैकोबी का मत द्रष्टव्य है।

" Hemchandra has very extensive and at the same time accurate knowledge of many branches of Hindu and Jaina learning, combined with great literary skill, and on easy style. His strength lies in encyclopaedical, work rather than in original research but the enormous mass of varied information which he gatherd from original sources, mostly lost to us makes his work an inestimable mine for phieological and historical research"[१]

1-(Encyclopaedia of religion of Ethics)
Vol. VI P. 591

अध्याय : ३

व्याकरण ग्रन्थ

हेमचन्द्र की व्याकरण रचनाएँ

संस्कृत व्याकरण का सर्वोत्कृष्ट रूप पाणिनिकृत "अष्टाध्यायी" में पाया जाता है। उन्होंने अपने से पूर्व के अनेक वैयाकरणों, जैसे–शाकटायन, शौनक, स्फोटायन, आपिशलि, आदि का उल्लेख किया है। जिससे व्याकरण-शास्त्र की अतिप्राचीन अविच्छिन्न विकास धारा का सङ्केत मिलता है। भगवान पाणिनि की रचना इतनी सर्वाङ्गपूर्ण व अपने से पूर्व की समस्त मान्यताओं का यथावश्यक यथाविधि समावेश करने वाली सिद्ध हुई कि उससे पूर्व की उन समस्त रचनाओं का प्रचार-प्रसार रुक गया और वे लुप्त हो गयीं। पाणिनीय-तन्त्र इतना लोकप्रिय हुआ कि उससे भिन्न प्राचीन तन्त्र व्यवहार के परे हो जाने के कारण लुप्त-प्रायः हो गये। पाणिनी ने अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थकारों के अनेक सूत्र अपने ग्रन्थ में संग्रहित किये हैं। पाणिनी के ग्रन्थ 'अष्टाध्यायी' में यदि कुछ न्यूनता शेष रह गयी थी तो उसका शोधन वार्तिककार कात्यायन और भाष्यकार पतञ्जलि ने कर दिया। इस प्रकार पाणिनीय-व्याकरण-सम्प्रदाय को जो प्रतिष्ठा प्राप्त हुई उसे शताब्दियों की परम्परा भी कोई क्षति नहीं पहुँचा सकी।

पाणिनि के पश्चात् अनेक वैयाकरणों ने व्याकरण-शास्त्र की रचना की। उत्तरकालीन वैयाकरणों में से अधिकांश का आधार प्रायः पाणिनीय 'अष्टाध्यायी है। केवल कातन्त्र व्याकरण के सम्बन्ध में विद्वज्जनों की यह मान्यता है कि इसका आधार कोई अन्य प्राचीन व्याकरण है। इसी कारण कातन्त्र को भी प्राचीन माना जाता है। पाणिनीतर वैयाकरणों में निम्न ग्रन्थकार प्रसिद्ध हैं–

१. कातन्त्रकार, २. चन्द्रगोमी, ३. क्षपणक, ४. देवनन्दी, ५. वामन, ६. पाल्यकीर्ति, ७. शिवस्वामी, ८. भोजदेव, ९. बुद्धिसागर, १० भद्रेश्वर ११. हेमचन्द्र, १२. क्रमदीश्वर, १३. सारस्वत व्याकरणकार, १४. बोपदेव तथा १५. पद्मनाभ[१]।

पाणिनीय परम्परा द्वारा संस्कृत भाषा का परिष्कृत रूप अवश्य स्थिर हो गया, किन्तु व्याकरण शास्त्र की अन्यान्य पद्धतियाँ भी साथ-साथ चलती रहीं जैन सम्प्रदाय में देवनन्दी, शाकटायन, हेमचन्द्र आदि कई वैयाकरण हुए हैं। देवनन्दी ने अपने शब्दानुशासन में पूर्ववर्ती छः जैनाचार्यों का उल्लेख किया है। उनके ग्रन्थ व्याकरण सम्बन्धी थे किन्तु ये ग्रन्थ अब उपलब्ध नहीं हैं। पाणिनि के परवर्ती वैयाकरणों में हेमचन्द्रसूरि तक जो वैयाकरण हुए हैं उनमें देवनन्दी (ई० ५००–५५०) का 'जैनेन्द्र व्याकरण', कातन्त्र, पाल्यकीर्ति (८७१-९२४) का 'शाकटायन व्याकरण' एवं भोजदेव (सं. १०७५–१११०) का 'सरस्वती कंठाभरण' विशेष महत्वपूर्ण हैं। कातन्त्र व्याकरण का हेमचन्द्र पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। 'शाकटायन व्याकरण' भी हेमचन्द्र से पूर्व बहुत प्रसिद्ध था। हेमचन्द्र पर जैनेन्द्र तथा शाकटायन दोनों का प्रभाव पड़ा है। भोजदेव का 'सरस्वती कंठाभरण' मालवे के व्याकरण के नाम से प्रसिद्ध है। इन्हें संस्कृत भाषा का पुनरुद्धारक कहते हैं। इनके व्याकरण की लोकप्रियता को देखकर ही स्पर्धावश सिद्धराज जयसिंह ने हेमचंद्र को व्याकरण बनाने की प्रेरणा दी।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने समय में उपलब्ध समस्त व्याकरण वाङ्मय का अनुशीलन कर अपने 'शब्दानुशासन' एवं अन्य व्याकरण ग्रन्थों की रचना की। हेमचन्द्र के पूर्ववर्ती व्याकरणों में तीन दोष–विस्तार, कठिनता एवं क्रम-भंग या अनुवृत्तिबाहुल्य, पाये जाते हैं; किन्तु शब्दानुशासनकार हेमचन्द्र उक्त तीनों दोषों से मुक्त हैं। उनका व्याकरण सुस्पष्ट एवं आशुबोधक रूप में संस्कृत भाषा के सर्वाधिक शब्दों का अनुशासन उपस्थित करता है। यद्यपि उन्होंने पूर्ववर्ती व्याकरणों से कुछ न कुछ ग्रहण किया है, किन्तु उस स्वीकृति में भी मौलिकता और नवीनता है। उन्होंने सूत्र और उदाहरणों को ग्रहण कर लेने पर भी उनके निबन्धन क्रम के वैशिष्ट्य में एक नया ही चमत्कार उत्पन्न किया है। सूत्रों की समता, सूत्रों के भावों को पचाकर नये ढंग के सूत्र एवं अमोघ-वृत्ति के वाक्यों को ज्यों के त्यों रूप में अथवा कुछ परिवर्तन के साथ निबद्ध-कर भी अपनी मौलिकता का अक्षुण्ण बनाये रखना हेमचन्द्र जैसे प्रतिभाशाली

१–व्याकरण दर्शनर इतिहास द्वारा–पण्डित गुरुपद हालदार पृष्ठ ४४८।

व्यक्ति का ही कार्य है। उदाहरणार्थ –शाकटायन के "नित्यं हस्ते पाणौ" स्वीकृतौ। १-१- ६ सूत्र के स्थान पर हेमचन्द्र ने"नित्यं हस्ते पाणाबुद्वाहे ३-१-१५ सूत्र लिखकर स्पष्टता के प्रदर्शन के साथ उद्वाह–विवाह अर्थ में हस्ते और पाणौ को नित्य ही अवयव माना है और कृग्धातु के योग में गति संज्ञक कहकर हस्ते कृत्य पाणौकृत्य रूप सिद्ध किये हैं। इस प्रकार शाकटायन के सूत्र में थो साड़ा परिवर्तन कर उन्होंने शब्दानुशासन के क्षेत्र में चमत्कार उत्पन्न कर दिया है। इसी प्रकार 'कणे मनस्तृप्तौ, ३-१-६, सूत्र लिखकर 'कणे हत्यपयः पिबति, मनो हत्य पयः पिबति,' इत्यादि उदाहरणों के अर्थ में मौलिकता प्रदर्शित की है।

इस प्रकार हेमचन्द्र के पूर्व संस्कृत व्याकरण यद्यपि पर्याप्त विकसित रूप में विद्यमान था तो भी उन्होंने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के ग्रन्थों का सम्यक् अध्ययन कर एक सर्वाङ्ग परिपूर्ण उपयोगी एवं सरल व्याकरण की रचना कर संस्कृत और प्राकृत दोनों ही भाषाओं को पूर्णतया अनुशासित किया है। आचार्य हेमचन्द्र का व्याकरण गुजरात का व्याकरण कहलाता है। मालवराज अवन्तिनाथ भोज ने भी व्याकरण ग्रन्थ लिखा था और वहाँ उन्हीं का व्याकरण प्रयोग में लाया जाता था। विद्याभूमि गुजरात में कलाप के साथ भोज-व्याकरण की भी प्रतिष्ठा थी। अतएव हेमचन्द्र ने सिद्धराज जयसिंह के आग्रह से गुर्जर देशवासियों के अध्ययन हेतु अपने व्याकरण ग्रन्थों की रचना की। अमरचन्द्र-सूरि ने अपनी 'बृहत् अवचूर्णी' में उनके शब्दानुशासन की चर्चा की है। अतएव स्पष्ट है कि सिद्ध हेमशब्दानुशासन सन्तुलित और पंचाङ्गपरिपूर्ण है। इसमें प्रत्येक सूत्र के पदच्छेद, विभक्ति, समास, अर्थ, उदाहरण, और सिद्धि, ये छहों अङ्ग पाये जाते हैं। आचार्य हेमचन्द्र के व्याकरण से 'हेम' सम्प्रदाय की नींव पड़ी। हेम व्याकरण का क्रम प्राचीन शब्दानुशासनों के सदृश नहीं है। यह व्याकरण पाणिनीय तन्त्र की अपेक्षा लघु स्पष्ट और कातन्त्र की अपेक्षा सम्पूर्ण है। व्याकरण की साधारण जानकारी रखने वाला व्यक्ति भी उनके शब्दानु-शासन को हृदयङ्गम कर सकता है, तथा संस्कृत भाषा के समस्त प्रमुख शब्दों के अनुशासन से अवगत हो सकता है। "शब्दानुशासन" में विषय को स्पष्ट करने की दृष्टि से सूत्र सुव्यवस्थित एवं सुसम्बद्ध हैं। सूत्रों का प्रणयन आवश्य-कतानुरूप किया है। एक भी सूत्र ऐसा नहीं है जिसका कार्य किसी दूसरे सूत्र से चलाया जा सकता हो।

१. **शब्दानुशासन** –– शब्दानुशासन के विषय में कतिपय किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं जिनसे शब्दानुशासन की तत्कालिन प्रसिद्धि एवं मान्यता सिद्ध होती

है। मेरुतुङ्गाचार्य के प्रबन्ध चिन्तामणि के अनुसार एक बार सिद्धराज जयसिंह की राजसभा में ईर्ष्यालु ब्राह्मणों ने कहा "हमारे शास्त्रों के पाणिन्यादि व्याकरण ग्रन्थों के अध्ययन के बल पर ही इन जैनों की विद्वत्ता है।" राजा ने भी यही पूछा। तब आचार्य हेमचन्द्र ने कहा 'जैनेन्द्र व्याकरण को हम पढ़ते हैं, महावीर ने इन्द्र के सामने जिसकी व्याख्या की थी' इस पर एक ब्राह्मण पिशुन ने कहा 'पुरानी बातों को छोड़ दो, हमारे समय के ही किसी व्याकरणकर्त्ता का नाम बताओ'। इस पर आचार्य हेमचन्द्र बोले 'महाराज सहायता दें तो मैं ही स्वयं कुछ दिनों में पञ्चाङ्ग परिपूर्ण नूतन व्याकरण तैयार कर सकता हूँ'। राजा ने अपनी अनुमति प्रदान की[1]। इस पर बहुत से देशों के पण्डितों के साथ सभी व्याकरणों को मँगवाकर, हेमचन्द्राचार्य ने 'सिद्ध हेम' नामक नूतन पञ्चाङ्ग व्याकरण एक वर्ष में तैयार किया। इसमें सवा लाख श्लोक थे। इस व्याकरण ग्रन्थ का चल समारोह हाथी पर निकाला गया। इस पर श्वेतछत्र सुशोभित था एवम् दो चामर डोल रहे थे। राजा ने भी इस व्याकरण का खूब प्रचार करवाया। शब्दानुशासन के प्रचार के लिये ३०० लेखकों से ३०० प्रतियाँ लिखवाकर भिन्न-भिन्न धर्माध्यक्षों को भेंट देने के अतिरिक्त देश-विदेश, ईरान, सीलोन, नेपाल, प्रतियाँ भेजी गई गयीं। २० प्रतियाँ काश्मीर के सरस्वती भाण्डार में पहुँची। शब्दानुशासन के अध्यापनार्थ पाटन में कक्कल कायस्थ वैयाकरण नियुक्त किये गये। प्रतिमास ज्ञान शुक्ल पंचमी (कार्तिक सुदी पंचमी) को परीक्षा ली जाती थी और उत्तीर्ण होने वाले छात्र को शाल, सोने के गहने, छाते, पालकी आदि भेंट में दिये जाते थे। शुद्धाशुद्ध की परीक्षा कर यह ग्रन्थ राजकीय कोश में स्थापित किया गया। पुरातन प्रबन्ध संग्रह में भी प्रबन्ध चिन्तामणि का वृत्तान्त रूपान्तरित मिलता है। शब्दानुशासन कितना लोकप्रिय हुआ था इस विषय में पुरातन प्रबन्ध संग्रह में निम्नांकित श्लोक मिलता है।

"भ्रातः पाणिनि ! संवृणु प्रलपितं कातंत्र कंथा वृथा।
मा कार्षीः कटुशाकटायनवचः क्षुद्रेण चान्द्र ण किम्॥
कः कण्ठाभरणादिमि बर्ठरयत्यात्मान मन्यैरपि।
श्रूयन्ते यदि तावदर्श मधुराः श्री सिद्ध हेमोक्तयः॥

१–प्रबन्ध चिन्तामणि–पृष्ठ ४६०। २ शब्दानुशासनजातमस्ति तस्माच्च कथामिदं प्रशस्य तममिति ? उच्यते तद्धि अति विस्तीर्णं प्रकीर्णञ्च। कातंत्रं तर्हि साधु भविष्य तीति चेन्न तस्य संकीर्णत्वात्। इदं तु सिद्धहेमचन्द्राभिधानं नास्ति विस्तीर्णं नच संकीर्णमिति अनेनैव शब्द व्युत्पत्तिर्भवति।....अमरचन्द्रसूरि-बृहत् अवचूर्णी

व्याकरण के क्षेत्र में हेमचन्द्र ने पाणिनि, भट्टोजी दीक्षित और भट्टि का कार्य अकेले ही किया है। इन्होंने सूत्रवृत्ति के साथ प्रक्रिया और उदाहरण भी लिखे हैं। संस्कृत शब्दानुशासन ७ अध्याय में और प्राकृत शब्दानुशासन एक अध्याय में इस प्रकार कुल आठ अध्याय में अष्टाध्यायी शब्दानुशासन को समाप्त किया है। उन्होंने संस्कृत शब्दानुशासन के उदाहरण संस्कृत द्वयाश्रय काव्य में और प्राकृत शब्दानुशासन के उदाहरण प्राकृत द्वयाश्रय काव्य में लिखे हैं।

आचार्य हेमचन्द्र संस्कृत के अन्तिम महावैयाकरण थे जिन्होंने शब्दानुशासन द्वारा संस्कृत भाषा का विश्लेषण पूर्ण रूप से किया और 'हेम सम्प्रदाय' की नींव डाली। पाणिनिकृत 'अष्टाध्यायी' के अनुरूप उन्होंने भी अपने व्याकरण को ८ अध्यायों व प्रत्येक अध्याय को ४ पादों में विभाजित किया। उनकी विशेषता यह है कि संस्कृत सम्पूर्ण व्याकरण ७ अध्यायों में समाप्त करके अष्टम् अध्याय में प्राकृत व्याकरण का भी प्ररूपण ऐसी सर्वांगपरिपूर्ण रीति से किया कि वह अद्यावधि अपूर्व कहा जा सकता है। उनके पश्चात् जो प्राकृत व्याकरण बने, वे बहुधा उनका ही अनुकरण करते हैं। विशेषत: शौरसेनी, मागधी, पैशाची प्राकृतों के स्वरूप तो कुछ न कुछ उनके पूर्ववर्ती चण्ड व वररुचि जैसे प्राकृत वैयाकरणों ने भी उपस्थित किये हैं, किन्तु अपभ्रंश का व्याकरण तो हेमचन्द्र की अपूर्व देन है। उसमें भी जो उदाहरण पूरे व अधूरे पद्यों के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं, उनसे तो अपभ्रंश साहित्य की प्राचीन समृद्धि के सम्बन्ध में विद्वानों की आँखें खुल गयीं और वे उन पद्यों के स्तोत्र की खोज में लग गये।

सिद्ध हेम शब्दानुशासन में प्रारम्भिक ७ अध्यायों में ३५६६ सूत्र हैं, ८ वें अध्याय में १११९ सूत्र हैं। इस प्रकार संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के इस महान् व्याकरण को करीब ४ हजार सूत्रों में पूरा करके भी कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्र शान्त नहीं रहे। उन्होंने १८००० श्लोक प्रमाण उसकी बृहद्वृत्ति भी लिखी। इस बृहद्वृत्ति पर भाष्य'कतिचिद् दुर्गपदख्या व्याख्या'लिखी गयी। इस भाष्य की हस्त लिखित प्रति बर्लिन में है (ब्येवर पृ० २३७)। लध्वी वृत्ति का प्रमाण ६००० श्लोक हैं। इस वृत्ति का नाम 'प्रकाशिका' भी है। (पिटरसन का प्रथम प्रतिवेदन पृ० ७०-७१) ९०,००० श्लोकों का एक बृहन्नयास नाम का विवरण भी उन्होंने लिखा। यह कृति अब अनुपलब्ध है। उन्होंने अपनी वृत्ति में गणपाठ, धातुपाठ,उणादि और लिङ्गानुशासन प्रकरण भी जोड़े। इन वृत्तियों में अनेक प्राचीन वयाकरणों के नाम लेकर उनके मतों का विवेचन भी किया है। उदाहरणों में भी बहुत कुछ मौलिकता पायी जाती

है। विधि–विधानों में कर्ता ने इसमें अपने काल तक के भाषात्मक विकास का समावेश करने का प्रयत्न किया है जो ऐतिहासिक दृष्टि से भी बड़ा महत्वपूर्ण है।

शब्दानुशासन में निम्नांकित प्राचीन आचार्यों का उल्लेख मिलता है – १, आपिशलि, २. यास्क, ३. शाकटायन, ४. गार्ग्य, ५ वेदमित्र, ६. शाकल्य ७. इन्द्र, ८. चन्द्र, ९. शेष भट्टारक, १०. पतञ्जलि, ११. वार्तिककार, १२. पाणिनी, १३. देवनन्दी, १४. जयादित्य, १५. वामन, १६. विश्वान्तविद्याधरकार, १७. विश्रान्तन्यासकार, १८. जैन शाकटायन, १९. दुर्गसिंह, २०. श्रुतपाल २१. भर्तृहरि, २२. क्षीरस्वामी, २३. भोज, २४. नारायण कण्ठी, २५.सारसङ्ग्रहकार, २६. द्रमिल, २७. शिक्षाकार, २८. उत्पल, २९. उपाध्याय, ३०. क्षीरस्वामी, ३१. जयन्तीकार, ३२. न्यासकार तथा ३३. पारायणकार।

हेमचन्द्र का व्याकरण-क्रम प्राचीन शब्दानुशासनों के सदृश नहीं है। इसकी रचना कातन्त्र के समान प्रकरणानुसारी है। इसमें यथाक्रम संज्ञा, स्वर-संधि, व्यन्जन-संधि, नाम, कारक, षत्व, णत्व, स्त्रीप्रत्यय समास आख्यात, कृदन्त और तद्धित प्रकरण हैं। संस्कृत भाषा के शब्दानुशासन को ४ भागों में विभक्त किया जा सकता है–(१) चतुष्कवृत्ति (२) आख्यात वृत्ति (३) कृदवृति और (४) तद्धितवृत्ति।

चतुष्कबृत्ति में सन्धि, शब्दरूप, कारक एवं समास चारों का अनुशासन आरम्भ से लेकर तृतीय अध्याय के द्वितीय पाद तक वर्णित है। आख्यात वृत्ति में धातुरूपों और प्रक्रियाओं का अनुशासन तृतीय अध्याय के तृतीय पाद से चतुर्थ अध्याय के चतुर्थ पाद पर्यन्त और कृद्वृत्ति में कृत् प्रत्यय सम्बन्धी अनुशासन पञ्चम् अध्याय में निरूपित है। तद्धित वृत्ति में तद्धित प्रत्यय, समासान्त प्रत्यय, एवम् न्याय सूत्रों का कथन छठे और सातवें दोनों अध्यायों में वर्णित है। साहित्य और व्यवहार की भाषा में प्रयुक्त सभी प्रकार के शब्दों का अनुशासन इस व्याकरण में ग्रथित है। वास्तविकता यह है कि शब्दानुशासक हेमचन्द्राचार्य का व्यक्तित्व अद्भुत है। इन्होंने धातु और प्रातिपदिक, प्रकृति और प्रत्यय समास और वाक्य, कृत् और तद्धित, अव्यय और उपसर्ग प्रभृति का निरूपण, विवेचन एवम् विश्लेषण किया है।

प्रथम अध्याय के प्रथम पाद में 'अर्हम्, १।१।१ यह मंगल सूत्र कहने के उपरान्त 'सिद्धिःस्याद्वादात्' १।१।२ महत्वपूर्ण सूत्र बतलाकर समस्त शब्दों की सिद्धि, निष्पत्ति और ज्ञप्ति अनेकान्त वाद द्वारा स्वीकार की है। तत्पश्चात्

'लोकात्' १।१।३, सूत्र कहकर 'शास्त्र में अनिर्दिष्ट संज्ञा लोकाचार से जाननी चाहिये, कहकर व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। द्वितीय पाद में संज्ञा प्रकरण के अनन्तर लाघवानुसार वर्ण कार्यों का विवेचन किया है। १।२।३ सूत्र द्वारा ॠ, ॡ को भी स्वर माना गया है। इसमें इनकी सरलता एक बड़ी उपलब्धि है। तृतीय पाद में व्यञ्जन सन्धि का निरूपण किया गया है। वे विसर्ग सन्धि का अन्तर्भाव व्यञ्जन सन्धि में ही करते हैं। 'अतोऽति रो रू:' १।३।२० तथा 'घोषवति' १।३।२१ सूत्रों से स्पष्ट है कि इन्होंने विसर्ग को व्यञ्जन के अन्तर्गत ही माना है। इस पाद में 'शिटयाद्यस्य द्वितीयो वा' १।३।५९ द्वारा ख्षीरमृक्षीरम् तथा अफसरा (अप्सरा) जैसे शब्दों की सिद्धि प्रदर्शित की है। हिन्दी का खीर शब्द हेमचन्द्र के ख्षीरम् के बहुत निकट है। सम्भवत: उनके समय इस शब्द का प्रयोग होने लगा था। उन्होंने विसर्ग को प्रधान न मानकर 'र्' को ही प्रधान माना है, तथा स् और र् इन दोनों व्यञ्जनों के द्वारा विसर्ग का निर्वाह किया है। यह युक्ति संगत और वैज्ञानिक है। साथ ही विस्तार को संक्षिप्त करने की प्रक्रिया में नई दिशा की ओर सङ्केत है। चतुर्थ पाद में साद्यन्त प्रकरण आरम्भ होता है एक शब्द के सभी विभक्तियों के समस्त रूपों की पूर्णतया सिद्धि न बतलाकर सामान्य विशेष भाव से सूत्रों का निबन्धन किया गया है चतुर्थपाद में शब्द रूपों की विवेचना की गयी है।

द्वितीय अध्याय में प्रथम पाद का आरम्भ स्त्रीलिङ्ग से होता है। इस पाद में व्यञ्जनान्त शब्दों का अनुशासन लिखा गया है। और इसमें सहायक तद्धित, कृदन्त और तिङन्त के कुछ सूत्र भी आ गये हैं। द्वितीय पाद में कारक प्रकरण है। कारक की परिभाषा देकर पाणिनि के समान हेमचन्द्र ने कारक का अधिकार नहीं माना है। पाणिनि की दृष्टि से बहुवत् भाव कारकीय नहीं है पर हेमचन्द्र ने कारकीय मानकर अपनी वैज्ञानिकता का परिचय दिया है। तृतीय पाद में लत्व, षत्व, णत्व विधि का प्रतिपादन किया गया है। पश्चात् समास, कृदन्त तद्धित, तिङ्न्त, उपसर्ग, अव्यय आदि के संयोग और भिन्न स्थितियों में णत्व भाव दिखाया गया है। चतुर्थपाद में स्त्री प्रत्यय प्रकरण है। सभी स्त्री प्रत्ययों का अनुशासन किया गया है।

तृतीय अध्याय के प्रथम पाद का वर्ण्य-विषय समास है। द्वितीय पाद में समास की परिशिष्ट चर्चा है। समास होने के बाद तथा समास निमित्तक अनिवार्य कार्य होने के पश्चात् सामासिक प्रयोगों में कुछ विशेष कार्य होते हैं यथा-सम् सुब्लुक, ह्रस्व प्रभृति नियमों का इस प्रकरण में समावेश किया गया है।

तृतीय पाद क्रिया-प्रकरण से सम्बन्ध रखता है। हेमचन्द्र का यह क्रिया-प्रकरण पाणिनि की शैली पर नहीं लिखा गया, अपितु कलाप या कातन्त्र की शैली पर निर्मित है। कातन्त्र के समान हेमचन्द्र ने भी क्रिया की १० अवस्थाएँ स्वीकार की हैं। पाणिनि के लेट् लकार को उन्होंने सर्वथा छोड़ दिया है। चतुर्थ पाद में प्रत्यय विशिष्ट धातुओं का विवरण है।

चतुर्थ अध्याय प्रथम पाद का आरम्भ 'द्वित्व' विषय को लेकर होता है। आगे चलकर यह प्रकरण द्वित्व सामान्य में परिवर्तित हो जाता है। इस पाद के अन्तिम सूत्रों में कृत् प्रत्ययों का विधान है। द्वितीय पाद इसी से सम्बद्ध है। सभी प्रकार के विकारों और उन विकारों से समुत्पन्न सभी प्रकार की शब्द की स्थितियों पर प्रकाश डाला गया है। तृतीय पाद में गुण और वृद्धि का नियमन किया गया है। चतुर्थ पाद में धातुओं का आदेश-विधान है। आख्यात सम्बन्धी समस्त नियम और उपनियमों का प्रतिपादन इस पाद में आया है। कुछ स्वरात्मक तथा व्यञ्जनात्मक आगमों की चर्चा है।

पञ्चम् अध्याय के प्रथम पाद में कृदन्त प्रत्ययों का वर्णन है। पाणिनि ने 'क्त' तथा 'क्तवतु' प्रत्यय को 'निष्ठा' नाम देकर विधान किया है। हेमचन्द्र ने 'निष्ठा' संज्ञा की कोई आवश्यकता नहीं समझी और उन्होंने 'क्तक्तवत्' ५।१।१७४ 'भूतार्थादात् घातोरेतौ स्याताम्' लिखकर सीधे ही इन प्रत्ययों का अनुशासन लिख दिया है। द्वितीय पाद भूतार्थ परिचायक है। विशेषतः 'भूत' परोक्ष अवस्था के लिए आया है। तृतीय पाद में भविष्यन्तीं अर्थ में प्रत्ययों के सङ्ग्रह की चेष्टा की गई है। चतुर्थ पाद में वर्तमान के अर्थ में प्रत्ययों के सङ्ग्रह की चेष्टा की गयी है, कालों के प्रयोग का अनुशासन किया गया है।

षष्ठ अध्याय के प्रथम पाद में तद्धित प्रत्ययों का वर्णन है। इस पाद के अधिकांश सूत्र पाणिनि से भाव या शब्द अथवा दोनों में पर्याप्त साम्य रखते हैं। उदाहरणार्थ हेमचन्द्र का "गर्गादिर्यञ् ६।१।४२ पाणिनीय सूत्र" गर्गादिभ्यों यञ् ४।१।१०५ से साम्य रखता है। द्वितीय पाद में रक्त समूह एवं अवयव विकार आदि अर्थ में तद्धित प्रत्ययों का विधान किया गया है। जैसे "चक्षुषे-इदं चाक्षुषं रूपम्", " अश्वाय अयं आश्वारथः " इत्यादि। तृतीय पाद में अपत्यादि अर्थो से भिन्न प्राग् जातीय अर्थ में वक्ष्यमाण प्रत्यय होते हैं। यह अनुशासन अन्य व्याकरणों के समान ही है। हेमचन्द्र की शैली अनुशासन के क्षेत्र में अन्य वैयाकरणों की अपेक्षा भिन्न है। उन्होंने एक अर्थ में प्रयुक्त होने वाले प्रत्ययों के विधायक सूत्रों को एक साथ रखने का प्रयास किया है। इसके विप-

रीत पाणिनि ने एक प्रत्यय विधायक सूत्रों को एक साथ रखने की चेष्टा की है। हेमचन्द्र की अर्थानुसार प्रत्यय विधायक सूत्र शैली है। चतुर्थ पाद तद्धित का ही शेष है।

सप्तम् अध्याय के प्रथम पाद का आरम्भ 'य' प्रत्यय से हुआ है। पूर्वोक्त अर्थों के अतिरिक्त जो अर्थ शेष रह गये हैं, उन अर्थों में सामान्यतया 'य' प्रत्यय का विधान किया गया है। हेमचन्द्र की यह प्रत्यय-प्रक्रिया पाणिनि की अपेक्षा सरल है। पाणिनि ने कुछ शब्दों के आगे ठक्, ठञ आदि प्रत्यय किये है, तथा ठ को इक् करने के लिए 'ठस्येकः' ७।३।५० सूत्र लिखा है, किन्तु हेमचन्द्र ने सीधे ही इक् कर दिया है। उनकी यह प्रक्रिया लाघव शब्दानुशासन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। द्वितीय पाद का मुख्य वर्ण्य विषय संज्ञा विशेषण बनाना है। इस पाद में जहाँ सूत्रों से काम नहीं चला है, वहाँ वृत्ति के आदेशों से काम लिया है। उदाहरणार्थ वाचाल या वाग्मी बनाने के लिए पाणिनि ने व्यर्थ अधिक बोलने वाले के लिए 'वाचाल' शब्द बनाया है। हेमचन्द्र ने वाच आलाटौ' ७।२।२४, की वृत्ति में 'क्षेपेगम्ये' अर्थात् अल्प्रत्यय निन्दा अर्थ में होता है। तृतीय पाद में प्रधानतः समासान्त तद्धित प्रत्ययों का सङ्ग्रह है। चतुर्थ पाद में मुख्य रूप से तद्धित प्रत्ययों के आ जाने के बाद स्वर में जो विकृति होती है उसीका निर्देश किया गया है। द्वित्व तद्धित में प्लुत का सन्निवेश हेमचन्द्र की मौलिकता प्रगट करता है, जिसका पाणिनीय शास्त्र में बिलकुल अभाव है। ऐसा मालूम होता है कि हेमचन्द्र के समय में इस प्रकार के प्लुतों का प्रयोग बढ़ गया था। जिनका सङ्ग्रथन करके हेमचन्द्र को अपनी भाषा-शास्त्रीय प्रतिभा के प्रदर्शन का अवसर मिला।

सिद्ध हेम शब्दानुशासन के ८ वें अध्याय में प्राकृत भाषा का अनुशासन लिखा गया है। आचार्य हेम का प्राकृत व्याकरण समस्त उपलब्ध प्राकृत व्याकरणों में सबसे अधिक पूर्ण और व्यवस्थित है। इसके ४ पाद हैं। प्रथम पाद में २७१ सूत्र हैं, इनमें सन्धि, व्यञ्जनान्त, शब्द, अनुस्वार, लिङ्ग, विसर्ग, स्वरव्यत्यय और व्यञ्जनव्यत्यय का विवेचन किया गया है। द्वितीय पाद के २१८ सूत्रों में संयुक्त व्यञ्जनों के परिवर्तन, समीकरण, स्वर-भक्ति, वर्ण-वैपर्यय, शब्दादेश, तद्धित, निपात, और अव्ययों का निरूपण है। तृतीय पाद में १८२ सूत्र हैं जिनमें कारक, विभक्तियों तथा क्रिया-रचना सम्बन्धी नियमों का विवरण दिया गया है। चौथे पाद में ४४८ सूत्र हैं। चतुर्थ पाद के ३२८ सूत्र तक आर्ष (महाराष्ट्री प्राकृत) शौरसेनी, मागधी, पैशाची और चूलिका पैशाची की विशेषताओं की

चर्चा है। सूत्र ३२९ से ४४८ सूत्र तक अपभ्रंश भाषा की विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। अन्तिम दो सूत्रों में यह भी बतलाया गया है कि प्राकृत में उक्त लक्षणों का व्यत्यय भी पाया जाता है तथा जो बात वहाँ नहीं बतलाई गयी है, उसे संस्कृतवत् सिद्ध समझना चाहिये। सूत्रों के अतिरिक्त वृत्ति भी स्वयं हेम ने लिखी है। इस वृत्ति में सूत्रगत लक्षणों को बड़ी विशदता से उदाहरण देकर समझाया गया है। आदि के प्रास्ताविक सूत्र "अथ प्राकृतम्" की वृत्ति विशेष महत्वपूर्ण है। इसमें ग्रन्थकार ने प्राकृत शब्द की व्युत्पत्ति यह दी है कि प्रकृति संस्कृत है और उससे उत्पन्न व आगत प्राकृत, अतः आचार्य हेम ने प्राकृत शब्दों का अनुशासन संस्कृत शब्दों के रूपों को आदर्श मानकर किया है। हेम के मत से प्राकृत शब्द तीन प्रकार के हैं- तत्सम्, तद्भव, और देशी तत्सम और शब्दो को छोड़कर शेष तद्भव शब्दों का अनुशासन इस व्याकरण द्वारा किया गया है।

आचार्य हेम ने आर्षम् ८।१।३ सूत्र में आर्ष प्राकृत का नामोल्लेख किया है और बतलाया है "आर्ष प्राकृतं बहुलं भवति, तदपि यथास्थानं दर्शयिष्यामः। आर्षे हि सर्वे विधयो विकल्पयन्ते" अर्थात् अधिक प्राचीन प्राकृत आर्ष आगमिक प्राकृत है। इसमें प्राकृत के नियम विकल्प से प्रवृत होते हैं।

हेम का प्राकृत व्याकरण रचना-शैली और विषयानुक्रम के लिए प्राकृत-लक्षण' और 'प्राकृत-प्रकाश' का आभारी है। पर हेम ने विषय-विस्तार में बड़ी पटुता दिखलायी है। अनेक नये नियमों का भी निरूपण किया है। ग्रन्थन शैली भी हेम की चण्ड और वररुचि की अपेक्षा परिष्कृत है। तथापि 'हेम' व्याकरण में प्रायः सभी प्रक्रियाएँ अधिक विस्तार से बतलायी गयीं हैं और उनमें कई विधियों का समावेश किया गया है जो स्वाभाविक है। क्योंकि हेमचन्द्र के सम्मुख वररुचि की अपेक्षा लगभग पाँच-छः शतियों का भाषात्मक विकास और साहित्य उपस्थित था; जिसका उन्होंने पूरा उपयोग किया है। चूलिका पैशाची और अपभ्रंश का उल्लेख वररुचि में नहीं किया। चूलिका और अपभ्रंश का अनुशासन हेम का अपना है। अपभ्रंश भाषा का नियमन ११९ सूत्रों में स्वतन्त्र रूप से किया है। उदाहरणों में अपभ्रंश के पूरे के पूरे दोहे उद्धृत कर नष्ट होते हुए विशाल साहित्य का उन्होंने संरक्षण किया है। इसमें सन्देह नहीं कि आचार्य हेम के समय ने प्राकृत भाषा का बहुत अधिक विकास हो गया था और उसका विशाल साहित्य विद्यमान था। अतः उन्होंने व्याकरण की प्राचीन परम्परा को अपनाकर भी अनेक नये अनुशासन उपस्थित किये हैं।

अतः इस बारे में दो मत होने का प्रश्न ही नहीं उठता कि हेमचन्द्र ने

अपभ्रंश का व्याकरण लिखकर बहुत बड़ा ऐतिहासिक काम किया। आधुनिक युग में अपभ्रंश की जो खोज-खबर हो सकी उसका भी श्रेय इसे ही है। संक्षिप्त होते हुए भी व्याकरण के सभी अङ्गों का समावेश उसमें है। सर्वप्रथम स्वर-व्यञ्जनों का विचार है, फिर विभक्तियों और क्रियापदों का। उसके अनन्तर धात्वादेश, अव्यय, क्रिया, विशेषण, स्वार्थिक प्रत्यय, भाववाचक संज्ञा, क्रियार्थक क्रिया, पूर्वकालिक क्रिया और लिङ्गानुशासन पर विचार किया गया है। जो बातें अपभ्रंश व्याकरण में छूट गयी हों वे प्राकृत से समझ लेनी चाहिये, और जो प्राकृत में न हों, वे संस्कृत से। हेमचन्द्र के समय अपभ्रंश रूढ़ हो चुकी थी।

हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण में योगीन्द्र कृत 'परमात्म प्रकाश' के कुछ दोहे पाये जाते हैं। वैसे ही रामसिंह मुनिकृत 'पाहुड दोहा' के ४।५ दोहे अत्यल्प परिवर्तन के साथ हेम के प्राकृत व्याकरण में पाये जाते हैं[1]। आचार्य हेमचन्द्र की अपने प्राकृत व्याकरण पर भी प्रकाशिका नाम की स्वोपज्ञ वृत्ति है। इस पर और भी टीकाएँ हैं। उदय सौभाग्य गणी ने हेमचन्द्रीय वृत्ति पर हेम 'प्राकृत वृत्ति ढुंढिका' नाम की टीका लिखी है। नरचन्द्र सूरि ने भी हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण की टीका बनाथी है। 'कश्चित्', 'केचित्,' 'अन्ये', आदि शब्दों के प्रयोग से मालूम होता है कि हेमचन्द्र ने अपने से पहले के व्याकरणकारों से भी सामग्री ली है। यहाँ मागधी का विवेचन करते हुए प्रसङ्गवश एक नियम अर्ध-मागधी के लिए भी दे दिया है। इसके अनुसार अर्ध मागधी में पुल्लिंग कर्त्ता के एक वचन में 'अ' के स्थान में 'ए' कार हो जाता है। इसमें अपभ्रंश का विस्तृत विवेचन है। अपभ्रंश के अनेक अज्ञात ग्रन्थों से शृंगार, नीति, और वैराग्य सम्बन्धी सरस दोहे उद्धृत किये गये हैं।

२. धातुपाठ – आचार्य हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण के सम्बद्ध सभी अङ्गों (खिलों) का विवेचन कियो है। उसके अन्तर्गत धातुपाठ, गणपाठ, उणादि, पाठ का प्रवचन भी सम्मिलित है। उन्होंने अपने धातुपाठ पर हेम धातु पारायण अथवा स्वोपज्ञ धातु विवरण नामक स्वतन्त्र रूप से स्वोपज्ञ ग्रन्थ लिख कर विस्तृत व्याख्या की है। इसके सिवाय गुणरत्न सूरि (सं० १४६६) विनय-विजयगणी ने हेमधातु पाठ पर व्याख्याएँ लिखी हैं। हेमचन्द्र ने अपनी वृत्ति में धातु-प्रकृति को दो प्रकार की माना है–शुद्धा और प्रत्ययान्ता। उन्होंने प्रत्येक धातु के साथ अनुबन्ध की भी चर्चा की है। अनिट् धातुओं में अनुस्वार को अनुबन्ध माना है। उन्होंने पाणिनि के धातु अनुबन्धों में पर्याप्त उलट-फेर किया

१— भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान–डा० हीरालाल जैन पृष्ठ ११८

है। हैम धातुपाठ में कुल १९८० धातुएँ उपलब्ध हैं। उनके कुछ धातुओं के अर्थ बहुत ही सुन्दर हैं। इन अर्थों से भाषा सम्बन्धी अनेक प्रवृत्तियाँ ज्ञात होती हैं। उदाहरणार्थ डुवपी-बीज सन्तान अर्थ में, फक्व-निगीर्ण अर्थ में। अतः आचार्य हेमचन्द्र का धातुपाठ ज्ञानवर्धक होने के साथ मनोरंजक भी है।

३. गणपाठ– विजयनीतिसूरि ने 'सिद्ध हेमवृहत् प्रक्रिया' में हेमचन्द्र के सभी गणपाठ दिये हैं। हेमचन्द्राचार्य ने गणनिर्देश में प्रायः शाकटायन का अनुसरण किया है। फिर भी कतिपय स्थानों में स्वोपज्ञ अंश भी है। कतिपय नये गणों का निर्धारण भी किया है। उदाहरणार्थ पाणिनि के 'सायं चिरं' ४।३।२३ के लिए 'सायाल्हादि' ३।१।५३ गण की कल्पना की। कहीं नाम परिवर्तन पाया जाता है। उदाहरणार्थ :–पाणिनि,–चतुर्थी तदर्थार्थ २ | १ | ३६,
पाल्यकीर्ति अर्थादि " २ | १ | ३६,
हेमचन्द्र हितादि ,, ३ । १ । ७१,

गणपाठ के तत्तत् गणों में पूर्वाचार्य स्वीकृत प्रायः सभी पाठान्तरों का हेमचन्द्र ने अपने गणपाठ में सङ्ग्रह कर दिया है। प्रायः सभी ग्रन्थों में उनकी यह सङ्ग्रहात्मक प्रवृत्ति देखी जाती है। गण पाठ पर कोई स्वतन्त्र व्याख्या उपलब्ध नहीं होती है। तथापि कतिपय गणों के शब्दों की व्याख्या उनके बृहन्न्यास में उपलब्ध होती है।

४. उणादिपाठ– आचार्य हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण से सम्बद्ध 'उणादि' पाठ का प्रवचन किया है तथा उस पर स्वयं विवृति भी लिखी है। यह उणादि पाठ सबसे अधिक विस्तृत हैं। इसमें १००६ सूत्र हैं, व्याख्या भी पर्याप्त विस्तृत है, इसमें २८,००० श्लोक हैं। 'हैमोणादि' वृत्ति हेमचन्द्र की बृहद्वृत्ति का संक्षेप रूप है। एक अवचूरी टीका भी विक्रम विजय मुनि ने सम्पादित की है। हेमचन्द्र ने स्वोपज्ञ उणादि वृत्ति में दशपादी के अनेक पाठों का नाम-निर्देश के बिना उल्लेख किया है। इस प्रकार उन्होंने उणादि प्रत्ययों का अनुशासन किया है। उणादि द्वारा निष्पन्न कितने ही ऐसे शब्द हैं जिनसे हिन्दी, गुजराती और मराठी भाषा की अनेक प्रवृत्तियोंपर प्रकाश पड़ता है। जैसे कर्कर–कांकर–कंकड़, गर्गरी–गागर, द्रवरो–गुण– डोरा इत्यादि।

५. लिङ्गानुशासन– हेमचन्द्र का लिङ्गानुशासन सभी लिङ्गानुशासनों की अपेक्षा विस्तृत है। इसमें विविध छन्दोयुक्त १३८ श्लोक हैं। उन्होंने एक बृहत् स्वोपज्ञ विवरण भी लिखा है, जिसमें ३६८४ श्लोक हैं। इसके सिवाय कनकप्रभ (वि० १३ वीं शती), जयानन्दसूरि, केरूरविजय, वल्लभगणी (१६६१)

ने भी हेमलिङ्गानुशासन पर वृत्ति लिखी है। श्लोक विवरण निम्न अनुसार है। पुल्लिंगाधिकार १-१७, स्त्री-लिङ्गाधिकार १८-५०, नपुंसक लिङ्गाधिकार ५१-७४ पुंस्त्री लिङ्गाः ७५-८६, पुं नपुंसकलिङ्गाः ८७-१२२ स्त्री नपुंसक लिङ्गाः १२३-१२७ स्वतः स्त्री लिङ्गाधिकार १२८-१३३ ओर उपसंहार १३४-१३८।

इस प्रकार संस्कृत भाषा का पञ्चाङ्ग परिपूर्ण अनुशासन करने के लिए हेमचन्द्र ने 'हैमालिङ्गानुशानम्' लिखा है। उनका यह लिङ्गानुशासन अपने ढङ्ग का निराला है। लिङ्गानुशासन के अभाव में उनका शब्दानुशासन अधूरा ही रह जाता है। अतः सामान्य-विशेष लक्षणों द्वारा लिङ्ग का अनुशासन उन्होंने किया है। उनके इस लिङ्गानुशासन में जितने अधिक शब्दों का सङ्ग्रह है उतने अधिक शब्द किसी भी लिङ्गानुशासन में नहीं आये हैं।

आचार्य हेमचन्द्र के पूर्व पाणिनि का लिङ्गानुशासन, अमरकवि का अमरकोषान्तर्गत लिङ्गानुशासन तथा अनुभूति-स्वरूपाचार्य का लिङ्गानुशासन उपलब्ध है। हेमचन्द्र ने अपना लिङ्गानुशासन अमरकोष की शैली के आधार पर लिखा है। पद्य-बद्धता के साथ इसमें स्त्रीलिङ्ग, पुल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग इन तीनों लिङ्गों में शब्दों का वर्गीकरण भी बहुत अंशों में अमरकवि के ढङ्ग का है। इतना होने पर भी हेमलिङ्गानुशासन की अपनी विशेषताएँ हैं–

(१) हेमचन्द्र ने अपने लिङ्गानुशासन में विशाल शब्द-राशि का संङ्ग्रह किया है। इन शब्दों के सार्थ सङ्कलन से एक बृहद शब्द-कोश तैयार किया जा सकता है। उन्होंने रुचिर, ललित, कोमल शब्दों के साथ कटु, कठोर शब्दों का भी सङ्कलन कर लिङ्गज्ञान को सहज, सुलभ, बोध-गम्य बनाने का अद्वितीय प्रयास किया है।

(२) शब्दों का सङ्ग्रह विभिन्न साम्यों के आधार पर किया गया है। (अ) शब्द-साम्य के आधार पर, (आ) अर्थ-साम्य के आधार पर (इ) विषय के आधार पर (ई) अन्त्य अकारादि वर्णों के क्रम पर (उ) सामान्यतया प्रत्ययों के आधार पर और (ऊ) वस्तु विशेष की समता के आधार पर।

(३) विशेषण के विभिन्न लिङ्गों की भी चर्चा की गयी है। एक शेष द्वारा शब्दों के लिङ्गनिर्णय की चर्चा की है। इसमें हेमचन्द्र की नितान्त मौलिकता है।

(४) विभिन्नार्थक शब्दों का प्रयोग एक साथ अनुप्रास लाने तथा लालित्य उत्पन्न करने के लिए किया है।

पाणिनि की अपेक्षा हैमालिङ्गानुशासन में शैली-गत भिन्नता के अतिरिक्त और भी कई नवीनताएँ विद्यमान हैं। पाणिनीय लिङ्गानुशासन को समूचा

ही प्रत्ययों के आधार पर सङ्कलित है पर हेमचन्द्र ने कुछ ही शब्दों का चयन प्रत्ययों के आधार पर किया है। पाणिनि ने प्रत्ययों की चर्चा कर प्रायः तद्धितान्त शब्दों और कृदन्तान्त का ही सङ्कलन किया है और यह सङ्कलन हेमचन्द्र की अपेक्षा बहुत छोटा है। हेमचन्द्र ने नादानुकरण का आधार लेकर शब्द के अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग को पहचानने की चेष्टा की है। उनका तीनों लिङ्गों में शब्दों का पूर्वोक्त दिशा-क्रम से निर्देश करना उनके सफल वैयाकरण होने का प्रमाण है। अतएव वैयाकरण हेमचन्द्र का महत्व शब्दानुशासन के लिए जितना है, उससे कहीं अधिक लिङ्गानुशासन के लिए है। लिङ्गानुशासन में अधिकृत शब्दों का विवेचन, उनकी विशिष्टता, क्रम-बद्धता आदि का सूचक है। हेमचन्द्र का शब्द सङ्कलन वैज्ञानिक है, उदाहरणार्थ –

ध्रुवका क्षिपका कनीनिका शम्बूका शिविका गवेधुका।
कणिका केका विपादिका, मह्रिका, यूका मक्षिकाष्टका ॥
वृश्चिका, कूचिका, टीका, काशिका केणिकोमिका।
जलौका प्राविका धूका कालिका दीर्घिकोष्ट्रिका ॥

इसमें एक साम्य अन्तिम स्वरों में भी मिलता है। उपर्युक्त सभी शब्दों में भी अन्तिम 'आ' वर्ण का साम्य विद्यमान है। हेमचन्द्र ने तीसरे प्रकार का शब्द-सङ्ग्रह शब्द-साम्य के आधार पर किया है। शब्द-साम्य का यह आधार केवल अन्तिम शब्दों में ही नहीं मिलता, अपितु कहीं-कहीं तो नादानुकरण भी मिलता है। उदाहरणार्थ–

गुन्द्रा मुद्रा क्षुद्रा भद्रा भस्त्रा छत्रा यात्रा मात्रा
दंष्ट्रा फेला वेला मेला गोला शाला माला ॥२१॥
मेखला सिध्मला लीला रसाला सुर्वला बला।
कुद्दाला शंकुला हेला शिला सुवर्चला कला ॥२२॥ (स्त्रीलिङ्ग प्रकरण)

अतः हेमचन्द्र ने शब्द सङ्कलन का एक प्रमुख क्रम शब्द-साम्य माना है। फिर भी अर्थ-साम्य के आधार पर भी हेमचन्द्र ने शब्दों का सङ्ग्रह किया है। अङ्ग-वाचक, पशु-पक्षी-वाचक, दास-वाचक, दल-वाचक, वृक्ष-वाचक, पल्लव, पुष्प, शाखा-वाचक तथा वस्तु-वाचक शब्दों का अर्थानुसारी सङ्कलन किया गया है। उदा०

हस्तस्तनौष्ट नखदन्तकपोल गुल्फ केशान्घुगुच्छ दिवसर्तुपतद् ग्रहणाम्
निर्यासनाकर सकण्ठ कुठार कोष्ठ हैमारि वर्ष विषवोलस्था शनीनाम्
॥पुल्लिङ्ग॥

इसमें अङगवाची शब्दों का सङकलन किया गया है। अन्तिम वर्ण-साम्य पर ही प्राय: शब्दों का सङकलन होता है। इन शब्दों के क्रम में लालित्य एवं अनुप्रास का भी पूरा ध्यान रखा गया है। जैसे कर्पुर, नूपुर, कुटीर, विहार, वार इत्यादि। हेमचन्द्र ने इस लिङगानुशासन में पुल्लिंगी, स्त्रीलिङगी, नपुंसकलिङगी, पुंस्त्रीलिङ्गी, पुंनपुंसकलिङगी, स्त्रीक्लीबलिङ्गी, स्वतः स्त्रीलिङगी और पर-लिङगी शब्दों का सङग्रह किया है। पुं स्त्रीलिङगी शब्दों के सङकलन में पुल्लिङगी शब्दों को बतलाकर उन्हीं का स्त्रीलिङगी रूप ग्रहण करने का निर्देश किया गया है। हेमचन्द्र ने स्वत: स्त्रीलिङगी शब्दों का एक पृथक प्रकरण रखा है, यह प्रकरण नितान्त मौलिक है। नक्षत्र अर्थ में अश्विनी, चित्रा आदि स्वतः स्त्रीलङग है। हेमचन्द्र ने द्वंद्व समास में, अपत्यर्थ में, स्वार्थ में प्रकृत्यर्थ में पर-लिङ्ग का निर्देश किया है। इस तरह हेम लिङगानुशासन पुल्लिङग, स्त्रीलिङग और नपुंसक लिङगवाची शब्दों की पूर्ण जानकारी कराने में सक्षम है।

छन्दोऽनुशासन– छन्द-शास्त्र की परम्परा में आचार्य हेमचन्द्र ने भी छन्दोऽनुशासन की रचना की। इसका उल्लेख 'छन्दचूडामणि' नाम से भी आता है। यह रचना ८ अध्यायों में विभक्त है और उस पर स्वोपज्ञ टीका भी है। इस रचना में हेमचन्द्र ने जैसा उन्होंने अपने व्याकरणादि ग्रन्थों में किया है, यथाशक्ति अपने समय तक आविष्कृत तथा पूर्वाचार्यों द्वारा निरूपित समस्त संस्कृत, प्राकृत, और अपभ्रंश छन्दों का समावेश कर देने का प्रयत्न किया है; भले ही वे उनके समय में प्रयोग में आते रहे हों या नहीं। भरत और पिङगल के साथ उन्होंने स्वयंभू का भी आदर पूर्वक स्मरण किया है। माण्डव्य, भरत, कश्यप, सैतव, जयदेव आदि प्राचीन छन्द-शास्त्र प्रणेताओं के उल्लेख भी किये हैं। उन्होंने छन्दों के लक्षण तो संस्कृत में लिखे हैं किन्तु उनके उदाहरण उनके प्रयोगानुसार संस्कृत, प्राकृत या अपभ्रंश में दिये हैं। उदाहरण उनके स्वनिर्मित है। कहीं से उद्धृत किये हुए नहीं। इसमें 'रसगङगाधर' के समान सब कुछ आचार्य हेमचन्द्र का अपना है। हेमचन्द्र ने अनेक ऐसे प्राकृत-छन्दों के नाम लक्षण और उदाहरण भी दिये हैं जो स्वयम्भू छन्दस् में नहीं पाये जाते। स्वयम्भू ने जहाँ १ से २६ अक्षरों तक के वृत्तों के लगभग १०० भेद किये हैं, वहाँ हेमचन्द्र ने उनके २८६ भेद-प्रभेद बतलाये हैं। जिनमें 'दण्डक' सम्मिलित नहीं है। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के समस्त छन्दों के शास्त्रीय लक्षणों व उदाहरणों के लिए यह रचना एक महाकोश का कार्य करती है।

हेमचन्द्र ने अपने छन्दोऽनुशासन में जयदेवकृत छन्दोवृत्ति का उल्लेख

किया है। हेमचन्द्र के छन्दोऽनुशासन में उल्लेख किया है कि जयदेव यतिवादी थे और इन्होंने छन्दनाम-नर्कुटक सर्वप्रथम दिया है। हेमचन्द्र के छन्दोऽनुशासन में प्राप्त होने वाली कितनी ही कविताएँ, कितने ही नये छन्द 'स्वयम्भू छन्द' में प्रथमतः देखने को मिलते हैं। हेमचन्द्र ने नागवर्मा (१० वीं शती) द्वारा रचित छन्दोबुधि' (कानडी) में वर्णित अङ्गरुचि इत्यादि नये छन्दों के नाम भी अपने छन्दोऽनुशासन में दिये हैं। यद्यपि उन्होंने उनके नामका उल्लेख नहीं किया है

'छन्दोऽनुशासन की रचना निश्चित् रूप से 'काव्यानुशासन' के पश्चात् हुई, यह स्वयं हेमचन्द्र के कथन से स्पष्ट होता है। छन्दोऽनुशासन में कुल ७६३ सूत्र हैं जो ८ अध्यायों में विभक्त हैं। विवरण निम्नानुसार है – प्रथम अध्याय –सूत्र १६, संज्ञाध्याय, द्वितीय अध्याय–सूत्र ४१५ समवृत्त व्यावर्णन, तृतीय अध्याय– सूत्र ७३, अर्थसमवृत्त, विषमवृत्त, मात्राछन्द; चतुर्थ अध्याय-सूत्र ६१–आर्या गलितक, खञ्जक, शीर्षक; पञ्चम अध्याय–सूत्र ४९–उत्साह छन्द तथा अन्य; षष्ठ अध्याय-सूत्र २९–षट्पदी, चतुष्पदी; सप्तम अध्याथ–सूत्र ७३, द्विपदी तथा अष्टम् अध्याय-सूत्र १७–प्रस्तरादि व्यावर्णन।

'छन्दोऽनुशासन' से भारत के विभिन्न राज्यों में प्रचलित छन्दों पर प्रकाश पड़ सकता है। इस ग्रन्थ में प्रस्तुत उदाहरणों के अध्ययन से हेमचन्द्र का गीति-काव्य में सिद्धहस्त होना भी मालूम पड़ता है। आचार्य हेमचन्द्र ने 'छन्दोऽनुशासन' में विरहाङ्क, स्वयंभू, राजशेखर आदि के प्रति ऋणी हैं।

महाराष्ट्र के प्रख्यात कवि के० माधव ज्युलियन अथवा डा० पटवर्धन ने "छन्दो-रचना" नामक संशोधन प्रबन्ध में पृष्ठ ५५५ पर हेमचन्द्र के छन्दोऽनुशासन के विषय में लिखा है कि "छन्दोऽनुशासन" नामक ग्रन्थ में आचार्य हेमचन्द्र ने वृत्त-छन्दों का एक बड़ा सङ्ग्रह कर रखा है। इसमें आप सूत्र पद्धति का ही अवलम्ब करते हैं। उदाहरणार्थ "मत्नायि : कुसुमितलता वेल्लिता : ङचै :" य गण लगातार तीन बार आता है, इसलिये यकार तीसरे स्वर से युक्त है, क से ङ पञ्चमाक्षर तथा च यह षष्ठाक्षर है। अतः "ङचैः" सूत्र से इस वृत्त की पहली यति ५ अक्षरों पर तथा दूसरी यति (विराम) ६ अक्षरों पर ऐसे दो विभाग होते हैं, यह तात्पर्य निकलता है। सूत्र-पद्धति की यह विशेषता, तथा वृत्त-जाति सङ्ग्रह की विशालता–इन दो बातों के अतिरिक्त 'छन्दोऽनुशासन' में विशेष कुछ भी नहीं है। हेमचन्द्र साधारणतः स्वरचित उदाहरण देते हैं। वे बड़े सङ्ग्राहक हैं। छन्दों को यदि भिन्न नाम किसी ने दिये हैं तो वे सावधानी रखकर निर्देश करते हैं। क्वचित् प्रसङ्ग में नाम देने वाले का नाम

भी बताते हैं। इस प्रकार उन्होंने भरत, जयदेव, स्वयम्भू, के नामों का उल्लेख किया है। दोहा जाति का लक्षण कहते समय हेमचन्द्र विरहाङ्क के समान अपना मत देते हैं।

श्री ए०बी० कीथ ने 'संस्कृत साहित्य के इतिहास' में हेमचन्द्र के छन्दोनुशासन के विषय में अपना मत प्रकट किया है कि 'अलङ्कार शास्त्र के प्राचीन सम्प्रदाय में यमकों पर विस्तार से विचार किया गया है और वे प्राकृत में बहुधा प्राप्त होते हैं। आचार्य हेमचन्द्र ने प्राकृत में प्राय: प्रयुक्त होने वाले गलतिक छन्द के लिए पङ्क्तियों के अन्त में यमकों के प्रयोग को निर्धारित कर दिया है। उन्होंने अपने छन्दोऽनुशासन में इसका उल्लेख किया है और इसे अनुप्रास है रूप से यमक में भिन्न बतलाया है। उनके छन्दोऽनुशासन से प्राकृत छन्दों पर प्रकाश पड़ता है। हेमचन्द्र ने अपभ्रंश के कुछ गीति पद्यों का उदाहरण दिया है। वे बहुत कुछ 'हाल' रचित पद्यों के समान ही है। एक युवती याचना करती है कि उसका प्रेमी उसके पास लौटा लाया जाय, अग्नि घर को चाहे भस्मसात करदे, पर मनुष्यों को अग्नि तो अवश्य ही चाहिये। एक अन्य स्त्री को प्रसन्नता है कि उसका पति वीरता-पूर्वक युद्ध भूमि में मारा गया, यदि वह अपमानित होकर लौटता तो पत्नी के लिए लज्जा की बात होती[1]। व्यास एवं अन्य महर्षियों के वचनों द्वारा माता का आदर करने के लिए बड़ी अच्छी तरह से उपदेश दिया गया है। नम्रतापूर्वक भक्ति के साथ माता के चरणों पर गिरने को वे गङ्गा के पवित्र जल में स्नान करने के तुल्य मानते हैं।

यद्यपि संस्कृत साहित्य की दृष्टि से छन्दोऽनुशासन के रूप में आचार्य हेमचन्द्र की देन विशेष प्रतीत नहीं होती, फिर भी प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषा की दृष्टि से उनकी देन उल्लेखनीय है। संस्कृत-साहित्य की दृष्टि से भी आचार्य हेमचन्द्र एक बड़े संग्राहक कहे जा सकते हैं। श्री एच.डी. वेलनकर द्वारा सम्पादित, भारतीय विद्या-भवन द्वारा प्रकाशित, 'छन्दोऽनुशासन' की भूमिका में मुनि-जिनविणयजी ने वाङ्गमय 'छन्दोऽनुशासन' का उचित एवं सार्थक मूल्याङ्कन किया है। वे लिखते हैं, 'संस्कृत में आज तक जितने भी छन्दो रचना विषयक ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं उन सबमें कलि-काल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र विरचित छन्दोऽनुशासन नामक ग्रन्थ सर्वश्रेष्ठ है, ऐसा कथन करने में कोई अत्युक्ति नहीं होगी। शब्दानुशासन; काव्यानुशासन, छन्दोऽनुशासन, लिङ्गानुशासन–ये चार अनुशासन तथा दो द्वयाश्रय काव्य

---

१ 'भल्ला हुआ जु मारिआ वहिणी म्हारा कन्तु। लज्जेणं तुवयं सिअहुं जइ भग्गा घरु एं तु'॥

मिलाकर सम्पूर्ण लक्षणा एवं साहित्य-विद्या का क्षेत्र पूर्ण हो जाता है।

हेमचन्द्र के व्याकरण ग्रन्थों का महत्व- व्याकरण शास्त्र के इतिहास में हेमचन्द्र के ग्रन्थों का स्थान अद्वितीय एवं महत्वपूर्ण है। हेमचन्द्र का प्रभाव उत्तरकालीन जैन व्याकरणों पर विशेष पड़ा। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में तो इस व्याकरण के पठन-पाठन की व्यवस्था भी रही है। उनके शब्दानुशासन पर अनेक टीका-टिप्पणी की गयी है। हेम व्याकरण के आधार पर भी अनेक ग्रन्थ रचे गये हैं। आज भी श्वेताम्बर सम्प्रदाय के कई आचार्य हेम के आधार पर व्याकरण ग्रन्थ लिख रहे हैं। डा० वेलनकर ने अपने ग्रन्थ में ८-१० व्याख्याकारों के नाम दिये हैं। यथा; १, लघुन्यास – रामचन्द्र गणी, २, न्यासोद्धार – तनकप्रभ; ३, हेमलघुवृति– काकल कायस्थ; ४, हेमदुर्गपद प्रबोध- ज्ञानविमल शिष्य वल्लभ; ५, बृहद्वृत्ति अवचूरि – अभयचन्द्र, ६, लघुवृत्ति अवचूरि – घनचन्द्र; ७, लघुवृत्ति ढूंढिका– मुनि शेखरसूरि, ८, बृहद् वृत्तिदीपिका–विद्याघर। इनके अतिरिक्त सौभाग्यसागर उदयसौभाग्य, जयानन्द, पुण्यसुन्दर, गुणरत्न, जिनप्रभ, हेमहंस अमरचन्द्र ने हेम व्याकरणों से सम्बद्ध ग्रन्थ लिखे हैं।

आचार्य हेमचन्द्र का व्याकरण उत्तर-कालीन समस्त व्याकरण ग्रन्थों में मौलिक सिद्ध हुआ है। हेमचन्द्र के बाद पाणिनीय व्याकरण का अध्ययन भी प्रक्रिया ग्रन्थों के आधार पर होने लगा औरअ तिशीघ्र सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रसिद्ध हो गया। १६ वीं शताब्दी के बाद अष्टाध्यायी क्रम से अध्ययन प्रायः लुप्त हो गया। हेमचन्द्र के परवर्ती वैयाकरणों पर दृष्टिपात करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। हेमचन्द्र के परवर्ती वैयाकरणों में सारस्वत व्याकरणकार बोपदेव आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। प्रक्रिया ग्रन्थों में भट्टो जी दीक्षित की 'सिद्धान्त कौमुदी' इतनी प्रसिद्ध हुई कि समस्त भारतवर्ष में 'सिद्धान्त-कौमुदी' के आधार पर ही व्याकरण का अध्ययन होने लगा।

व्याकरण-शास्त्र के इतिहास में आचार्य हेमचन्द्र का नाम सुवर्णाक्षरों से लिखा जाता है, क्योंकि वे संस्कृत शब्दानुशासन के अन्तिम रचयिता हैं। इनके साथ ही उत्तरभारत में संस्कृत के उत्कृष्ट मौलिक ग्रन्थों का रचनाकाल समाप्त हो जाता है। राजनीतिक उथल-पुथल में प्राचीन ग्रन्थों के रक्षार्थ उन पर टीका-टिप्पणी लिखने का क्रम बराबर प्रचलित रहा है। छोटे-छोटे व्याकरण भी रचे गये। अतएव संस्कृत व्याकरण ग्रन्थों में हेमचन्द्र के व्याकरण ग्रन्थों का महत्व अन्यतम है –

(१) जिस प्रकार व्याकरण शास्त्र में भगवान पाणिनि ने अपनी पर-

म्परा का निर्माण किया, उसी प्रकार १२ वीं शताब्दी में संस्कृत के अन्तिम महावैयाकरण आचार्य हेमचन्द्र ने संस्कृत व्याकरण परम्परा में हेम सम्प्रदाय बनाया। जिस प्रकार पाणिनि ने अन्तिम अध्याय में वैदिक शब्दों का अनुशासन किया है, उसी प्रकार हेमचन्द्र ने अष्टम् अध्याय में प्राकृत व्याकरण का निरूपण किया है जो अद्यावधि अपूर्व एवं अद्वितीय है ।

(२) अपभ्रंश का व्याकरण तो हेमचन्द्र की अपूर्व देन है । संस्कृत का 'क्षण' शब्द अर्थ-द्वयवाची है — समय तथा उत्सव । हेम ने उत्सव वाची क्षण में 'क्ष' के स्थान पर 'छ' का आदेश किया है तथा समयवाची में 'ख' का आदेश किया है । उनका यह अनुशासन उन्हें संस्कृत और प्राकृत दोनों ही भाषाओं के वैयाकरणों में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करता है ।

(३) हेमचन्द्र ने उदाहरणों के लिए अपभ्रंश के प्राचीन दोहों को रखा है । इससे प्राचीन साहित्य की प्रकृति और विशेषताओं का सहज में पता लग जाता है । साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि विभिन्न साहित्यिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के कारण भाषा में किस प्रकार परिवर्तन होते हैं ।

(४) हेमचन्द्र ही सबसे पहले ऐसे वैयाकरण हैं, जिन्होंने अपभ्रंश भाषा के सम्बन्ध में इतना विस्तृत अनुशासन उपस्थित किया है । लक्ष्यों में पूरे-पूरे दोहे दिये जाने से लुप्तप्रायः महत्वपूर्ण साहित्य के उदाहरण सुरक्षित रह सके हैं। भाषा की समस्त नवीन प्रवृत्तियों का नियमन, प्ररूपण, और विवेचन इनके अपभ्रंश व्याकरण में विद्यमान है । हेमचन्द्र ने अपने समय में विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित उपभाषा और विभाषाओं का संविधान भी उपस्थित किया है तथा अपभ्रंश को अमर बना दिया है । अपभ्रंश से ही हिन्दी के परसर्ग, धातुचिह्न, अव्यय, तद्धित, कृत् प्रत्ययों का निर्गमन हुआ है । उन्होंने अपने समय की प्रचलित भाषा को आधार मानकर अकार लोप का वैकल्पिक अनुशासन किया है । उदाहरणार्थ लपोऽख्ये ।१।४ से ज्ञात होता है कि हेम के समय में रण्णं और अरण्णं ये दोनों प्रयोग होते थे । दधि यत्र भी साधु प्रयोग था । त्रैयम्बक की मूल प्रकृति त्रियम्बक है । कानीन की वास्तविक मूल प्रकृति कनीना है, कन्या नहीं ।

(५) देशज शब्दों का पूरी तरह सङ्कलन देशी नाममाला में है ।

(६) आचार्य हेमचन्द्र की कृतियों में शब्द-विज्ञान, प्रकृति-प्रत्यय-विज्ञान वाक्य-विज्ञान आदि सभी भाषा-वैज्ञानिक तत्व उपलब्ध हैं । इनके व्याकरण में

प्राचीन और आधुनिक दोनों ही प्रकार की ध्वनियों की सम्यक् विवेचना की गयी है। हेम का प्राकृत शब्दानुशासन व्याकरण होने के साथ-साथ भाषा-विज्ञान भी है।

(७) आधुनिक आर्य-भाषाओं की प्रमुख प्रवृत्तियों का अस्तित्व भी हेम में वर्तमान है। संस्कृत-प्राकृत भाषाओं के व्याकरणों में सर्वाङ्गपूर्णता, वैज्ञानिकता की दृष्टि से हेमचन्द्र का स्थान अद्वितीय है। इनकी सद्भावनायें नवीन और तर्क-सङ्गत हैं।

—•—

अध्याय–४

अलङ्कार ग्रन्थ

हेमचन्द्र के अलङ्कार ग्रन्थ - 'काव्यानुशासन' का विवेचन

संस्कृत अलङ्कार ग्रन्थों की परम्परा में आचार्य हेमचन्द्र ने 'काव्यानुशासन' ग्रन्थ की रचना की। काव्यानुशासन की प्रामाणिक आवृत्ति 'काव्यमाला सिरीज' में प्रकाशित हुई है। महावीर जैन विद्यालय द्वारा भी सिरीज में 'काव्यानुशासन' प्रकाशित किया गया है, जिसमें डा० रसिकलाल पारीख की प्रस्तावना एवं आर० व्ही० आठवले की व्याख्या है।

'काव्यानुशासन' में राजा कुमारपाल का कहीं भी उल्लेख नहीं है। अतः यह निश्चित् है कि सिद्धराज जयसिंह के जीवनकाल में ही 'शब्दानुशासन' के पश्चात् 'काव्यानुशासन' की रचना हुई।

'काव्यानुशासन' के तीन प्रमुख भाग हैं–१. सूत्र (गद्य में), २, व्याख्या और ३, वृत्ति (सोदाहरण)। काव्यानुशासन में कुल सूत्र २०८ हैं। इन्हीं सूत्रों को 'काव्यानुशासन' कहा जाता है। सूत्रों की व्याख्या करने वाली व्याख्या अलङ्कारचूडामणि नाम प्रचलित है, और इस व्याख्या को अधिक स्पष्ट करने के लिए उदाहरणों के साथ विवेक नामक वृत्ति लिखी गयी। तीनों के कर्ता आचार्य हेमचन्द्र ही हैं। इस प्रकार सूत्र, अलङ्कारचूडामणि एवं विवेकवृत्ति तीनों ही काव्यानुशासन के विचार क्षेत्र में आते हैं। 'काव्यानुशासन' ८ अध्यायों में विभाजित है। प्रथम अध्याय में २५ सूत्र, द्वितीय अध्याय में ५९, तृतीय में १०,

चतुर्थ में ६, पञ्चम् अध्याय में ६, षष्ठ में ३१, सप्तम् में ५२, तथा अष्टम् अध्याय में १३ सूत्र विद्यमान हैं। इन २०८ सूत्रों में काव्यशास्त्र से सम्बन्ध रखने वाले सारे विषयों का प्रतिपादन बड़े सुन्दर रूप में किया गया है। ये सूत्र अलङ्कारचूड़ामणि में विस्तारित किये गये हैं। विवेक में और ज्यादा विस्तार किया गया है। अनुमान है कि अध्यायान्त में अलङ्कारचूड़ामणि नाम का उल्लेख होने से टीका को यह नाम बाद में दिया गया होगा।

अलङ्कारचूड़ामणि में कुल ८०७ उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं तथा विवेक में ८२५ उदाहरण प्रस्तुत हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण 'काव्यानुशासन' में १६३२ उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। 'अलङ्कारचूड़ामणि' एवं 'विवेक' में ५० कवियों के तथा ८१ ग्रन्थों के नामों का उल्लेख पाया जाता है। कहीं-कहीं ग्रन्थ-नाम तो हैं किन्तु उसके कर्ता के नाम का उल्लेख नहीं है। संस्कृत कवि एवं काव्य-शास्त्र के इतिहास का अध्ययन करने में यह जानकारी सहायक है।

प्रथम अध्याय – इस अध्याय में काव्य की परिभाषा, काव्य के हेतु, काव्य-प्रयोजन, आदि पर समुचित प्रकाश डाला गया है। प्रतिभा के सहायक व्युत्पत्ति और अभ्यास, शब्द तथा अर्थ का रहस्य, मुख्यार्थ, गौणार्थ, लक्ष्यार्थ तथा व्यङ्ग्यार्थ की तात्विक विवेचना की गयी है। पहले सूत्र में मङ्गल नमस्कार तदनन्तर दूसरे सूत्र में ग्रन्थ का उद्देश्य बतलाया गया है। तीसरे सूत्र में काव्य का प्रयोजन संक्षेप में बतलाया है। 'काव्यमानन्दाय यशसेकान्तातुल्य तयोपदेशायच' अर्थात् हेमचन्द्र के अनुसार काव्य के तीन प्रयोजन होते हैं-आनन्द यश एवं कान्तातुल्य उपदेश। चतुर्थ सूत्र में काव्य के कारण बताते हैं 'प्रतिभास्य हेतुः अलङ्कार चूड़ामणि में प्रतिभा की – 'नवनवोल्लेखशालिनी प्रज्ञा' – सुन्दर परिभाषा दी है, अर्थात् नयी-नयी कल्पना करने वाली प्रज्ञा ही काव्यनिर्मिति का प्रधान कारण है। पञ्चम् तथा षष्ठ सूत्र में प्रतिभा की जैन परिभाषा दी है। सप्तम् सूत्र में अध्ययन एवं अभ्यास से प्रतिभा को सफल करने के लिए कहा गया है। यथा 'व्युत्पत्यभ्यासाभ्यां संस्कार्या' अष्टम् सूत्र में अध्ययन के विषय संक्षेप में बताये हैं, जिनका विस्तार 'अलङ्कार-चूड़ामणि' में तथा और अधिक विस्तार 'विवेक' में किया गया है। नवम् तथा दशम् सूत्र में अभ्यास के विषय में वर्णन है, जो 'अलङ्कारचूड़ामणि' में संक्षेप में तथा 'विवेक' में पूर्णरूपेण वर्णित है। ग्याहरवें सूत्र में काव्य के स्वरूप का मम्मट-सदृश वर्णन है। यथा 'अदोषौ सगुणौ सालङ्कारौ च शब्दार्थौ काव्यम्' ॥११॥ हेमचन्द्र की काव्य की परिभाषा में अलङ्कार समाविष्ट हैं।

'च' शब्द से अपवाद स्वरूप अलङ्कार विहीन भी काव्य हो सकता है, यह ध्वनित किया गया है। आगे के सूत्रों में परिभाषा में आये हुए शब्द, अर्थ, दोष, गुण, अलङ्कार इत्यादि स्पष्ट किये गये हैं। १२ वाँ सूत्र गुण-दोषों की समुचित परिभाषा प्रस्तुत करता है– यथा 'रसस्योत्कर्षापकर्ष हेतु गुणदौषौ भक्त्या शब्दार्थयो: ।।१२।। तेरहवें सूत्र में अलङ्कार का सामान्य स्वरूप तथा १४ वें सूत्र में रस में उसकी उपयोगिता का वर्णन है। 'अङ्गाश्रिता: अलङ्कारा:' ।।१३।। 'तत्परत्वे काले ग्रहत्यागयोर्नाति निर्वाह् प्यङ्गत्वे रसोपकारिण: ।।१४।। सूत्र १५ से २५ तक शब्दार्थ के सम्बन्ध में शास्त्रीय विवेचन है। अन्तिम २५ वें सूत्र में 'रसादिश्च' कहकर व्यङ्ग्यार्थ में रस का अन्तर्भाव किया गया है। अभिधा, लक्षणा, व्यञ्जना तथा व्यङ्ग्यार्थ का पूर्व सूत्रों में ही वर्णन किया जा चुका है।

द्वितीय अध्याय में रस, स्थायी भाव, व्यभिचारि भाव तथा सात्विक भावों का वर्णन किया गया है। इसमें काव्य की श्रेणियाँ उत्तम, मध्यम, अधम बतलायी हैं। पहले ५५ सूत्रों में रस, भाव, रसाभास, भावाभास, वर्णित है तथा अन्तिम तीन सूत्रों में काव्य की श्रेणियाँ वर्णित हैं।

इस प्रकार दूसरे अध्याय में आचार्य हेमचन्द्र ने रस के विषय में साङ्गोपाङ्ग चर्चा की है। स्थायी भाव, व्यभिचारि भाव, का विवेचन गहरा एवं शास्त्रीय है। आचार्य हेमचन्द्र रस-सिद्धाँत के अनुयायी हैं। उन्होंने काव्य के गुण, दोष, अलङ्कार, का अस्तित्व रस की कसौटी पर ही रखा है। रस के जो अपकर्षक हैं, वे दोष हैं, जो उत्कर्षक हैं, वे गुण और जो रस के अंग हैं अर्थात रसाश्रित, वे अलङ्कार हैं। अलङ्कार यदि रसोपकारक हैं तब ही उनकी काव्य में गणना हो सकती है, यदि रस-बाधक अथवा उदासीन हों तो उन्हें दोष ही समझना चाहिये अथवा उनकी गणना चित्र-काव्य में करनी चाहिये। हेमचन्द्र का रस विवरण बहुत ही सोपपत्तिक है। उन्होंने रस-तत्व की स्वतन्त्र रूप से विवेचना की है। अनुभाव सामाजिक को रस का अनुभव देते हैं। शास्त्रकार भरत के अनुरूप हेमचन्द्र भी भाव की यही परिभाषा देते हैं। काव्यानुशासन के अनुसार व्यभिचारि भाव स्वधर्म स्थायी भावों को अर्पण करते हैं। हेमचन्द्र के अनुसार व्यभिचारि भाव निर्बल सेवकों के समान परावलम्बी होते हैं। वे अस्थिर होते हैं। स्वामी की इच्छानुसार ये भाव बदलते हैं तथा स्थायी भावों में इनका पर्यवसान होता है। हेमचन्द्र तृष्णाक्षय को ही शम कहते हैं। "तृष्णाक्षय: शम:" तथा तष्णाक्षयरूप शम ही शान्त रस का स्थायी भाव है।

तृतीय अध्याय में शब्द, वाक्य, अर्थ तथा रस के दोषों पर प्रकाश डाला

गया है। प्रथम दस सूत्रों में काव्य-दोषों का वर्णन है। जिसका अलङ्कारचूड़ामणि एवं विवेक में विस्तार किया गया है। विवेक में राजशेखर के काव्यमीमाँसा के बहुत से श्लोक उद्धृत हैं, जिसमें भारत के देश, काल, भूगोल, मौसम इत्यादि का वर्णन है। कदाचित राजशेखर ने भी पुराणोक्त भुवनकोश से अथवा तत्सम किसी ग्रन्थ से उक्त श्लोक लिये हों, इसलिए राजशेखर के नाम का उल्लेख नहीं किया है।

चतुर्थ अध्याय काव्य-गुणों से सम्बन्धित है। पहले ही सूत्र में तीन प्रधान गुण—ओज, माधुर्य, एवं प्रसाद पर प्रकाश डाला गया है। शेष सूत्रों में इन गुणों के सहायक वर्णाक्षरों को बताया गया है। उदाहरणार्थ—'माधुर्योजः प्रसादास्त्रयो गुणाः"[1] कहकर काव्य के गुणों की संख्या प्रस्थापित की है। हेमचन्द्र के मतानुसार काव्य के तीन ही गुण होते हैं, पाँच अथवा दस नहीं। फिर भी 'विकास हेतुः प्रसादः सर्वत्रः' कहकर प्रसाद गुण की सर्वत्र आवश्यकता बतलायी है। अलङ्कार चूड़ामणि में भी श्री मम्मट का अनुसरण करते हुए उन्होंने गुण-संख्या तीन ही बतलायी हैं। उक्त सूत्र पर विवेक अवश्य देखना चाहिये। विवेक में भरत, मंगल, वामन, दण्डिन् के मतों पर चर्चा की गयी है।

पञ्चम् अध्याय – इस अध्याय में छः शब्दालङ्कारों का वर्णन है। अनुप्रास, यमक, चित्र, श्लेष, वक्रोक्ति, पुनरूक्तभास, शब्दालङ्कार वर्णित हैं। प्रथम सूत्र में ही अनुप्रास की कितनी सुन्दर एवं संक्षिप्त परिभाषा दी है—"व्यंजनस्यावृत्ति रनुप्रासः[1]। फिर दूसरे सूत्र में लाटानुप्रास की परिभाषा दी हैं। ३–४ सूत्रों में यमक के विषय में वर्णन है। अलङ्कार-चूड़ामणि में यमक के भेद बतलाये गये हैं। पञ्चम सूत्र में चित्र तथा षष्ठ सूत्र में श्लेष और सप्तम सूत्र में श्लेष के प्रकारों का वर्णन है, ८ वें में वक्रोक्ति, ९ वें सूत्र में पुनरुक्तभास अलङ्कार का वर्णन है। आनन्दवर्धन के 'देवीशतक' से शब्दालङ्कारों के बहुत से उदाहरण लिये गये हैं। रूद्रट के 'काव्यालङ्कार' से भी बहुत से उदाहरण उद्धृत हैं। विवेक वृत्ति में ७ वें सूत्र में पाठधर्मत्व की व्याख्या करते हुए भरत के नाट्य शास्त्र एवं अभिनवगुप्त की टीका उद्धृत है[1]।

षष्ठ अध्याय में २९ अर्थालङ्कारों का वर्णन है। इस वर्णन में छोटे अथवा कम महत्व के अलङ्कारों को महत्वपूर्ण अलङ्कारों में समाविष्ट करा लिया गया है। रस तथा भाव से सम्बन्धित अलङ्कार जैसे रसवत् प्रेयस, ऊर्जस्वि, समाहित अलङ्कारों को छोड़ दिया है। उन्होंने स्वभावोक्ति के लिये जाति तथा अप्रस्तुत प्रशंसा के लिए अन्योक्ति शब्द प्रयुक्त किया है।

१– नाट्यशास्त्र—अध्याय २२; पृष्ठ=१४६–२३१ गा० ओ० सी०

निम्न २९ अलङ्कार ३१ सूत्रों में चर्चित है :-
१. उपमा, २. उत्प्रेक्षा. ३. रूपक, ४. निदशना, ५. दीपक ६. अन्योक्ति, ७. पर्यायोक्ति, ८. अतिशयोक्ति, ९. आक्षेप, १०. विरोध, ११. सहोक्ति, १२. समासोक्ति, १३. जाति, १४. व्याजस्तुति, १५. श्लेष, १६. व्यतिरेक, १७. अर्थान्तरन्यास, १८. सन्देह १९. अपह्नुति, २०. परिवृत्ति, २१. अनुमान, २२. स्मृति, २३. भ्रान्ति, २४. विषम, २५. सम, २६. समुच्चय, २७. परिसङ्ख्या, २८. कारणमाला, २९. सङ्कर,

'हृद्यं साधर्म्यमुपमा' कहकर उपमा की परिभाषा में हेमचन्द्र ने अलङ्कार के सौन्दर्य पक्ष पर विशेष जोर दिया है। इस प्रकार छः अध्यायों में १४३ सूत्रों में काव्य-शास्त्र के सम्पूर्ण तन्त्र का वर्णन किया गया है। विवेक में सरस्वती–कण्ठाभरण के रचियता भोज एवं अन्य आलङ्कारिकों द्वारा निर्दिष्ट सभी अलङ्कारों की चर्चा की गयी है तथा यह बताया गया है कि कुछ अलङ्कार 'काव्यानुशासन' में निर्दिष्ट अलङ्कारों में समाविष्ट होते हैं। तथा कुछ अलङ्कार की कोटिमें ही नहीं आतेहैं[1]।

सप्तम अध्याय में नायक एवं नायिका भेद-प्रभेदों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। प्रथम सूत्र में ही नायक की परिभाषा दी है—'समग्रगुणः कथा-व्यापी नायकः'। सूत्र २ से १० तक नायक के गुण बतलाये हैं। सूत्र ११ में नायक के ४ प्रकार तथा सूत्र १२–१९ तक चारों प्रकारों का वर्णन है। २० वें सूत्र में प्रतिनायक की परिभाषा दी है।

"व्यसनी पापकृतलुब्धः स्तब्धो धीरोद्धतः प्रतिनायकः"। सूत्र २१ से २९ तक विभिन्न प्रकार की नायिकाओं का वर्णन है। ३० वें सूत्र में नायिकाओं की ८ अवस्थाओं का वर्णन है– (१) स्वाधीनपतिका (२) प्रोषितभर्तृका (३) खण्डिता (४) कलहान्तरिता (५)वासकसज्जा (६) विरहोत्कण्ठिता (७) विप्रलब्धा तथा (८) अभिसारिका। इनमें से अन्तिम तीन परकीया नायिका का से सम्बन्ध है। "अन्यत्रयवस्था परस्त्री"। ३१–३२ वां सूत्र प्रतिनायिका से सम्बन्धित है। शेष सूत्र ३३ से ५२ तक स्त्रियों के गुण तथा स्वभाव से सम्बन्धित हैं। यह अध्याय मुख्यतः धनञ्जय के 'दशरूपक' तथा भरत के 'नाट्य शास्त्र' तथा अभिनव गुप्ताचार्य की टीका पर आधारित है।

अष्टम अध्याय में काव्य को प्रेक्ष्य तथा श्रव्य दो भागों में विभाजित किया है। आचार्य हेमचन्द्र गद्य-पद्य के आधार पर काव्य का विभाजन नहीं करते। वे संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश के महाकाव्यों के अतिरिक्त ग्राम्य भाषा के

१ –काव्यानुशासन पृष्ठ ३३९–४०५

महाकाव्य का भी उल्लेख करते हैं। इस प्रकार के एक भीम काव्य का नाम भी उन्होंने दिया है। इस ग्राम्य भाषा को उन्होंने ग्राम्य अपभ्रंश कहा है। निश्चय ही यह अपभ्रंशेतर नयी भाषा का काव्य रहा होगा।

काव्य को प्रेक्ष्य तथा श्रव्य दो भागों में विभाजित करने के पश्चात् आचार्य प्रेक्ष्य को फिर पाठ्य तथा गेय, दो भागों में विभाजित कर उनके और कई भाग बतलाते हैं। श्रव्य के मुख्य विभाग अर्थात् महाकाव्य, आख्यायिका, कथा, चम्पू, और अनिर्बद्धा। काव्यानुशासनानुसार काव्य संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और ग्राम्यापभ्रंश में लिखा जा सकता है। कथा के प्रकारों में (१) आख्यान (२) निदर्शन (३) प्रवल्लिका (४) मन्थल्लिका (५) मणिकुल्या (६) परिकथा (७) खण्ड कथा (८) सकल कथा (९) उपकथा तथा (१०) बृहत्कथा वर्णित हैं। हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन में अपभ्रंश और ग्राम्य भाषा में रचे हुए महाकाव्यों में सर्गों के लिए क्रमशः आश्वास सन्धि और अवस्कन्ध शब्दों का प्रयोग किया है, किन्तु स्वयं उन्होंने अपने द्वयाश्रय को आश्वासों में नहीं, प्रत्युत सर्गों में ही विभक्त किया है।

प्रथम सूत्र में 'काव्यं प्रेक्ष्यं श्रव्यं च' काव्य के दो भाग करके अलङ्कारचूड़ामणि में भट्टतोत के आधार पर कवि-कर्म की जानकारी दी है। द्वितीय सूत्र 'प्रेक्ष्यं पाठ्यं गेयं च' प्रेक्ष्य को दो भागों में विभाजित करता है। तृतीय सूत्र में पाठ्य के १२ भाग गिनाये हैं–(१) नाटक (२) प्रकरण (३) नाटिका (४) समवकार (५) ईहामृग (६) डिम (७) व्यायोग (८) उत्सृष्टिकाङ्क (९) प्रहसन (१०) भाण (११) वीथी (१२) सट्टक। अलङ्कारचूड़ामणि में भरत के 'नाट्यशास्त्र' के १२ वें अध्याय के उद्धरण हैं तथा 'विवेक' में अभिनव गुप्त की टीका उद्घृत है। 'विवेक' में पाठ्य के १२ विभागों के अतिरिक्त टोटक, कोहल द्वारा कथित तथा अन्य पाठ्यों का विवरण दिया है।

चतुर्थ सूत्र में गेय के ११ भाग बतलाये हैं–(१) डोम्बिका (२) भाण (३) प्रस्थान (४) शिङ्गक (५) भाणिक (६) प्रेरण (७) रामक्रीड (८) हल्लीसक (९) रासक (१०) श्री गदित और (११) रागकाव्य। इनका वर्णन अलङ्कारचूड़ामणि में किसी अज्ञात ग्रन्थ के आधार पर किया गया है। उसमें दूसरे गेय प्रकार जैसे सम्पा, चलित, द्विपदी आदि का भी उल्लेख है। ब्रह्मा, भरत, कोहल का अध्ययन करने के लिए निर्देश है, जिसमें अधिक जानकारी उपलब्ध है। "प्रपञ्चस्तु ब्रह्मभरतकोहलादिशास्त्रेभ्योऽवगन्तव्यः'।

पञ्चम सूत्र में श्रव्य के पाँच प्रकार बतलाये हैं। छठे सूत्र में महाकाव्य

की परिभाषा है। अलङ्कारचूड़ामणि में पञ्च सन्धियों का वर्णन है जो नाटक तथा काव्य दोनों के लिए समान रूप से आवश्यक हैं। उसमें सन्धियों को समझाने के लिए भरत श्लोक उद्धृत किये हैं। 'विवेक' में नाटकों में से उद्धरण उद्धृत हैं। इसमें दण्डिन् के काव्यादर्श का प्रचुर उपयोग किया गया है। (दण्डिन् काव्यादर्श–पृष्ठ ११–३६)। 'अलङ्कारचूड़ामणि' में अपभ्रंश कविता का उदाहरण 'अब्धिमन्थन' काव्य से तथा ग्राम्य कविता का उदाहरण 'भीम' काव्य से दिया है। ये दोनों काव्य अभी अज्ञात हैं। 'हरि प्रबोध' काव्य का विभाजन आश्वासक में किया गया। यह 'हरि प्रबोध' भी अभी तक अनुपलब्ध है। सप्तम तथा अष्टम सूत्र में क्रमशः आख्यायिका और कथा का वर्णन है।

बाणभट्ट की तरह हेमचन्द्र भी कथा और आख्यायिका का भेद स्वीकार करते हैं; परन्तु उनकी मान्यता में अन्तर है। बाणभट्ट के मत में कल्पित कहानी कथा है और ऐतिहासिक आधार पर चलने वाली कथा आख्यायिका है; जैसे 'कादम्बरी' और 'हर्ष-चरित'। हेमचन्द्र के अनुसार आख्यायिका वह है जो संस्कृत गद्य में हो, जिसका वृत्त ख्यात हो, नायक स्वयं वक्ता हो और जो उच्छ्वासों में लिखी गयी हो। कथा किसी भी भाषा में लिखी जा सकती है। उसके लिए गद्य-पद्य का बन्धन नहीं है। इस प्रकार हेमचन्द्र ने बाणभट्ट के गद्य के बन्धन को हटाकर कथा को इतनी व्यापकता दे दी कि उसमें सभी कथा-काव्य समा गये। गद्य-कथा का उदाहरण कादम्बरी है, और पद्य-कथा का 'लीलावई कहा'। अपभ्रंश के 'चरित्र' काव्य भी इसी के अन्तर्गत आते हैं। हेमचन्द्र को 'गद्य' का नियम इसलिये हटाना पड़ा क्योंकि अपभ्रंश में गद्य का अभाव था। कथा के सिवाय उन्होंने और भी उपभेद किये हैं। 'अलङ्कार चूड़ामणि' में भी पद्यमयी कथा के रूप में लीलावती का उल्लेख है। 'विवेक' में कथा-प्रकारों में ग्रन्थों के जो नाम दिये हैं उनमें से अधिकांश अभी तक अज्ञात हैं, जैसे,–गोविन्द, चेटका, गोरोचन, अनङ्गवती, मत्स्यहसित, शूद्रक, इन्दुमती, चित्रलेखा आदि। कथा के उपभेदों में आख्यान, निदर्शन, प्रवल्लिका, मतल्लिका, मणिकुल्या, परिकथा, खण्डकथा, सकलकथा और उपकथा आदि वर्णित हैं। आख्यान प्रबन्ध-काव्य के बीच आने वाला वह भाग है जो गेय और अभिनेय होता है। दूसरे पात्र के बोध के लिए इसका प्रयोग होता है–जैसे नलोपाख्यान। पशु-पक्षियों के माध्यम से अच्छे-बुरे का बोध देने वाली कथा का निदर्शन है–जैसे 'पञ्चतन्त्र'। 'प्रवल्लिका' में एक विषय पर विवाद होता है। भूतभाषा और महाराष्ट्री में लिखी गयी लघुकथा 'मतल्लिका' है। इसमें पुरोहित, अमात्य और

तापस का मजाक उड़ाया गया है। 'मणिकुल्या' वस्तु का उद्‌घाटन करती है। पुरुषार्थ-सिद्धि के लिए कही गयी वर्णनात्मक कथा 'परिकथा' है। इतिवृत्त के खण्ड पर आधारित कथा 'खण्ड कथा' है। समस्त फलवाली कथा 'सकल कथा' है और एक कथा पर चलने वाली कथा 'उपकथा' है। रासक के उन्होंने तीन भेद किये हैं–कोमल, उद्धत तथा मिश्र[1]।

नवाँ सूत्र चम्पू काव्य की परिभाषा देता है। तथा १० वाँ सूत्र अनिर्बद्ध मुक्तक की परिभाषा देता है। ११ वें सूत्र के अनुसार एक कविता को मुक्तक, दो कविताओं को सन्दानितक, तीन कविताओं को विशेषक, तथा चार कविताओं के पुञ्ज को कलापक कहते हैं। १२ वें सूत्र के अनुसार ५ से १४ कविताओं के पुञ्ज को कुलक कहते हैं। १३ वें सूत्र में कोश की परिभाषा दी गयी है। "स्वपरकृत सूक्ति समुच्चयःकोशः"। अर्थात सुन्दर श्लोकों का सङ्ग्रह (स्वयं का अथवा दूसरों का) कोश कहलाता है। अलङ्कारचूड़ामणि में मुक्तक के उदाहरणस्वरूप अमरूक का 'अमरूशतक' उदघृत किया है। कोश के उदाहरण स्वरूप 'सप्तशतक' (हाल) सन्घात के उदाहरणस्वरूप 'वृन्दावन मेघदूत' तथा संहिता के उदाहरणस्वरूप 'यदुवंश दिलीपवंश' उद्‌घृत किया है।

हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन में निम्नांकित ग्रन्थों एवं ग्रन्थकारों का उल्लेख किया है। ग्रन्थों के नाम–अवन्तिसुन्दरी, उषाहरण, पञ्चशिखशूद्रकथा, भामह विवरण, रावण-विजय, हरविलास, हरिप्रबोध, हृदय दपर्ण इत्यादि।

ग्रन्थकारों के नाम (१) दण्डी, (२) भट्टतोत, (३) भट्टनायक, (४) भोजराज, (५) मम्मट, (६) मंगल, (७) आयुराज, (८) यायावरीय, (९) वामन, (१०) शाक्याचार्य, (११) राहुल, (१२) राजशेखर आदि। प्रो. रसिकलाल पारीख द्वारा सम्पादित काव्यानुशासन के अन्त में २५४ ग्रन्थ एवं ग्रन्थकारों के नाम दिये हैं।

'काव्यानुशासन' का मूल्याङ्कन –

आचार्य हेमचन्द्र का काव्यानुशासन प्रायः सङ्ग्रह ग्रन्थ है। उन्होंने अपने ग्रन्थ में राजशेखर (काव्यामीमांसा), मम्मट (काव्य प्रकाश), आनन्दवर्धन (ध्वन्यालोक), अभिनव गुप्त (लोचन) से सामग्री पर्याप्त मात्रा में ग्रहण की है। मौलिकता के विषय में हेमचन्द्र का अपना स्वतन्त्र मत है। उन्होंने अपनी प्रमाण-मीमांसा की टीका में प्रारम्भ में ही मौलिकता के विषय में स्पष्ट कहा है। "विधाएँ अनादि होती हैं, वे संक्षेप अथवा विस्तार की दृष्टि से नयी मानी

१– अपभ्रंश भाषा और साहित्य–डा० देवेन्द्रकुमार जैन–पृष्ठ ३१७

जाती हैं तथा उस दृष्टि से तत्तद ग्रन्थकारों की कृति मानी जाती हैं"। आचार्य हेमचन्द्र द्वारा प्रस्तुत मौलिकता की इस परिभाषा से यह अनुमान होता है कि वे अपने समय में अनेक ग्रन्थों के कर्तृत्व के विषय में आलोचना के शिकार जरूर बने होंगे। उसके निराकरणार्थ ही उन्हें ऐसा स्पष्टीकरण देना पड़ा। हेमचन्द्र के मत से कोई भी ग्रन्थकार बिलकुल नयी चीज नहीं लिखता। उस मूल विषय का विकास एवं विकास की शैली नयी होती है। हेमचन्द्र की मौलिकता की यह कसौटी यदि उन्हीं पर लागू की जाय तो उनकी मौलिकता शत प्रतिशत सिद्ध होती है[1]।

काव्यानुशासन की रचना करते समय मम्मट के 'काव्य प्रकाश' का हेमचन्द्र ने विशेष उपयोग किया है। 'काव्यानुशासन' में मम्मट एवं उनके 'काव्य प्रकाश' का उल्लेख कई बार आता है। फिर भी 'काव्यानुशासन' में हेमचन्द्र की मौलिकता अक्षुण्ण है। यद्यपि 'काव्य प्रकाश' के साथ 'काव्यानुशासन' का बहुत साम्य है किन्तु कहीं-कहीं ही नहीं अपितु पर्याप्त स्थानों पर हेमचन्द्राचार्य ने मम्मट का विरोध भी किया है।

सर्व प्रथम 'काव्य का प्रयोजन' पर चर्चा करते हुए मम्मट ने काव्य के छः प्रयोजन बताये हैं– (१) यश प्राप्ति (२) अर्थ लाभ (३) व्यवहार ज्ञान (४) अशुभ निवारण (५) तात्कालिक आनन्द और (६) कान्तातुल्य उपदेश। आचार्य हेमचन्द्र ने इसका विरोध किया है। उनके मतानुसार आनन्द, यश एवं कान्तातुल्य उपदेश ही काव्य के प्रयोजन हो सकते हैं। आचार्य हेमचन्द्र ने यहाँ मम्मट द्वारा बताये अन्य तीन प्रयोजन छोड़ दिये हैं। अर्थलाभ, व्यवहार ज्ञान, एवं अनिष्ट निवृत्ति हेमचन्द्र के मतानुसार काव्य के प्रयोजन नहीं हैं।

हेमचन्द्र के अनुसार काव्य का प्रधान कारण केवल प्रतिभा है। मम्मट के अनुसार काव्योत्पत्ति में प्रधान तीन कारण होते हैं– (१) शक्ति या प्रतिभा (२) निपुणता या व्युत्पत्ति तथा (३) आव्याज्ञशिक्षयाभ्यास अर्थात् किसी श्रेष्ठ कवि के पास शिक्षा पाना। आचार्य हेमचन्द्र के मत से काव्यनिर्मिति का प्रधान हेतु प्रतिभा ही है। यहाँ भी उन्होंने मत भिन्नता दिखलाकर मम्मट द्वारा निर्देशित शेष कारण गौण बतलाये हैं। कारणों में प्रधान तथा गौण का अन्तर स्पष्ट करना महत्वपूर्ण है। हेमचन्द्र के अनुसार प्रतिभा सदैव नैसर्गिकी होती

१– "अनादय एवैता विद्याः संक्षेप बिस्तार विवक्षया नवनवीभवन्ति तत्तत्कर्तृका श्योच्यन्ते"–प्रमाणमीमांसा–हेमचन्द्र; पृष्ठ १–२

है। व्युत्पत्ति के विषय में हेमचन्द्र कहते हैं कि लोक-शास्त्र तथा काव्य में प्रावीण्य प्राप्त करना ही व्युत्पत्ति है– "लोकशास्त्र काव्येषु निपुणता व्युत्पत्तिः"।

काव्य की परिभाषा में हेमचन्द्र का मत मम्मट के अनुरूप दिखायी देता है। किन्तु उसमें भी कुछ सूक्ष्म भेद हैं– हेमचन्द्र ने अपनी परिभाषा में अलङ्कारों को समाविष्ट कर लिया है। 'च' अक्षर से अपवाद सूचित किया गया है। कभी-कभी बिना अलङ्कार के भी काव्य हो सकता है। किन्तु साधारण तौर पर अलङ्कार काव्य के लिए अत्यावश्यक हैं।

आचार्य हेमचन्द्र और मम्मट की काव्य-परिभाषा में और भी सूक्ष्म अन्तर यह है कि हेमचन्द्र ने गुण, दोष, अलङ्कार का अस्तित्व रस की कसौटी पर ही रखा है। मम्मट ने ऐसा नहीं किया है। हेमचन्द्र सत्यतः रस-सिद्धान्त के अनुयायी प्रतीत होते हैं। इसीलिये वे अलङ्कारों को रसाश्रित, रस के अंग मानते हैं। उनके मत के अनुसार जो रस की हानि करने वाले अर्थात् रसापकर्षक हैं, वे दोष होते हैं। तथा जो रस को वृद्धिगत करने वाले अर्थात् रसोत्कर्षक हैं, वे गुण कहलाते हैं। 'काव्य प्रकाशकार' कहीं भी यह कसौटी नहीं अपनाते हैं। इसके विपरीत मम्मट तो ध्वनि-मत के अनुयायी दिखायी देते हैं। उन्होंने 'काव्य प्रकाश' में ध्वनि विवरण में ध्वनि के एक प्रकार के रूप में (असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य) रस का विवेचन किया है। सम्भवतः इसलिये मम्मटाचार्य ध्वनि प्रस्थापन परमाचार्य कहे जाते है। हेमचन्द्र ने 'काव्यानुशासन' के द्वितीय अध्याय में ही स्वतन्त्र रूप से रस-चर्चा की है तथा रस-विवरण के समय अभिनव गुप्ताचार्य की अभिनवभारती टीका ज्यों कि त्यों उदघृत की है।

(४) मम्मट एवं मुकुलभट्ट के से 'लक्षणा' रूढ़ि अथवा प्रयोजन पर आधारित होती है, किन्तु हेमचन्द्र इसके विरोधी हैं। उनके मत से लक्षणा केवल प्रयोजन पर आधारित होती है। 'काव्य प्रकाश' में काव्य के प्रकार उत्तम, मध्यम, अधमादि से विषय प्रथम अध्याय में ही वर्णित हैं जिससे काव्य-शास्त्र के प्राथमिक छात्रों को एकदम कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। 'काव्यानुशासन' में रस चर्चा एवं शेष चर्चा के अन्त में काव्य के प्रकारों की चर्चा की है जिससे समझने में सुलभता, सुगमता होती है। काव्य के १० गुणों को हेमचन्द्र तथा मम्भट ने तीन गुणों के अन्तर्गत (ओज, प्रसाद, माधुर्य) दिखाया है तथा शेष दोषाभाव बतलाया है।

मम्मट ने 'काव्य प्रकाश' में ६१ अलङ्कारों का वर्णन किया है किन्तु हेमचन्द्र ने केवल २९ अलङ्कारों से ६१ अलङ्कारों का काम चलाया

है। सूक्ष्म भेद एवं कम महत्व के अलङ्कारों को उन्होंने तत्सदृश महत्वपूर्ण अलङ्कारों में मिला दिया है, उदाहरणार्थ संङकर के अन्तर्गत संसृष्टि, दीपक के अन्तर्गत तुल्ययोगिता। हैमचन्द्र के परबृत्ति अलङ्कार में मम्मट के पर्याय एवं परिवृत्ति दोनों समा जाते हैं। उपमा के अन्तर्गत अनन्वय और उपमेयापमा दोनों समा जाते है। मम्मट 'पुँस्त्वादपि प्रविचलेत्' को श्लेषमूला प्रस्तुत प्रशंसा के उदाहरण के रूप में बताते हैं, किन्तु हेमचन्द्र इसे ही शब्द-शक्ति मूल-ध्वनि के उदाहरण के रूप में देते हैं।

हेमचन्द्र की उपमा की परिभाषा मम्मट से भिन्न है। उदाहरणार्थ– "साधर्म्यमुपमा भेदे"–मम्मट तथा "हृद्य साधर्म्यमुपमा"–हेमचन्द्र। इसमें मम्मट केवल साधर्म्य पर जोर देते हैं। उनमें सौन्दर्याभिरुचि कम प्रतीत होती है। हेमचन्द्र की परिभाषा में सौन्दर्याङ्ग–हृद्य पर विशेष जोर दिया गया है। साधर्म्य आह्लादजनक होगा तब ही वह उपमा अलङ्कार होगा। मम्मट की परिभाषा में ऐसी बात नहीं हैं।

मम्मट का 'काव्यप्रकाश' विस्तृत है, सुव्यवस्थित है, किन्तु सुगम नहीं है। उसके विषय में निम्नाँकित उक्ति प्रसिद्ध है–'काव्यप्रकाशस्य कृता गृहे गृहे। टीकास्तथाप्येष तथैव दुर्गमः' ॥ अगणित टीकाएँ होने पर भी 'काव्य प्रकाश' दुर्गम ही रह जाता है। किंबहुना दुर्गम है इसीलिए सुगम करने के लिए अगणित टीकायें लिखी गयीं। 'काव्यानुशासन' में इस दुर्गमता को 'अलङ्कारचूडामणि' एवं 'विवेक' के द्वारा सुगमता में परिणत किया गया है।

'काव्यप्रकाश' में केवल श्रव्य काव्य के तन्त्र के विषय में– साङ्गोपाङ्ग चर्चा है; किन्तु दृश्य काव्य के विषय में कुछ भी नहीं कहा गया है। 'काव्यानुशासन' में नाटक के विषय में भी साङ्गोपाङ्ग चर्चा होने के कारण निःसन्देह 'काव्यानुशासन' का महत्व 'काव्यप्रकाश' से नितान्त अधिक है। इस सन्दर्भ में 'काव्यानुशासन' की तुलना पण्डित विश्वनाथ के 'साहित्य दर्पण' मात्र से की जा सकती है। आचार्य हेमचन्द्र और विश्वनाथ दोनों के अनुसार महाकाव्य की कथा के विकास-क्रम में पाँच नाटकीय सन्धियों का समन्वय होना चाहिये। दण्डी हेमचन्द्र, तथा विश्वनाथ इन तीनों के अनुसार प्रत्येक सर्ग में एक छन्द आदि से प्रायः अन्त तक रहता है। दण्डी द्वारा वर्णनीय विषयों में दुष्टों के अतिरिक्त आचार्य हेमचन्द्र और विश्वनाथ ने महाकाव्य के वर्णनीय विषयों में दुष्टों की निन्दा और सज्जनों की प्रशंसा का भी समावेश किया है। काव्य-लक्षणा के विषय में जरूर मत-भेद प्रकट होता है। विश्वनाथ काव्य का लक्ष्य धर्मार्थ-काम

मोक्ष की प्राप्ति बतलाते हैं । अग्निपुराण त्रिवर्गसाधन बतलाते हैं । भामह, दण्डिन् तथा वामन ने यश एवं आनन्द को काव्य का लक्ष्य बतलाया है ।

'काव्यानुशासन' में अपने समर्थन के लिए आचार्य हेमचन्द्र विविध ग्रन्थ एवं ग्रन्थकर्ता के नाम उद्घृत करने में अतीव दक्ष हैं । ऐसा करने से उनकी मौलिकता क्षुण्ण नहीं होती है । मम्मट के 'काव्य प्रकाश' के अतिरिक्त हेमचन्द्र ने राजशेखर के 'काव्य मीमांसा', आनन्दवर्धन के 'ध्वन्यालोक' तथा अभिनवगुप्ताचार्य, रुद्रट, दण्डिन्, धनञ्जय आदि के ग्रन्थों से अनेक उद्धरण प्रस्तुत किये हैं । 'काव्यानुशासन' के छठे अध्याय में अर्थालङ्कारों का निरूपण करते समय विवेक विवृत्ति में पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा चर्चित सभी अलङ्कारों के सम्बन्ध में कहा गया है । भोज राजा के ग्रन्थ 'सरस्वतीकण्ठाभरण' एवं 'शृंगारप्रकाश' में प्रस्तुत मत का जिनमें अधिकतम अलङ्कारों की संख्या निर्दिष्ट है, हेमचन्द्र द्वारा खण्डन किया गया है । भामह, वामन, दण्डिन् इत्यादि के अलङ्कार रीति इत्यादि पक्ष स्वतन्त्र काव्यतत्व के रूप में आचार्य हेमचन्द्र को मान्य नहीं थे । पूर्वकाल में यद्यपि रस काव्यनिष्ठ माना जाता था तो भी दण्डी, वामन, उद्भट आदि के मन पर रस का महत्व शनैः शनैः बढ़ रहा था । सर्व प्रथम रुद्रट ने काव्य तत्व के रूप में 'रस' को स्वतन्त्र स्थान दिया एवं चर्चा की । तदनन्तर राजशेखर, भोज, अग्निपुराणकार, हेमचन्द्र, मम्मट, इत्यादि ने रसतत्व को आत्मतत्व मानकर उसका स्वतन्त्र विवेचन किया । रस के विषय में आचार्य हेमचन्द्र ने भरत मत का ही अनुकरण किया है । वे 'काव्यानुशासन' में स्पष्ट लिखते हैं कि वे अपना मत निर्धारण अभिनवगुप्त एवं भरत के आधार पर कर रहे हैं

कतिपय लेखकों को 'काव्यानुशासन' में मौलिकता का अभाव खटकता है । म.म.पी.व्ही० काणे के मतानुसार आचार्य हेमचन्द्र प्रधानतः वैयाकरण थे तथा अलङ्कार-शास्त्री गौण रूप में थे । इसलिए उनके मतानुसार हेमचन्द्र का 'काव्यानुशासन' सङ्ग्रहात्मक हो गया है । श्री त्रिलोकीनाथ झा का मत भी प्रो.पी.व्ही. काणे से मिलता-जुलता है और उन्होंने भी 'काव्यानुशासन' में मौलिकता का अभाव ही देखा[1]। श्री ए० बी० कीथ, भी 'काव्यानुशासन' में मौलिकता देख नहीं पाते; श्री एस० एन० दासगुप्त एवं एस०के०डे० भी इस विषय में कीथ का ही अनुसरण करते हैं ।

श्री विष्णुपद भट्टाचार्य ने अपने प्रबन्ध में श्री म० म० काणे के मत का खण्डन किया है तथा हेचमन्द्र के 'काव्यानुशासन' की मौलिकता प्रस्थापित

---

१ —बिहार रिसर्च सोसायटी, Vol XL III भाग एक दो पृष्ठ २२-२३

की है[1]। उसमें उन्होंने आचार्य हेमचन्द्र के मत मम्मट, मुकुलभट्ट, ध्वनिकार आनन्दवर्धन के मत से किस प्रकार भिन्न है, यह दिखाया है, तथा 'काव्यानुशासन' को नितान्त मौलिक कृति सिद्ध किया है। सचमुच यदि कोई ग्रन्थकार अपने मत के समर्थन में अन्य ग्रन्थों से, ग्रन्थकारों के उद्धरण प्रस्तुत करता है तो उसमें उस ग्रन्थकार की मौलिकता नष्ट नहीं होती है, बल्कि इससे तो उसके मत की, सिद्धान्त की एवं मौलिकता की पुष्टि ही होती है।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने 'काव्यानुशासन' में मम्मट, राजशेखर, भरत अभिनवगुप्त, आनन्दवर्धन, धनञ्जय, आदि आलङ्कारिकों के उद्धरण निःसन्देह प्रस्तुत किये हैं, किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि आचार्य हेमचन्द्र शत-प्रतिशत उक्त आलङ्कारिकों का मत मानते हैं और उनका 'काव्यानुशासन' केवल एक सङ्-ग्रह मात्र है। हेमचन्द्र का अपना स्वयं का स्वतन्त्र मत है, स्वतन्त्र शैली है, स्वतन्त्र दृष्टिकोण है। अपने दृष्टिकोण को समझाने के लिए वे अन्य ग्रन्थों से उद्धरण प्रस्तुत करते हैं तो उसमें उनके मत की प्रतिष्ठा बढ़ती ही है, घटती नही। मौलिकता तो कभी नष्ट नहीं होती। मौलिकता के विषय में हेमचन्द्र का स्वयं का मत पहले ही उद्घृत किया जा चुका है। फिर भी मौलिकता की दृष्टि से हम एक बार फिर विहङ्गमावलोकन करते हैं। उदाहरणार्थ उनका काव्य का प्रयोजन ही देखिये—

"काव्यमानन्दाय यशसे कान्तातुल्यतयोपदेशाय च" इसमें "कला के लिए कला" सिद्धान्त की ध्वनि स्पष्ट सुनायी देती है। मम्मट अथवा दूसरे आचार्यों द्वारा बताये गये काव्य के प्रयोजन हेमचन्द्र को मान्य नहीं हैं। "काव्यमानन्दाय" कहकर यह सिद्ध किया है कि स्वान्तः सुखाय काव्य-रचना होती है। हेमचन्द्र का यह दृष्टिकोण नितान्त मौलिक है।

इसी प्रकार हेमचन्द्र की उपमा की व्याख्या भी अनुपमेय है। "हृद्यं साधर्म्यमुपमा"। प्रायः सभी आलङ्कारिकों ने 'साधर्म्य' पर हीविशेष जोर दिया है। किन्तु 'हृद्यं' पर विशेष जोर देकर हेमचन्द्र ने अपनी मौलिकता सिद्ध की है। समान धर्मता हृद्यं अर्थात आह्लादजनक होनी चाहिये। 'साधर्म्य हृद्यं अर्थात् आह्लादजनक होगा तो ही वह अलङ्कार हो सकता है, अन्यथा नहीं। अलङ्कार रसोपकारक हो तो ही वे काव्य में उपादेय हैं इसलिये उपमा का 'सा-धर्म्य हृद्यं होना ही चाहिये। "हृद्यं सहृदयहृदयाल्हादकारि" अलङ्कार-चूड़ा-

---

१ —'आचार्य हेमचन्द्र पर व्यक्तिविवेक के कर्ता का ऋण' निबन्ध इण्डियन कल्चर ग्रन्थ १३ पृष्ठ २१८-२२४,

मणि में उन्होंने हृंद्य की परिभाषा दी है। अतः समानधर्मत्व के साथ वह समानधर्मत्व आह्लादजनक भी होना चाहिये। सौन्दर्य के भाव-पक्ष पर हेमचन्द्र विशेष ध्यान देते हैं। यह हेमचन्द्र की ही मौलिकता है। अलङ्कारों की संख्या कम करके अनुरूप अलङ्कारों का तत्सम प्रधान अलङ्कार में समावेश करना आचार्य हेमचन्द्र की ही कला है।

आचार्य हेमचन्द्र का रस-विवेचन भी बड़ा ही मार्मिक एवं गहरा है। भरत नाट्यशास्त्र के एवं अभिनवगुप्त के उद्धरण उद्धृत करने पर भी हेमचन्द्र के विवेचन में मौलिकता है। उन्होंने काव्य के गुण-दोष को रस की कसौटी पर कसकर ही वर्णित किया है। उनका मत है कि रसापकर्षक दोष हैं, रसोत्कर्षक गुण हैं तथा अलङ्कार रसाश्रित होने चाहियें। रसाभाव में अलङ्कार को काव्य के दोष ही समझना चाहिये। अलङ्कार केवल बाह्य सौन्दर्य के लिए नहीं, उन से आन्तरिक सुन्दरता अर्थात् रसनिष्पत्ति होना आवश्यक है।

वे रस-सिद्धान्त के कट्टर अनुयायी थे। रस-सिद्धान्त की अभिव्यक्ति में उनकी मौलिकता प्रकट होती है। हेमचन्द्र के मत से व्यभिचारि भाव स्थायी भावों को जो सहायता पहुँचाते हैं, वह सहायता स्वयं का धर्म स्थिर रखकर नहीं बल्कि स्वयं का धर्म स्थायी भावों में अर्पण करके पहुँचाते हैं। व्यभिचारि भाव दुर्बल दासों के समान परावलम्बी होते हैं, अस्थिर होते हैं। स्वामी की लहर के अनुसार जिस प्रकार सेवकों को बदलना पड़ता है उसी प्रकार व्यभिचारि भाव स्थायी भावों के अनुसार बदलते हैं। स्वयं का अस्तित्व मिटाकर स्थायी भावों में अर्पित हो जाते हैं, उनका पर्यवसान उन्हीं में हो जाता है। हेमचन्द्र का उक्त कथन बहुत मार्मिक एवं मौलिक है!

काव्यानुशासन के मतानुसार काव्य संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और ग्राम्यापभ्रंश में भी लिखा जा सकता है। काव्यानुशासन की एक अन्य विशेषता है – उसमें वर्णित कथा के प्रकार तथा गेय के प्रकार।

'काव्यानुशासन' के 'अलङ्कारचूड़ामणि' तथा 'विवेक' में जो उदाहरण एवं जानकारी हेमचन्द्र ने दी, वह संस्कृत-साहित्य में एवं काव्य-शास्त्र के इतिहास के लिए अत्यंत उपयुक्त है। हेमचन्द्र ने जो ग्रन्थ एवं ग्रन्थकारों के नाम उद्धृत किये हैं उनसे संस्कृत-साहित्य के इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ सकता है।

डा० एस० के० डे० ने 'काव्यानुशासन' को 'काव्य प्रकाश' से निकृष्ट बताया है[1]। डा० रसिकलाल पारीख ने 'काव्यानुशासन' की प्रस्तावना में डा०

१ –History of Sanskrit Poetics, Vol. I, Page-203

डे० के मत का खण्डन किया है, किन्तु डा० रसिकलाल पारीख ने भी 'काव्यानुशासन' को एक सर्वोत्कृष्ट पाठ्यपुस्तक बताया है। सत्य बात यह है कि आचार्य हेमचन्द्र के सम्मुख सभी स्तर के पाठक थे। वे युग-पुरुष थे एवं प्रचार-प्रसार उनका उद्देश्य था। अतः सूत्र-शैली में ग्रन्थ-रचना की और फिर साधारण पाठकों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए उन्होंने 'अलङ्कारचूड़ामणि' लिखा। विशेष ज्ञान की पिपासा रखने वाले मेधावी छात्रों के लिए 'विवेक' नामक विवृति लिखकर उन्हें भी ज्ञानवृद्धि का अवसर दिया है। इस प्रकार सभी कोटि की जनता के लिए 'काव्यानुशासन' ग्रन्थ उपादेय बन गया है। मम्मट का 'काव्यप्रकाश' एक तो क्लिष्ट है, साधारण पाठकों के लिए वह सुगम नहीं, और संस्कृत के काव्य के अतिरिक्त अन्य साहित्य विद्याओं का अध्ययन करने के लिए पाठकों को दूसरे ग्रन्थ भी देखने पड़ते हैं। हेमचन्द्र का 'काव्यानुशासन' इस अर्थ में परिपूर्ण ग्रन्थ है। उसमें काव्य के अतिरिक्त नाटक, नाटिका, कथा, चम्पू आदि साहित्य की विविध शाखाओं का समुचित परिचय दिया गया है। अतः आचार्य हेमचन्द्र के 'काव्यानुशासन' का अध्ययन करने के पश्चात् फिर दूसरा ग्रन्थ पढ़ने की जरूरत नहीं रहती।

डा० एस० के डे० ने काव्यानुशासन को केवल एक शिक्षा-ग्रन्थ कहा है, यह मत नितान्त भ्रान्त है। निःसन्देह उसमें कवि-शिक्षा प्रकरण हैं, किन्तु इससे वह ग्रन्थ केवल शिक्षा-ग्रन्थ की कोटि में नहीं आ सकता। 'काव्यानुशासन' में काव्य-शास्त्र के सभी अङ्गों पर सविस्तार विचार किया गया है। अतः वह सम्पूर्ण काव्य-शास्त्र पर सुव्यवस्थित तथा सुरचित प्रबन्ध है। जिस प्रकार हेमचन्द्र ने गुजरात के लिए पृथक् व्याकरण दिया, उसी प्रकार उन्होंने गुजरात के सभी स्तरों के पाठकों के लिए एक उत्कृष्ट अलङ्कार-ग्रन्थ भी दिया। यह ग्रन्थ अब साहित्यशास्त्र के प्रत्येक जिज्ञासु के लिए उपादेय ग्रन्थ बन गया है। अलङ्कार शास्त्र के उत्कृष्ट ग्रन्थों में आज आचार्य हेमचन्द्र के 'काव्यानुशासन' की गणना होती है।

—०—

हेमचन्द्र के अनुसार काव्य-भेद
काव्य
प्रेक्ष्य
श्रव्य
पाठ्य
गेय
महाकाव्य, आख्यायिका, कथा, चम्पू, अनिर्बद्ध,
१ नाटक, २ प्रकरण, ३ नाटिका,
४ समवकार, ५ ईहामृग, ६ डिम,
७ व्यायोग, ८ उत्सृष्टिकाङ्क, ९ प्रहसन,
१० भाण, ११ वीथी, १२ सट्टक,
संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश ग्राम्यापभ्रंश
१ आख्यान. २ निदर्शन.
३ प्रवल्लिका. ४ मत्तल्लिका.
५ मणिकुल्या. ६ परिकथा.
७ खण्डकथा. ८ सकलकथा.
९ उपकथा. १० बृहत्कथा.
डोंबिका, भाण, प्रस्थान, शिङ्गक, भाषिक, प्रेरण, रामाक्रीड, हल्लीसक रासक, श्रीगदित्त, गोष्ठी,
कोमल
उद्धत
मिश्र
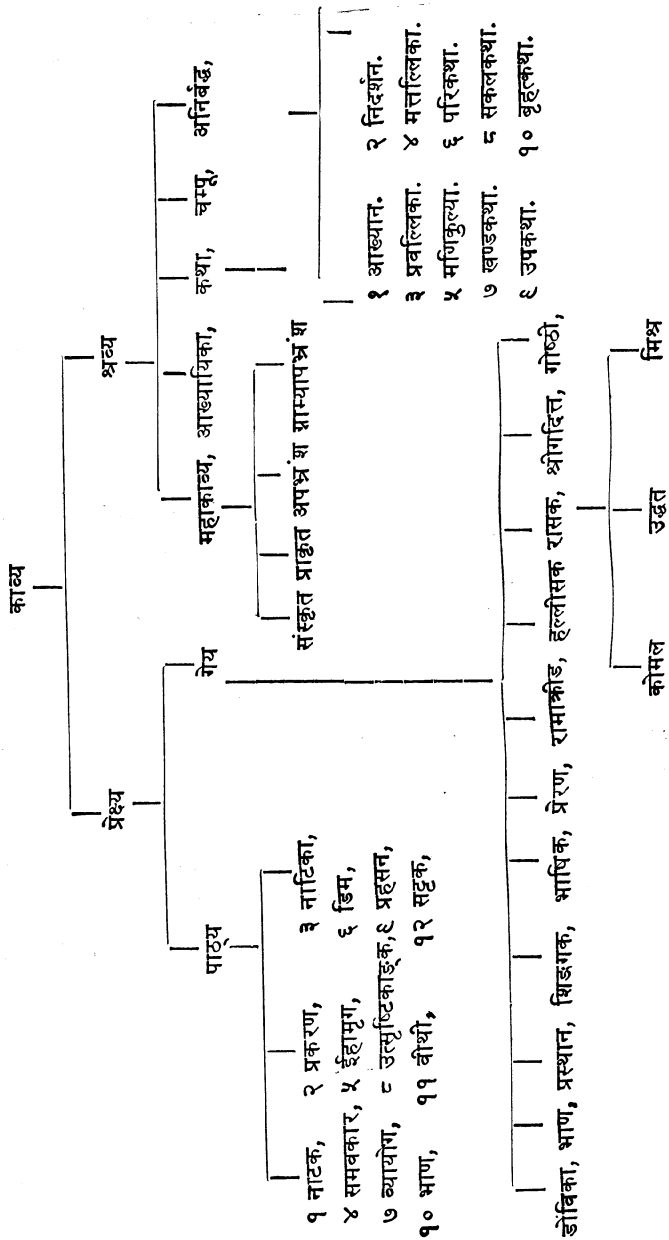
अध्याय : ५

कोश ग्रन्थ

हेमचन्द्र पूर्व कोश साहित्य — कालचक्र के अबाध रूप से चलते रहने से लौकिक शब्दों के भी ज्ञाताओं का ह्रास हो जाने पर आचार्यों ने लौकिक कोशों का निर्माण किया। इसका वास्तविक ज्ञान आज तक अन्धकार में ही पड़ा है, क्योंकि प्रायः सभी प्राचीन कोश अनुपलब्ध हैं। १२ वीं शताब्दी में रचित, 'शब्द कल्पद्रुम' नामक कोश में २६ कोशकारों के नाम उपलब्ध होते हैं। सम्प्रति उपलब्ध कोशों में सबसे प्राचीन ख्याति प्राप्त अमरसिंह का 'अमर-कोश' है। प्राचीन प्रणाली के अनुसार अध्ययन-अध्यापन करने वाले पण्डितों के यहाँ अभी भी 'अमरकोश' कण्ठस्थ करने की प्रवृत्ति चली आ रही है। इससे उसकी लोकप्रियता अभी तक अक्षुण्ण है, यह सिद्ध होता है। अतः आचार्य हेमचन्द्र ने अपने कोशों के निर्माण में इनसे प्रेरणा एवं सहायता ली हो तो उसमें आश्चर्य नहीं। 'अमरकोष' के अतिरिक्त ६ वीं तथा १० वीं शताब्दी में जैन आचार्यों ने संस्कृत कोश निर्माण में जो योगदान दिया, वह भी हेमचन्द्र के सामने था। उसी शताब्दी में धनञ्जय के तीन कोश ग्रन्थ भी हेमचन्द्र के लिए प्रेरणा के स्रोत बने होंगे क्योंकि 'नाममाला' में कोशकार ने केवल २०० श्लोकों में ही आवश्यक शब्दावली का चयन किया है। शब्द से शब्दान्तर बनाने की प्रक्रिया हेमचन्द्र के कोशों में भी दिखायी देती है— उदाहरणार्थ पृथ्वी के नामों के आगे घर शब्द या घर के पर्यायवाची शब्द जोड़ देने से पर्वत के नाम, पति या पति के समानार्थक स्वामिन् आदि शब्द जोड़ देने से राजा के नाम एवं रूह शब्द जोड़ देने से वृक्ष के नाम हो जाते हैं। इससे एक प्रकार के पर्यायवाची शब्दों की जानकारी से दूसरे प्रकार के पर्यायवाची

शब्दों की जानकारी सहज में ही हो जाती है। इसके अतिरिक्त हेमचन्द्र के जीवनकाल का समय कोश–साहित्य की समृद्धि की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। १२ वीं शताब्दी से हमें विभिन्न प्रकार के अनेक कोश ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। भैरवी के 'अनेकार्थ कोश' में अमर, शाश्वत, हलायुध, और धन्वन्तरि का उपयोग किया गया है। अभयपाल की "नानार्थ–रत्नमाला" इसी युग में रची गयी थी। महेश्वर के 'विश्वप्रकाश कोश' की रचना इसी युग की है। केशव स्वामी के ग्रन्थ द्वय "नानार्थार्णव संक्षेप" एवं "शब्दकल्पद्रुम इसी युग की देन हैं। आचार्य हेमचन्द्र ने भी 'अभिधानचिन्तामणि" 'अनेकार्थसङ्ग्रह', 'निघण्टुशेष' एवं 'देशी नाममाला' कोशों की रचना इसी समय की। आचार्य हेमचन्द्र युग-प्रवर्तक थे, अत: वे समकालीन कोश–निर्माण–आन्दोलन से दूर कैसे रह सकते थे ?

हेमचन्द्र के कोश ग्रन्थ– १२ वीं शताब्दी में जितने कोश ग्रन्थ लिखे गये उनमें से सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ हेमचन्द्र के कोश हैं। श्री ए० बी० कीथ भी अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में उक्त कथन का समर्थन करते हैं। आचार्य हेमचन्द्र का **'अभिधान चिन्तामणि' ६ काण्डों में समानार्थक शब्दों का सङ्ग्रह है,** जिनका आरम्भ जैन देवताओं से और अन्त भाववाचक शब्दों (Abstracts), विशेषणों और अव्ययों से होता है। इस पद्यमय कोश के ६ काण्ड हैं–(१) देवाधिदेव काण्ड–८६, (२) देवकाण्ड–२५०, (३) मर्त्यकाण्ड–५९८, (४) भूमिकाण्ड–४२३, (५) नारक काण्ड–७ और (६) सामान्य काण्ड–१७८।

इस प्रकार इस कोश में कुल १५४२ पद्य हैं। उसके बाद उन्होंने 'शेष नाममाला' लिखी जिसकी श्लोक संख्या कुल २०८ है तथा अनुक्रम निम्नानुसार है–शेष नाममाला–प्रथम काण्ड शेष: श्लो० १५४३ से १६३३; द्वितीय काण्ड शेष: श्लोक १६३४ से १६९८, चतुर्थ काण्ड शेष: श्लोक १६९९ से १७३८, नारक पंचम शेष: श्लोक १७३९ से १७४०–५०।

अभिधान चिन्तामणि–इस कोश में समानार्थक शब्दों का सङ्ग्रह किया गया है। वे आरम्भ में ही रूढ़, यौगिक और मिश्र शब्दों के पर्यायवाची शब्द लिखने की प्रतिज्ञा भी करते हैं। व्युत्पत्ति से रहित, प्रकृति तथा प्रत्यय के विभाग करने से भी अन्वर्थहीन शब्दों को रूढ़ कहते हैं–जैसे आखण्डल आदि। कुछ आचार्य रूढ़ शब्दों की भी व्युत्पत्ति मानते हैं, पर उस व्युत्पत्ति का प्रयोजन केवल वर्णानुपूर्वी का ज्ञान कराना ही है, अन्वर्थ प्रतीति नहीं। अत: 'अभिधान चिन्तामणि' में सङ्ग्रहीत शब्दों में प्रथम प्रकार के शब्द रूढ़ हैं।

दूसरे प्रकार के शब्द यौगिक हैं। शब्दों के परस्पर अर्थानुगम को योग

कहते हैं। यह योग गुण, क्रिया तथा अन्य सम्बन्धों से उत्पन्न होता है। गुण के कारण नीलकण्ठ, शितिकण्ठ, कालकण्ठ इत्यादि शब्द ग्रहण किये गये हैं। क्रिया के सम्बन्धों से उत्पन्न होने वाले स्रष्टा, धाता इत्यादि हैं। अन्य सम्बन्धों में स्वस्वामित्व, जन्य, जनक, धार्यधारक, पतिकलत्र, सख्य, वाह्यवाहक, आश्रय-आश्रयी एवं वध्यवध भाव सम्बन्ध ग्रहण किया गया है। स्ववाचक शब्दों में स्वभिवाचक शब्द या प्रत्यय जोड़ देने से स्वस्वामि वाचक शब्द बन जाते हैं। स्वामिवाचक प्रत्ययों में मतुप्, इन् अण्, अक इत्यादि प्रत्यय एवं शब्दों में पाल भुज्, घन, नेतृ, शब्द परिगणित हैं। यथा—भू–मतुप्=भूमान्, घन+इन्–घनी, शिव+अण्=शैवः,दण्ड+इक=दाण्डिकः,भू+पाल=भूपालः,भू+पति =भूपतिः आचार्य हेमचन्द्र ने उक्त प्रकार के सभी सम्बन्धों से निष्पन्न शब्दों को कोश में स्थान दिया है। उन्होंने मूल श्लोकों में जिन शब्दों का सङ्ग्रह किया है, उनके अतिरिक्त 'शेषाश्च' कहकर कुछ अन्य शब्दों को स्थान दिया है। इसके पश्चात् स्वोपज्ञ वृत्ति में भी छूटे हुए शब्दों को समेटने का प्रयास किया है। इस प्रकार इस कोश में उस समय तक प्रचलित और साहित्य में व्यवहृत शब्दों को स्थान दिया है। यही कारण है कि यह कोश संस्कृत साहित्य में सर्वश्रेष्ठ है।

टीका में नाममाला को 'अभिधानचिन्तामणि' नाम दिया गया है। सम्भवतः वृत्ति का नाम 'तत्वबोधविधायिनी' है। इस ग्रन्थ में शब्द प्रमाण्य वासुकि एवं व्याड़ि से लिया गया है। व्युत्पत्ति धनपाल और प्रपञ्च से ली गयी है। विकास विस्तार वाचस्पति एवं अन्यों से लिया गया है। इस प्रकार वे जिन्हें प्रमाण मानते हैं उन प्रधान आचार्यों के नाम उसमें हैं। वासुकि और व्याड़ि के आधार पर वे शब्द की सत्यता सिद्ध करते हैं। व्याख्या के लिए धनपाल की सहायता लेते हैं। यह प्रतीत होता है कि आचार्य हेमचन्द्र के व्याकरण-ग्रन्थ की पर्याप्त आलोचना हुई है अतः वे इस ग्रन्थ में प्रमाण देने में प्रारम्भ से ही विशेष सावधान हैं। 'अभिधान चिन्तामणि' के प्रत्येक काण्ड के अन्त में परिशिष्ट है। अनेकार्थ सङ्ग्रह इसी का पूरक ग्रन्थ है।

'अभिधानचिन्तामणि कोश' अनेक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इतिहास की दृष्टि से इस कोश का बड़ा महत्व है। हेमचन्द्र ने स्वोपज्ञ वृत्ति टीका में पूर्व-वर्ती निम्नलिखित ५६ ग्रन्थकारों तथा ३१ ग्रन्थों का उल्लेख किया है। ग्रन्थकार है—

१. अमर, २. अमरादि, ३. अलङ्कारकृत् ४. आगमविद्, ५. उत्पल, ६. कात्य, ७. कामन्दकि, ८. कालिदास ९. कौटिल्य, १०. कौशिक, ११. क्षीरस्वामी

१२. गौड, १३. चाणक्य, १४. चान्द्र, १५. दन्तिल, १६. दुर्ग, १७. द्रमिल, १८. धनपाल, १९. धन्वन्तरी, २०. नन्दी, २१. नारद, २२. नैरुक्त, २३ पदार्थविद्, २४. पालकाप्य, २५. पौराणिक, २६. प्राच्य, २७. बुद्धिसागर, २८. बौद्ध, २९. भट्टतोत, ३०. भट्टि, ३१. भरत, ३२. भागुरि, ३३. भाष्यकार, ३४. भोज, ३५. मनु, ३६. माघ, ३७. मुनि, ३८. याज्ञवल्क्य, ३९. याज्ञिक, ४०. लौकिक, ४१. लिङ्गानुशासनकृत, ४२. वाग्भट, ४३. वाचस्पति, ४४. वासुकि, ४५. विश्वदत्त, ४६. वैजयन्तीकार, ४७. वैद्य, ४८. व्याड़ि, ४९. शाब्दिक, ५०. शाश्वत, ५१. श्रीहर्ष, ५२. श्रुतिज्ञ, ५३. सभ्य, ५४. स्मार्त, ५५. हलायुध तथा ५६. हृध्य।

ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं– १. अमरकोश, २. अमरटीका, ३. अमरमाला, ४. अमरशेष, ५. अर्थ-शास्त्र, ६. आगम, ७. चान्द्र, ८. जैन-समय, ९. टीका, १०. तर्क, ११. त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित, १२. द्वयाश्रय महाकाव्य, १३. धनुर्वेद १४. धातुपारायण, १५. नाट्यशास्त्र, १६. निघण्टु, १७. पुराण, १८. प्रमाणमीमांसा, १९. भारत, २०. महाभारत, २१. माला, २२. योगशास्त्र, २३. लिङ्गानुशासन, २४. नामपुराण, २५. विघ्नुपुराग, २६. वेद, २७. वैजयन्ती, २८. शाकटायन, २९. श्रुति, ३०. संहिता तथा ३१. स्मृति।

इस कोश में व्याकरण वार्तिक, टीका, पञ्जिका, निबन्ध, सङ्ग्रह, परिशिष्ट, कारिका, कालिन्दिका, निघण्टु, इतिहास, प्रहेलिका, किंवदन्ति, वार्ता आदि की भी व्याख्या और परिभाषा प्रस्तुत की गयी हैं। इन परिभाषाओं से साहित्य के अनेक सिद्धान्तों पर प्रकाश पड़ता है।

आरम्भ में ही आचार्य कहते हैं कि यह प्रयास निःश्रेयस, अर्थात् मुक्ति के लिए है। आत्म-प्रशंसा एवं परनिन्दा से क्या प्रयोजन ? अतः जैन-सम्प्रदाय की दृष्टि से भी इसमें धार्मिक सामग्री पर्याप्त रूप में मिलती हैं। रूढ़, यौगिक मिश्र शब्दों के विभागों का वर्णन कर मुक्तादि जीवों के क्रम वर्णित हैं। पहले काण्ड में गणधरादि अङ्गों के सहित देवाधिदेव, वर्तमान भूत भविष्यत् अर्हन्तों का वर्णन किया गया है। दूसरे काण्ड में अङ्गों सहित देवों का वर्णन किया गया है। तीसरे में अङ्गों सहित मनुष्यों का, चौथे में अङ्गों सहित तिर्यञ्चों का वर्णन किया गया है। इनमें एक इन्द्रिय वाले पृथ्वीकायिक शुद्ध पृथ्वी, बालू रेत इत्यादि; जलकायिक, हिम, बर्फ आदि; तेजकायिका–अङ्गारादि; वायुकायिक-पवनादि; वनस्पतिकायिक, शैवालादि; दो इन्द्रिय वाले जीव–काष्ठकीट, घुण, कृमि आदि जीव; तीन इन्द्रिय वाले जैसे पिपीलक, पीलक; चार इन्द्रिय वाले

जीव जैसे मकड़ी, भ्रमर आदि; पाञ्च इन्द्रिय वाले जैसे स्थल चरपशु, खेचर पक्षी, जलचर, मत्स्यादि, देव, देवता तथा नारकीय का वर्णन मिलता है। पाँचवे में अङ्गोंसहित नारकीय जीवों का वर्णन तथा छठे काण्ड में साधारण तथा अव्यय शब्द हैं।

जीवों की गतियाँ पाँच होती हैं; यथा १, मुक्तगति, २, देवगति, ३, मनुष्यगति, ४, तिर्यग्गति तथा ५, नारकगति। अतः जीव पाँच प्रकार के होते हैं—मुक्त, देव, मनुष्य, तिर्यञ्च और नारक। १, प्रभव, प्रभुः २, शय्यंभव, ३, यशोभद्र ४, सम्भूतविजय, ५, भद्रबाहु और ६, स्थूलभद्र, ये छः श्रुतकेवली कहे जाते हैं। तत्पश्चात् तीनों कालों में होने वाले २४-२४ तीर्थङ्करों के जन्म के साथ ही होने वाले अतिशयों का वर्णन हैं।

ऋतुओं के सम्बन्ध में 'अभिधान चिन्तामणि कोश' में बड़ी ही मनोरञ्जक जानकारी मिलती है। ऋतुभेद से प्रत्येक मास में सूर्य की किरणें घटती-बढ़ती हैं। 'पूषति वर्धत' इस विग्रह से सूर्य का नाम 'पूषा' होता है। आचार्य व्याड़ि के मत से—चैत्र में १२००, वैशाख में १३००, ज्येष्ठ में १४००, आषाढ़ में १५००, श्रावण में १४००, भाद्रपदमें १४००, अश्विन में १६००, कार्तिक में ११००, अगहन में १०५०, पौष में १०००, माघ में ११०० और फाल्गुन में १०५०, सूर्य की किरणें होती हैं। समय परिमाण भी बड़ा मनोरञ्जक है। मनुष्यों के ३६० वर्ष=देवों के ३६० दिन=१ दिव्य वर्ष; १२,००० दिव्य वर्ष=१ चतुर्युग; ४३२०००० मनुष्यों के वर्ष = देवों का एक युग--दिव्ययुग। २००० दिव्ययुग का ब्रह्मा का एक दिन–रात होता है अथवा ८६४००००००० ब्रह्मा के दिन-रात मनुष्यों का कल्प-द्वय होता है। देवों के ७१ युग = १ मन्वन्तर–३०६७२००००० वर्ष। १४ मनुओं में से प्रत्येक मनु का स्थिति काल इतना होता है। इससे काल की अनन्तता की कल्पना सहज में ही आ सकती है।

उसी प्रकार नाप-तोल परिमाण के विषय में भी तत्कालीन प्रचलित परिमाणों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। 'अभिधान चिन्तामणि' के अनुसार दो सहस्र दण्ड अर्थात ८००० हाथ का एक गव्यूति होता है[1]। आचार्य हेमचन्द्र ने

---

१. त्रिविधमान बोधक चक्र

(१) पौतवमानः — १, गुञ्जा–१, रत्ति–५ गुञ्ज–१ माषक, १६ माषक–१ कर्ष, ४ कर्ष–१ पलम्, १६ माषका–१ विस्त, ४ विस्त-१ कुविस्त, १०० पल–१ तुला, २० तुला–१ भार, २० भार–१, आचित (अगले पृष्ठ पर भी)

अपने कोश में सेना का अङ्गों सहित वर्णन किया है। उक्त वर्णन देखने से प्रतीत होता है कि वे सङ्ग्राम में या तो कभी साथ रहे होंगे या उन्होंने अपनी आँखो से सेना का सूक्ष्म निरीक्षण किया होगा। उस समय प्रचलित सेना-पद्धति पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है। इतना ही नहीं महाभारत के समय की अक्षौहिणी पद्धति पर भी प्रकाश पड़ता है।

लगभग महाभारत के समय से ही हमारे भारतीय समाज में वर्णसङ्कर होता आ रहा है। समय-समय की अपरिहार्य परिस्थिति के अनुसार यह अवश्यंभावी भी था। किन्तु समाज को दुर्बल होने से बचाने के लिए उस प्राचीन काल में भी मनु महाराज ने वर्णसङ्कर की समुचित व्यवस्था दी थी तथा सभी प्रकार के मानवों को नागरिकता का सम्मान प्राप्त था। 'मनुस्मृति' में निर्दिष्ट ८ प्रकार के सम्मत विवाह इसी बात को सिद्ध करते हैं। भारत में जन्मीं सभी सन्तानों को अपनाने का वह महान् सफल प्रयास था। इससे समाज सबल बना रहा; किन्तु कुछ शताब्दियों के अनन्तर जब जन्मजात जातियों का प्राबल्य बढ़ रहा

---

(२) द्रुवयमान — १ कुडव–२ प्रसृती, ४ कुडव–१ प्रस्थ, ४ प्रस्थ–१ आढ़क
१६ आढ़क–१ खारी

(३) पाय्यमान — १ अंगुल–३ यव, २४ अंगुल–१ हस्त, ४ हस्त–१ दण्ड, २००० दण्ड–१ क्रोश, २ क्रोश–१ गव्यति, २ गव्यति; –१योजन,

सेना संख्या बोधक चक्र

नाम	गज	रथ	अश्व	पत्ति	योग
१, पत्तिः	१	१	३	५	१०
२, सेना	३	३	९	१५	३०
३, सेनामुख	९	९	२७	४५	९०
४, गुल्मः	२७	२७	८१	१३५	२७०
५, वाहिनी	८१	८१	२४३	४०५	८१०
६, पृतना	२४३	२४३	७२९	१२१५	२४३०
७, चमुः	७२९	७२९	२१८७	३६४५	७२९०
८, अनीकिनी	२१८७	२१८७	६५६१	१०९३५	२१८७०
९, अक्षौहिणी	२१८७०	२१८७०	६५६१०	१०९३५०	२१८७००
१०, महा-अक्षौहिणी	१३२१२४९०	१३२१२४९०	३६६३७४७०	६६०६२४५०	१३२१२२००

था तब सङ्करित वर्णों की भी अनेक जातियाँ बनी। आचार्य हेमचन्द्र के समय प्रचलित सङ्करित जातियों के वर्णन से तत्कालीन समाज-व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। यद्यपि सभी वर्णों को अपनाने का प्रयास इसमें भी है फिर भी उच्च-नीच का भाव अत्यधिक प्रभावशील था यह सत्य है।

वर्णसङ्करो के मातृ-पितृ जाति बोधक चक्र

क्रमांक	पितृजाति	मातृजाति	वर्णसङ्कर सन्तान जाति
१	ब्राह्मण	क्षत्रिया	मूर्धावसिक्तः
२	ब्राह्मण	वैश्या	अम्बष्ट
३	ब्राह्मण	शूद्रा	पाराशव, निषाद
४	क्षत्रिय	वैश्या	माहिष्य
५	क्षत्रिय	शूद्रा	उग्र
६	वैश्य	शूद्रा	करण
७	शूद्र	वैश्या	आयोगव
८	शूद्र	क्षत्रिया	क्षता
९	शूद्र	ब्राह्मणी	चाण्डाल
१०	वैश्य	क्षत्रिया	मागध
११	वैश्य	ब्राह्मणी	वैदेहक
१२	क्षत्रिय	ब्राह्मणी	सूत
१३	माहिष्य	करणी	तक्षा (रथकारक)

अभिधानचिन्तामणि कोश की विशेषताएं—

हेमचन्द्र के कोश ग्रन्थ, विशेषतः 'अभिधानचिन्तामणि कोश', अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। हेमचन्द्र के कोश ग्रन्थों की पहली विशेषता यह है कि ये कोश इतिहास और तुलना की दृष्टि से बहुत मूल्यवान हैं। विभिन्न ग्रन्थ तथा ग्रन्थकारों के उद्धरण विविध दृष्टियों से भाषा सम्बन्धी परिचय प्रस्तुत करते हैं।

दूसरी विशेषता यह है कि धनञ्जय के समान शब्द योग से अनेक पर्यायवाची शब्दों के बनाने का विधान हेमचन्द्र ने किया है किन्तु 'कविरूढ़या ज्ञेयोदाहरणावलि' के अनुसार उन्हीं शब्दों को ग्रहण किया है जो कविसम्प्रदाय द्वारा प्रचलित एवं प्रयुक्त हैं—उदाहरणार्थ पति वाचक शब्दों से कान्ता, प्रियतमा, वधू, प्रणयिनी, एवं विभा शब्दों को या इनके समान अन्य शब्दों को जोड़ देने से पत्नी के नाम और कलत्रवाचक शब्दों में वर, रमण, प्रणयी, एवं प्रिय शब्दों

को या इनके समान अन्य शब्दों को जोड़ देने से पतिवाचक शब्द बन जाते हैं। गौरी के पर्यायवाची शब्द बनाने के लिए शिव शब्द में उक्त शब्द जोड़ने पर शिवकान्ता, शिवप्रियतमा, शिववधू, शिव प्रणयिनी, आदि शब्द बनते हैं। विभा का समानार्थक परिग्रह भी है। किन्तु जिस प्रकार शिवकान्ता शब्द ग्रहण किया जाता है उस प्रकार शिव परिग्रह नहीं। अतः कवि-सम्प्रदाय में यह शब्द ग्रहण नहीं किया गया है। कलत्रवाची गौरी शब्द में वर, रमण, शब्द जोड़ने से गौरी-वर, गौरीरमण, गौरीश आदि शिववाचक शब्द बनते हैं। जिस प्रकार गौरीवर, शिववाचक है, उसी प्रकार गङ्गावर नहीं यद्यपि कान्तावाची गंगा शब्द में वर शब्द जोड़कर पतिवाचक शब्द बन जाते हैं, तो भी कवि-सम्प्रदाय में इस शब्द की प्रसिद्धि नहीं होने से यह शिव के अर्थ में ग्राह्य नहीं है। अतएव शिव के पर्याय कपाली के समानार्थक कपालपाल, कपालधन, कपालभुक, कपालपति, जैसे अप्रयुक्त अमान्य शब्दों के ग्रहण से भी रक्षा हो जाती है। इससे हेमचन्द्र की नयी सूझबूझ का भी पता चल जाता है। व्याकरण द्वारा शब्द-सिद्धि सम्भव होने पर भी कवियों की मान्यता के विपरीत होने से उक्त शब्दों को कपाली के स्थान पर ग्रहण नहीं किया जाता।

तीसरी विशेषता यह है कि सांस्कृतिक दृष्टि से हेमचन्द्र के कोशों की सामग्री महत्वपूर्ण है। प्राचीन भारत में प्रसाधन के कितने प्रकार प्रचलित थे, यह उनके अभिधानचिन्तामणि कोश से भलीभाँति जाना जा सकता है[1]। शरीर को संस्कृत करने को परिकर्म, उबटन लगाने को उत्सादन, कस्तूरी कुङ्कुम का लेप लगाने को अङ्गराग, चन्दन, अगर, कस्तूरी, कुङ्कुम के मिश्रण को 'चतुःसमम्' कर्पूर, अगर, कङ्कोल, कस्तूरी, चन्दन द्रव के मिश्रित लेप को 'यज्ञकर्दम' और संस्कारार्थ लगाये जाने वाले लेप का नाम वर्ति या गात्रानुलेपिनी कहा गया है।

उसी प्रकार प्राचीन काल में पुष्पमालाएँ भिन्न-भिन्न प्रकार से पहनीं जाती थीं। उसके विषय में भी विविध नाम इस कोश में प्राप्त होते हैं। यथा: माल्यम्, मालास्त्रक–मस्तक पर धारण की जाने वाली पुष्पमाला, गर्भक–बालों के बीच में स्थापित पुष्पमाला, प्रभ्रष्टकम्–चोटी में लटकने वाली पुष्पमाला ललामकम्–सामने लटकती हुई पुष्पमाला, वैकक्षम्–छाती पर तिरछी लटकती हुई पुष्पमाला, प्रालम्बम्–कण्ठ से छाती पर सीधी लटकती हुई पुष्पमाला, आपीड़–सिर पर लपेटी हुई माला, अवतंस–कान पर लटकती हुई माला, बाल-

---

१. अभिधान चिन्तामणि— ३।२९९,

पाश्या–स्त्रियों के जूड़े में लगी हुई माला।

इसी प्रकार कान, कण्ठ, गर्दन, हाथ, पैर, कमर इत्यादि विभिन्न अङ्गो में धारण किये जाने वाले आभूषणों के अनेक नाम आये हैं। इससे मालूम होता है कि प्राचीन समय में आभूषण धारण करने की प्रथा कितनी अधिक थी। मोती की १००, १००८, १०८, ५५४, ५४, ३२, १६, ८, ४, २, ५, ६४ विभिन्न प्रकार की लड़ियों की माला के विभिन्न नाम आये हैं।

सामान्य स्त्रियों की साड़ी के नीचे पहने जाने वाले वस्त्र का नाम है 'चलनी'। वैसे लहँगे के लिए चलनक अथवा चण्डातक शब्द आते हैं। पुत्रोत्पत्ति या विवाहादि के समय मित्रों के द्वारा, नौकरों के द्वारा हठपूर्वक जो कपड़ा माल छीन लिया जाता है उसका नाम पूर्णपात्र, पूर्णानक होता है। सङ्गीत-कला के विषय में हेमचन्द्र के कोशा के अनुसार उस समय वीणा के दो भेद थे। काष्ठमयी वीणा और शारिरी वीणा, एक में तार से दूसरे में कंठ से उक्त स्वरों की उत्पत्ति होती थी। इस प्रकार संस्कृति और सभ्यता की दृष्टि से यह कोश बहुत ही महत्वपूर्ण है। विभिन्न वस्तुओं के व्यापारियों के नाम तथा व्यापार योग्य अनेक वस्तुओं के नाम भी इस कोश में सङ्ग्रहीत है। प्राचीन समय में मद्य बनाने की अनेक विधियाँ प्रचलित थीं। शहद मिलाकर बनाये गये मद्य को मध्वासव, गुड़ से बने मद्य को मैरेय, चावल उबालकर तैयार मद्य को नग्नहू कहा गया है।

गायों के भी वष्कयणी, धेनु, परेष्टु, गृष्टि, कल्या, सुव्रता, करटा, बञ्जुला द्रोणदुग्धा, पीनोध्नी, धेनुष्या, नैचिकी पलिकनी, समांसमीना, सुकरा वत्सला इत्यादि नामों को देखने से मालूम होता है कि उस समय गौ-सम्पत्ती बहुत महत्वपूर्ण थी। विभिन्न प्रकार के घोड़ों के नामों से ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में कितने प्रकार के घोड़े काम में लाये जाते थे, साधुवाही, शुक्ल, कश्य, श्रीवृक्षकी, पञ्चभद्र, कर्क खोंगाह, क्रियाह, नीलका, सुरूहक, वोरूवान, कुलाह, उकनाह, शोण, हरिक, पंगुल, हलह तथा अश्वमेघ के घोड़े को ययुः कहा गया है। इतना ही नहीं, घोड़े की विभिन्न प्रकार की चालों के विभिन्न नाम आये हैं।

कुली (३।२१८)–बड़ी साली, यन्त्रणी या केलिकुञ्चिका (३।२१९)–छोटी साली इत्यादि नामों को देखने से अवगत होता है कि उस समय छोटीं साली के साथ हँसी मजाक करने की प्रथा थी। साथ ही पत्नी की मृत्यु के पश्चात् छोटी साली से विवाह भी किया जाता था इसीलिये उसे केलिकुञ्चिका कहा गया

है ।

निष्कुट–घर के पास वाला बगीचा, पौरक–गाँव के बाहर वाला बगीचा, आक्रीड़–क्रीड़ा का बगीचा, उद्यान, प्रमदवन–राजाओं के अन्तःपुर योग्य बगीचा, पुष्पवटी–धनिकों का बगीचा, क्षुद्राराम–प्रसीदिका–छोटा बगीचा, ये नाम भी सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । इसी प्रकार मसाले, अङ्ग, प्रत्यङ्ग के नाम, माला, सेना, के विभिन्न नाम, वृक्षलता, पशुपक्षी एवं धान्य आदि के अनेक नवीन नाम आये हैं ।

'अभिधानचिन्तामणि' की कुल श्लोक संख्या १५४२ है जो प्रायः अमरकोश के बराबर ही हैं, किन्तु अभिधानचिन्तामणि में नाम और उनके पर्याय अत्यधिक संख्या में कहीं-कहीं दुगनी संख्या तक में दिये गये हैं । इनमें स्वोपज्ञ वृत्ति में कथित पर्याय संख्या जोड़ दी जाय तो उक्त संख्या कहीं-कहीं अमरकोश से तिगुनी-चौगुनी तक पहुँच जाएगी । उदाहरणार्थ– अभिधानचिन्तामणि में सूर्य के ७२ नाम आये हैं, जबकि अमरकोश में ३७, किरण के ३९, अमरकोश में ११; चन्द्र के ३२, अमरकोश में २०; शिव के ७७, अमरकोश में ४८; गौरी के ३२, अमरकोश में १७; ब्रह्मा के ४०, अमरकोश में २०; विष्णु के ७५, अमरकोश में ३९; और अग्नि के ५१, अमरकोश में ३४ नाम हैं ।

इसी प्रकार 'अमरकोश' में अवर्णित चक्रवर्तियों, अर्धचक्रवर्तियों, उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी, काल के तीर्थङ्करों एवं उनके माता-पिता, वर्णचिन्ह्न और वंश आदि का भी साङ्गोपाङ्ग वर्णन प्रस्तुत ग्रन्थ में किया गया है । इसके अतिरिक्त अमरकोश में अल्पसंख्यक नदियों, पर्वतों, नगरों, शाखा नगरों, भोज्य पदार्थों के पर्यायों का वर्णन किया गया हैं, 'अभिधानचिन्तामणि' में लगभग एक दर्जन नदियों; उदयाचल, अस्ताचल, हिमाचल, विंध्य आदि देढ़ दर्जन पर्वतों; गया, काशी आदि सप्त पुरियों के साथ कान्यकुब्ज, मिथिला, निषधा, विदर्भ लगभग देढ़ दर्जन देशों; वाल्मीकि, व्यास, याज्ञवल्क्य आदि ग्रन्थकार; महर्षियों; अश्विन्यादि २७ नक्षत्रों और साङ्गोपाङ्य, ग्रहावयवों के साथ बर्तनों, सेर, घीवर, लड्डू आदि विविध भोज्य पदार्थों तथा हाट-बाजार आदि अनेक नामों के पर्याय दिये गये है । इस ग्रन्थ की महत्वपूर्ण विशिष्टता यह है कि ग्रन्थकारोक्त शैली के अनुसार कविरूढ़ि प्रसिद्ध शतशः यौगिक पर्यायों की रचना करके पर्याप्त संख्या में पर्याय बनाये जा सकते हैं, किन्तु कमरकोश में उक्त या अन्य किसी भी शैली से पर्याय निर्मित करने की चर्चा तक नहीं की गई है ।

ऊपर निर्दिष्ट विवेचन से यह स्पष्ट है कि अमरकोश की अपेक्षा यह श्रेष्ठतम संस्कृत कोश है । अतएव यह कथन सत्य है कि आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने इस ग्रन्थ की रचना कर संस्कृत साहित्य के शब्द-भाण्डार की प्रचुरप रिमाण में वृद्धि की है ।

जहाँ शब्दों के अर्थ में मत-भेद उपस्थित होता है वहाँ हेमचन्द्र अन्य ग्रन्थ तथा ग्रन्थकारों के वचन उद्घृत कर उस मत-भेद का स्पष्टीकरण करते हैं । यथा–हेमचन्द्र ने गूँगे बहरे के लिए 'अनेउमूक' शब्द को व्यवहृत किया है । इनके मत में 'एडमूक' 'अनेकमूक' और 'अवाक्श्रुति' ये तीन पर्याय गूङ्गे-बहरे के लिए आये हैं; इन्होंने मूक तथा अवाक् ये दोनों नाम गूङ्गे के लिए लिखे हैं । 'शैषाश्च' में मूक के लिए जड़ तथा कड़ पर्याय भी बतलाये हैं । इसी प्रसङ्ग में मतभिन्नता बतलाते हुए 'कलमूकस्त्ववाक्श्रुति: इतिहलायुध: कनेडोऽपि अवर्क-रोपि मूक: अनेडमूक; 'अन्धो ह्यनेडमूक: स्यात्' इति भागुरि अर्थात् हलायुध के मत में अन्धे को अनेडमूक कहा है । वैजयन्तीकार ने जड़ को 'अनेडमूक' कहा है और भागुरि ने शठ को अनेडमूक बतलाया है, इस प्रकार अनेडमूक शब्द अने-कार्थक है ।

हेमचन्द्र के संस्कृत कोश 'अभिधानचिन्तामणि' में अनेक शब्द ऐसे आये हैं जो अन्य कोशों में नहीं मिलते । अमरकोश में सुन्दर के पर्यायवाची १२ शब्द दिये हैं तो हेमचन्द्र ने २६ शब्द बतलाये हैं । इतना ही नहीं हेमचन्द्र ने अपनी वृत्ति में 'लडह' देशी शब्द को भी सौन्दर्यवाची माना है । एक ही शब्द के अनेक पर्यायवाची शब्दों को ग्रहण कर उन्होंने अपने इस कोश को खूब समृद्ध बनाया है । सैकड़ों ऐसे नवीन शब्द आये हैं जिनका अन्यत्र पाया जाना सम्भव नहीं । यथा– जिसके वर्ण या पद लुप्त हों, जिसका पूरा उच्चारण नहीं किया गया हो उस वचन का नाम 'ग्रस्तम्'; थूक सहित वचन का नाम 'अम्बूकृतम्' आया है । शुभ वाणी का नाम कल्या, हर्षक्रीड़ा से युक्त वचन के नाम चर्चरी चर्मरी एवं निन्दापूर्वक उपालम्भयुक्त वचन का नाम परिभाषण आया है । जले हुए भात के लिए भिस्सटा और दग्धिका नाम आये हैं । गेहूँ के आटे के लिए समिता (३।६६) और जौ के आटे के लिए चिक्कस (३।६६) नाम आये हैं । नाक की विभिन्न बनावट वाले व्यक्तियों के विभिन्न नामों का उल्लेख भी शब्द सङ्कलन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है । चिपटी नाक वाले के लिए-नतनासिक, अवनाट, अवटीट, अवभ्रट; नुकीली नाकवाले के लिए–खरणस; छोटीनाक वाले के लिए 'न:क्षुद्र' खुर के समान बड़ी नाकवाले के लिए-खुरणस एवं ऊँची नाक वाले के

लिए उन्नस शब्द सङ्कलित किये गये हैं। निर्वीरा (३।१९४) पति-पुत्र से हीन स्त्री; नरमालिनी (३।१९५)–जिस स्त्री के दाढ़ी या मूँछ के बाल हों; भानवीय-दायी आँख; सौम्य–बायी आँख (३।२९६); कुलुकम्-जीभ की मैल, पिप्पिका-दाँत की मैल (३।२९६),धविअम–मृगचर्म का पंखा; गालावर्तम्–कपड़े का पंखा, पौलिन्दा–नाँव के बीच वाला डण्डा। उपर का भाग मङ्ग; सेकपात्र या सेचन (६।५४२)–नाँव के भीतर जमे हुए पानी फेंकने का चमड़े का पात्र; गोपानसी–(४।७५)–छापर छाने के लिए लगायी गयी लकड़ी;–विष्कंभ (४।८९)–जिसमें बाँधकर मथानी घुमायी जाती है वह लकड़ी, रूप्यम् (४।११२-११३)–सोना, चाँदी, ताँबे का सिक्का; घनगोलक–मिश्रित सोना-चाँदी। तन्त्रिका (४।१५७) कूएँ पर रस्सी बाँधने के लिए काष्ट की बनी चरखी, आदि ये शब्द अपने भीतर सांस्कृतिक इतिहास भी समेटे हुए हैं।

हेमचन्द्र का कोश–साहित्य में स्थान– यद्यपि व्याकरण, उपमान, कोश, आप्त-वाक्य, व्यवहार आदि को व्युत्पन्न शब्द का शक्तिग्राहक बतलाया है तो भी उनमें व्याकरण एवं कोश ही मुख्य हैं। इनमें भी व्याकरण के प्रकृति-प्रत्यय-विश्लेषण द्वारा प्रायः यौगिक शब्दों का ही शक्ति ग्राहक होने से सर्वविध रूढ़, यौगिक तथा योगरूढ़ शब्दों का अबाध ज्ञान कोश के द्वारा ही हो सकता है। इस दृष्टि से हेमचन्द्र का स्थान न केवल संस्कृत कोश ग्रन्थकारों में अपितु सम्पूर्ण कोश साहित्यकारों में अक्षुण्ण है। 'शेषाश्च' कहकर अन्य शब्दों का भी इनके कोश में स्थान है। उन्होंने तत्कालीन समय तक प्रचलित एवं व्यवहृत सभी शब्दों को अपने कोश में स्थान दिया है, यह उनके कोश की सर्वश्रेष्ठता का एक कारण है। उनके कोश जिज्ञासुओं के लिए केवल पर्यायवाची शब्दों का सङ्कलनमात्र नहीं है अपितु इसमें भाषा सम्बन्धी बहुत ही महत्वपूर्ण सामग्री सङ्कलित है। समाज और संस्कृति के विकास के साथ भाषा के अङ्ग-उपाङ्गों में भी विकास होता है और भावाभिव्यञ्जना के लिए नये-नये शब्दों की आवश्यकता पड़ती है। कोश नवीन तथा प्राचीन सभी प्रकार के शब्द-समूह का रक्षण और पोषण करता है। हेमचन्द्र ने अधिकाधिक शब्दों को स्थान देते हुए नवीन और प्राचीन का समन्वय उपस्थित किया है। यथा–गुप्तकाल के भुक्ति-प्रान्त, विषय-जिला युक्त-जिले का सर्वोच्च अधिकारी, विषयपति–जिलाधीश, शौल्किक-चुङ्गी विभाग का अध्यक्ष, गौल्मिक–जङ्गल विभाग का अध्यक्ष, बलाधिकृत–सेनाध्यक्ष, महा-बलाधिकृत्–फील्ड मार्शल, अक्षयपटलाधिपति–रेकार्ड कीपर–इत्यादि नये शब्द इसमें ग्रहण किये गये हैं।

हेमचन्द्र के 'अभिधानचिन्तामणि कोश' के स्वोपज्ञ वृत्ति में अनेक प्राचीन आचार्यों के प्रमाण आये हैं। अनेक शब्दों की ऐसी व्युत्पत्तियाँ भी उपस्थित की गयी हैं जिनसे उन शब्दों की आत्म-कथा लिखी जा सकती है। शब्दों में परिवर्तन किस प्रकार होता रहा है; अर्थ विकास की दिशा कौनसी रही है; यह भी वृत्ति से स्पष्ट होता है। उदाहरणार्थ-भाष्यते भाषा, 'वण्यतेवाणी' श्रूयते श्रुतिः, विगतो धवो भर्ता अस्याः विधवा' समुखं लपनं संलापः, सम्मुखं कथनं सङ्कथा, पण्डते जानाति इति पण्डितः पण्डा बुद्धिः सञ्जाता अस्येति वा, इत्यादि। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि शब्दों की व्युत्पत्तियाँ कितनी सार्थक हैं। अतः स्वोपज्ञवृत्ति भाषा के अध्ययन के लिए बहुत आवश्यक है। शब्दों की निरुक्ति के साथ उनकी साधनिका भी अपना विशेष महत्व रखती है।

अभिधानचिन्तामणि और भाषा-विज्ञान – भाषा-विज्ञान की दृष्टि से हेमचन्द्र का 'अभिधानचिन्तामणि कोश' बड़ा मूल्यवान है। हेमचन्द्र के शब्दों पर प्राकृत, अपभ्रंश एवं अन्य देशी भाषाओं के शब्दों का पूर्णतः प्रभाव परिलक्षित होता है। अनेक शब्द तो आधुनिक भाषाओं में दिखलायी पड़ते हैं। कुछ शब्द भाषा-विज्ञान के समीकरण, विषमीकरण इत्यादि सिद्धान्तों से प्रभावित हैं।

उदाहरणार्थ – १. पोलिका (३।६२)–गुजराती में पोणी, बृजभाषा में पोनी, भोजपुरी में पिउनी, हिन्दी–पिउनीं.

२. मोद को लड्डुकश्च (शेष ३।६४)–हिन्दी–लड्डू, गुजराती–लाडू, मराठी तथा राजस्थानी–लाडू,

३. चोटी (३।३३९)–हिन्दी–चोटी, गुजराती–चोणी, राजस्थानी–चोड़ी या चुणिका,

४. समौ कन्दुकगेन्दुकौ (३।३५३)–हिन्दी–गेन्द, ब्रजभाषा–गेन्द, मराठी-गेन्द

५. हेरिको - गूढ़ पुरुषः (३।३९७)–ब्रजभाषा में–हेरहेरना, गुजराती–हेर

६. तरवारि (३।४४६)–ब्रजभाषा–तरवार, मराठी–तलवार; गुजराती–तरवार

७. जङ्गलो निर्जलः (४।१९)–ब्रजभाषा, हिन्दी तथा मराठी–जंगल

८. चालनी तितऊ (४।८४)-ब्रजभाषा तथा गुजराती–चालनी हिन्दी–चलनी तथा छलनी, राजस्थानी–चालनी.

इस प्रकार भाषा-विज्ञान की दृष्टि से, सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से, शब्द-ज्ञान की दृष्टि से हेमचन्द्र का 'अभिधानचिन्तामणि कोश' सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वाङ्गसुन्दर है। फिर भी अपने कोश की पूर्णता हेतु उन्होंने परिशिष्ट रुप दो और कोश लिखे। तदनन्तर देशी-नाम-माला लिखकर शब्द कोश की समाप्ति की

है ।

अनेकार्थ सङ्ग्रह–आचार्य हेमचन्द्र ने अपना 'अभिधानचिन्तामणि कोश' ''अनेकार्थ सङ्ग्रह'' नामक परिशिष्ट कोश लिखकर पूरा किया है । अनेकार्थ सङ्ग्रह में ७ काण्ड और १६३९ श्लोक हैं[1] । अनुक्रम निम्नानुसार है–(१) एक-स्वर काण्ड-श्लोक १७, (२) द्वि-स्वर काण्ड-श्लोक ६१७, (३) त्रि-स्वर काण्ड-श्लोक ८१४, (४) चतुस्वर काण्ड-श्लोक ३५६, (५) पञ्चम् स्वर काण्ड-श्लोक ५७, (६) षट्स्वर काण्ड-श्लोक ७ तथा (७) परिशिष्ट काण्ड-श्लोक ६८ ।

प्रारम्भिक श्लोक में ही तीर्थङ्करों को प्रणाम करते हुए उन्होंने कहा है कि अब वे ६ अध्यायों में अनेकार्थ सङ्ग्रह की रचना करते हैं । जिसमें एक ही शब्द के अनेक अर्थ दिये गये हैं । अनेकार्थक शब्दों के इस सङ्ग्रह में प्रारम्भ एका-क्षर शब्दों से और अन्त षडक्षर शब्दों से होता है । शब्दों का क्रम आदिम अकारादि वर्णों तथा अन्तिम ककारादि व्यञ्जनों के अनुसार चलता है । 'अभि-धान चिन्तामणि' में एक ही अर्थ के अनेक पर्यायवाची शब्दों का सङ्ग्रह है किन्तु अनेकार्थ सङ्ग्रह में एक ही शब्द के अनेक अर्थ दिये हैं ।

आचार्य हेमचन्द्र के शिष्य महेन्द्रसूरि ने उनके नाम में अनेकार्थ सङ्ग्रह पर वृत्ति लिखी । वृत्ति के द्वितीय अध्याय के अन्त में स्वयं महेन्द्रसूरि ही इस बात को स्वीकार करते हैं । इन कोशों से हेमचन्द्र ने संस्कृत कोशकार के रूप में कीर्ति प्राप्त की । हेमचन्द्र के समय में तथा उनके बाद भी उनके कोश प्रमाण माने जाते थे । यह कई उद्धरणों से सिद्ध होता है । उदाहरणार्थ–

''हेमचन्द्रश्च रुद्रश्चामरोऽयं सनातन:''

देशी नाममाला – जिस प्रकार 'शब्दानुशासन' में हेमचन्द्र ने प्राकृत एवं अपभ्रंश का व्याकरण लिखकर शब्दानुशासन को पूर्णता प्रदान की उसी प्रकार कोश साहित्य में भी उन्होंने 'देशी नाममाला' लिखकर कोश साहित्य को पूर्णता दी । 'देशी नाममाला' के अन्त में हेमचन्द्र ने स्पष्ट लिखा है कि उन्होंने अपने व्याकरण के परिशिष्ट के रूप में उक्त कोशों की रचना की । वृत्ति में उन्होंने लिखा है कि शब्दानुशासन के ८ वें अध्याय का परिशिष्ट देशी नाममाला कोश है । अत: यह स्पष्ट है कि आचार्य हेमचन्द्र के मत से उक्त कोश उनके व्याकरण से सम्बन्धित है । 'देशी नाममाला' उनके प्राकृत व्याकरण का ही एक भाग है । 'काव्यानुशासन' में भी उन्होंने शब्दानुशासन शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में ही किया है जिसमें व्याकरण तथा कोश दोनों का अन्तर्भाव हो जाता है ।

१–एकादि पंचस्वराव्ययाभिधः परिशिष्ठः काण्डः –अनेकार्थ सङ्ग्रह ।

देशी नाममाला में ३९७८ देशी शब्दों का सङ्कलन किया गया है। इसके आधार पर आधुनिक भाषाओं के शब्दों की साङ्गोपाङ्ग व्युत्पत्ति लिखी जा सकती है। वास्तव में देशी नामों का सङ्ग्रह एवं सुव्यवस्थित विभाजन बड़ा ही कठिन कार्य था। हेमचन्द्र स्वयं कहते हैं कि देश्य शब्दों का सङ्ग्रह कठिन कार्य है। सङ्ग्रह करने पर भी उनका ग्रहण करना और भी कठिन है और इसीलिए हेमचन्द्र ने यह कार्य हाथों में लिया।

हेमचन्द्र ने देशी शब्द स्त्रीलिङ्ग में लिखकर उसे बोली जाने वाली भाषा से सम्बद्ध किया है। यह बोली जाने वाली भाषा संस्कृत अथवा प्राकृत व्याकरण के परे थी। इन देशी शब्दों की व्युत्पत्ति संस्कृत से नहीं हो सकती थी। अतः इसे निरर्थक शब्दों का सङ्ग्रह कहकर डा० बूलर महोदय ने हेमचन्द्र की आलोचना की है, किन्तु डा० बूलर आलोचना करते समय हेमचन्द्र के मन्तव्य को समझ नहीं पाये। प्रो० मुरलीधर बेनर्जी ने स्वसम्पादित 'देशी नाममाला' के प्रस्तावना में इस प्रश्न पर युक्ति सङ्गत विचार किया है तथा हेमचन्द्र के आलोचकों को समुचित उत्तर दिया है। 'देशी नाममाला' में लिखित उदाहरणों के सम्बन्ध में प्रो० पिशेल ने उन्हें मूर्खतापूर्ण बतलाया है तथा कहा कि उनसे कोई सयुक्तिक अर्थ नहीं निकल सकता। प्रो० बेनर्जी ने उत्तर देते हुए लिखा है कि यदि गाथाओं को शुद्ध रूप में पढ़ा जाय तो उनसे ही सुन्दर अर्थ निकलता है। प्रत्येक रसिक उन गाथाओं को सुन्दर कविता समझकर पढ़ता है।[1] फिर भी अनेक गाथाओं के संशोधन की अभी भी आवश्यकता है।

१– "These examples are either void of all sense or of an incredible stupidity............It was most disgusting task to make out the sense of these examples, some of which have remained rather obscure to me."

(P. 8. Introduction to Desinammala B. S. S.)

"If the illustrative gathas of Hemchandra which have appeared to Pischel as examples of 'extreme absurdity' or non-sense are read correcting the errors made by the copyists in the manner explained above, they will yield very good sense. A few examples of such corrected readings are given below to make the point clear (P. P. XLIII to LI). After discussing this point in detail Prof. Banerjee comes

देशी नाममाला (रयणावलि) – आचार्य हेमचन्द्र का देशी शब्दों का यह शब्द-कोश बहुत महत्वपूर्ण और उपयोगी है। प्राकृत-भाषा का यह शब्द-भाण्डार तीन प्रकार के शब्दों से युक्त है–तत्सम, तद्‌भव और देशी। तत्सम वे शब्द हैं, जिनकी ध्वनियाँ संस्कृत के समान ही रहती हैं, जिनमें किसी भी प्रकार का वर्ण-विकार उत्पन्न नहीं होता, जैसे नीर, कङ्क, कण्ठ, ताल, तीर, देवी आदि। जिन शब्दों को संस्कृत ध्वनियों में वर्ण लोप, वर्णागम, वर्ण-विकार, अथवा वर्ण-परिवर्तन के द्वारा ज्ञात कराया जाए, वे तद्‌भव कहलाते हैं; जैसे अग्र–अग्ग, इष्ट–इठ्ठ, धर्म–धम्म, गज–गय, ध्यान–धाण, पश्चात्–पच्छा आदि। जिन प्राकृत शब्दों की व्युत्पत्ति–प्रकृति प्रत्यय विधान सम्भव न हो और जिसका अर्थ मात्र रूढ़ि पर अवलम्बित हो तो इन शब्दों को देश्य या देशी कहते हैं, जैसे अगय–दैत्य, आकासिय–पर्याप्त, इराव–हस्ति, पलाविल–धनाढ्य, छासी–छाश, चोढ़–बिल्व। देशी नाममाला में जिन शब्दों का सङ्कलन किया गया है उनका स्वरूप निर्धारण स्वयं आचार्य हेम ने किया है।

जो शब्द न तो व्याकरण से व्युत्पन्न हैं और न संस्कृत कोशों में निबद्ध हैं तथा लक्षणा-शक्ति के द्वारा भी जिनका अर्थ प्रसिद्ध नही है, ऐसे शब्दों का सङ्कलन इस कोश में करने की प्रतिज्ञा आचार्य हेम ने की है। "देस विसेस पसिद्धीह भण्णभाणा अणन्तया हुन्ति। तम्हा अणाइपाइ अपयट्ट भासा विसेसओ देशी" देशी शब्दों से यहाँ महाराष्ट्र, विदर्भ, आभीर आदि प्रदेशो में प्रचलित शब्दों का सङ्कलन भी नहीं समझना चाहिये। देश विशेष में प्रचलित शब्द अनन्त हैं। अतः उनका सङ्कलन सम्भव नहीं हैं। अनादि काल से प्रचलित प्राकृत भाषा ही देशी है। कोषकार का 'देशी' से अभिप्राय स्पष्टतः उन शब्दों से हैं जो प्राकृत साहित्य की भाषा और उसकी बोलियों में प्रचलित हैं; तथापि न तो व्याकरणों से या अलङ्कार की रीति से सिद्ध होते और न संस्कृत के

---

to the conclusion, "As the gathas when read in this way give a good sense, they can no longer be regarded as examples of 'incredible stupidity'. They will be appreciated, it is hoped by every lover of poetry as a remarkable feat of ingenuity worthy of Hemchandra and far beyond the capacity of his disciples to whom Pischel is inclined to ascribe them" (P LI)

कोषों में पाये जाते हैं। इस महान् कार्य में उद्यत होने की प्रेरणा उन्हें कहाँ से मिली—यह हेमचन्द्र ने दूसरी गाथा और उसकी स्वोपज्ञ टीका में स्पष्टीकरण कर दिया है। जब उन्होंने उपलभ्य निःशेष देशी शब्दों का परिशीलन किया, तब उन्हें ज्ञात हुआ कि कोई शब्द है तो साहित्य का, किन्तु उसका प्रयोग करते-करते कुछ और ही अर्थ हो रहा है, किसी शब्द में वर्णों का अनुक्रम निश्चित नहीं है, किसी के प्राचीन और वर्तमान देश-प्रचलित अर्थ में विरोध है तथा कहीं गतानुगति से कुछ का कुछ अर्थ होने लगा है। तब आचार्य को यह आकुलता उत्पन्न हुई कि अरे, ऐसे अपभ्रष्ट शब्दों के कीचड़ में फँसे हुए लोगों का किस प्रकार उद्धार किया जाय। बस इसी कुतूहलवश वे इस देशी शब्द सङ्ग्रह के कार्य में प्रवृत्त हो गये। हेमचन्द्र ने उपर्युक्त प्रतिज्ञा-वाक्य में बताया है कि जो व्याकरण से सिद्ध न हों, वे देशी शब्द हैं; और इस कोश में इस प्रकार के देशी शब्दों के सङ्कलन की प्रतिज्ञा की गयी है। पर इसमें आधे से अधिक शब्द ऐसे हैं, जिनकी व्युत्पत्तियाँ व्याकरण के नियमों के आधार पर सिद्ध हो जाती हैं; जैसे अभयण्णिग्गमो—अमृतानिर्गम। हेमचन्द्र ने संस्कृत शब्द कोश में इस शब्द के न मिलने के कारण ही इसे देशी शब्दों में स्थान दिया है। इसी प्रकार डीला, हलुअ, अइहारा, थेरो शब्द देशी नाममाला में देशी माने गये हैं। और प्राकृत व्याकरण में संस्कृत निष्पन्न।

इस कोश में ४०५८ शब्द संकलित हैं—इसमें तत्सम शब्द १८०, गर्भित तद्भव—१८५०, संशययुक्त तद्भव—५२८, अव्युत्पादित प्राकृत शब्द—१५००, हैं।

वर्णक्रम से लिखे गये इस कोश में ८ अध्याय हैं और कुल ७८३ गाथायें हैं। उदाहरण के रूप में इसमें ऐसी अनेक गाथायें उद्धृत हैं जिनमें मूल में प्रयुक्त शब्दों को उपस्थित किया गया है। इन गाथाओं का साहित्यिक मूल्य भी कम नहीं है। कितनी ही गाथाओं में विरहणियों की चित्तवृत्ति का सुन्दर विश्लेषण किया गया है। उदाहरणों की गाथाओं का रचयिता कौन है, यह विवादास्पद है। शैली और शब्दों के उदाहरणों को देखने से ज्ञात होता है कि इनके रचयिता भी आचार्य हेम होने चाहिये। शब्द-विवेचन के सम्बन्ध में अभिमान चिह्न, अवन्ति, सुन्दरी, गोपाल, देवराज, द्रोण, धनपाल, पाठोदूखल, पादलिप्ताचार्य, राहुलक, शाम्ब, शीलङ्क और सातवाहन इन १२ शास्त्रकारों तथा सारतर देशी और अभिमान चिह्न इन दो देशी शब्दों के सूत्र पाठों के उल्लेख मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि देशी शब्दों के अनेक कोश ग्रन्थकार के सम्मुख थे।

कोश में सङ्ग्रहीत नामों की संख्या प्रो० बेनर्जी के अनुसार ३९७८ है जिनमें यथार्थ देशी वे केवल १५०० मानते हैं, शेष में १०० तत्सम, १८५० तद्भव और ५२८ संशयात्मक तद्भव शब्द बतलाते हैं। इस कोश की निम्नांकित विशेषताएँ है—

१– सुन्दर साहित्यिक उदाहरणों का सङ्कलन किया गया है।

२– सङ्कलित शब्दों का आधुनिक भारतीय भाषाओं के साथ सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है।

३– ऐसे शब्दों का सङ्कलन किया है, जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।

४– ऐसे शब्द सङ्कलित हैं, जिनके आधार पर उस काल के रहन-सहन और रीति-रिवाजों का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

५– परिवर्तित अर्थवाले ऐसे शब्दों का सङ्कलन किया गया है, जो सांस्कृतिक इतिहास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण और उपयोगी हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य– उदाहृत गाथाओं से अनेक गाथाओ का सरसता, भावतरलता एवं कलागत सौन्दर्य की दृष्टि से गाथा-सप्तशती के समान मूल्य है। इनमें शृंगार, रतिभावना, नख-शिख चित्रण, धनिको के विलासभाव, रण-भूमि की वीरता, संयोग, वियोग, कृपणों की कृपणता, प्रकृति के विभिन्न रूप, दृश्य, नारी की मसृण और मांसल भावनाएँ एवं नाना प्रकार के रमणीय दृश्य अङ्कित हैं। विश्व की किसी भी भाषा के कोश में इस प्रकार के सरस पद्य उदाहरण के रूप में नहीं मिलते। कोशगत शब्दों का अर्थ उदाहरण देकर अवगत करा देना हेमचन्द्र की विलक्षण प्रतिभा का ही कार्य है।

उदाहरणार्थ– आयावलो य बालयवम्मि आवालयं च जलणियडे।
आडोवियं च आरोसियम्मि आराइयं गहिए॥ १–७०

आयवली–बालआतप, आलालयं–जलनिकटं, आडोवियं–आरोपितम् आराइयं–ग्रहितम् अर्थ में प्रयुक्त है, इन शब्दों का यथार्थ प्रयोग अवगत करने के लिए उदाहरण में निम्नांकित गाथा उपस्थित की गयी है।

आयावले पसरिए किं आडोवसि रहंङ! णियदहयं।
आराइय विसकन्दो आवालठियं पसाएसु॥ ७० प्रथम वर्ग

हे चक्रवाल! सूर्य के बाल आतप के फैल जाने पर, उदय होने पर, तुम अपनी स्त्री के ऊपर क्यों क्रोध करते हो? तुम कमलनाल लेकर जल के निकट बैठी हुई अपनी भार्या को प्रसन्न करो। इस प्रकार ७५ प्रतिशत शृंगारात्मक गाथाएँ हैं। ६५ गाथाएँ कुमारपाल की प्रशंसा विषयक हैं तथा शेष अन्य हैं।

आधुनिक भाषा-शब्दों से साम्य

देशी नाममाला का महत्व भाषा-विज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। भारत की प्रान्तीय भाषाओं पर देशी नाममाला से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। कोश में ऐसे अनेक शब्द सङ्ग्रहीत हैं जिनसे मराठी, कन्नड़, गुजराती, अवधी, ब्रजभाषा और भोजपुरी के शब्दों की व्युत्पत्ति सिध्द की जा सकती है। उदाहरणार्थ–अम्मा (१।५) हिन्दी की विभिन्न ग्रामीण बोलियों में यह इसी अर्थ में प्रयुक्त है। चुल्लीह उल्लि-उद्दाणा (१।८७) भोजपुरी, राजस्थानी, ब्रजभाषा और अवधी में चूल्हा, गुजराती में चूलो, बुन्देली में चूलौ और खड़ी बोली में चूल्हा, ओड्ढर्ण उत्तरयिम् (१।१५५) राजस्थानी-औढ़नी ब्रजभाषा, अवधी, गुजराती-ओढ़नी। कट्टारी क्षुरिका-(२।४) हिन्दी की सभी ग्रामीण बोलियों में कटारी, संस्कृत कर्तरी से सम्ब्रन्ध किया जा सकता है। कन्दोमूल-साकम् (२।१) हिन्दी, बंगला तथा मैथिली में कन्द, संस्कृत में भी प्रयुक्त। खड्डा (खनि) (२।६६) हिन्दी में खड्डा। चाउला (तण्डूला) (३।८) हिन्दी में चावल। ढँकनी पिधानिका (४।१४) हिन्दी में ढकनी।

इसी प्रकार संस्कृति सूचक शब्द भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। उदाहरणार्थ–केश-रचना, बव्वरी (६।९०)–सामान्य केश-रचना,

फुण्टा (६।८४)-रुखे केश बाँधने के लिए,

ओलाग्गिअ (१।१७२)-जूड़ा बाँधने के लिए;

कुम्भी (२।३४) सुन्दर ढंग से सजाये गये **केश** विन्यास,

ढुमन्तओ (५।४७) रुखे बाल लपेटना,

अणराहो (१।२४) सिर पर रंगीन कपड़ा लपेटना,

नीरंगी (५।३१) अवगुण्ठन,

वसन्तोत्सव (फग्गू) ६।८२, आर्लुकी (१।५३) लुकाछिपी का खेल,

अम्बोच्ची-पुष्पलावी (१।९) पुष्पचयन करने वाली मालिन

अम्बसमी (१।३७) बासा भोजन, आमलयं (१।६७) अलङ्करण करने का घर

उआली (१।९०) सोने के बने कर्णाभूषण, उल्लरयं (१।१९०) कौड़ियों के आभूषण,

अवरेइआ (१।७१) शराब वितरित करने का बर्तन, डोंगिली (४।५२) पानदान,

वण्णयं (७।३७) चन्दनचूर्ण।

इस प्रकार यह प्राकृत- कोश साहित्य और संस्कृति विषयक शोध और

अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। देशी शब्दों के सम्बन्ध की सीमाओं का कोशकार ने बड़ी सावधानी से पालन किया है, जिसका कुछ अनुमान हमें उनकी स्वयं बनायी हुई टीका के अवलोकन से होता है। यथा– आरम्भ में ही अज्ज शब्द ग्रहण किया है उसका प्रयोग 'जिन' के अर्थ में बतलाया है। टीका में प्रश्न उठाया है कि अज्ज तो स्वामी का पर्यायवाची आर्य शब्द से सिद्ध होता। इसका उत्तर उन्होंने यह दिया है कि उसे यहां ग्रन्थ के आदि में मंगलवाची समझ कर ग्रहण कर लिया है। १८ वीं गाथा में अविणयवर शब्द जार के अर्थ में ग्रहण किया गया है। टीका में कहा है कि इस शब्द की व्युत्पत्ति अविनय वर से होते हुए भी संस्कृत में उसका यह अर्थ प्रसिद्ध नहीं है, और इसलिए उसे यहाँ देशी माना गया है। ६७ वीं गाथा में आरणाल का अर्थ कमल बतलाया गया है, टीका में कहा गया है कि उसका वाचिक अर्थ यहाँ इसलिये नहीं ग्रहण किया गया क्योंकि वह संस्कृतोद्भव है। 'आसियअ' लोहे के घड़े के अर्थ में बतलाकर टीका में कहा है कि कुछ लोग इसे अयस् से उत्पन्न आयसिक का अपभ्रंश रूप भी मानते हैं। उनकी संस्कृत टीका में इस प्रकार से शब्दों के स्पष्टीकरण व विवेचन के अतिरिक्त गाथाओं के द्वारा देशी शब्दों के प्रयोग के उदाहरण भी दिये हैं। ऐसी गाथायें ६३४ पायी जाती हैं।

पूर्व ग्रन्थों के समान इस ग्रन्थ में भी हेमचन्द्र ने पूर्व लेखकों का समुचित उपयोग किया है। देशी नाममाला में उन्होंने २० ग्रन्थ-कर्ताओं का एवं दो कोशों का उल्लेख किया है। इन ग्रन्थ-कर्ताओं में एक नाम अवन्ति सुन्दरी का है। सम्भवतः यह पण्डित राजशेखर की पत्नी होगी जिन्हें राजशेखर ने अपनी 'काव्य-मीमांसा' में एक अधिकारिणी के रूप में दिखाया है। हेमचन्द्र ने देशी नाममाला में धनपाल, देवराज, गोपाल, द्रोण, अभिमान-चिन्ह्न, पादलिप्ताचार्य, शीलाङ्क नामक कोशकारों का उल्लेख किया है। धनपाल की 'पाइयलच्छी नाममाला' उपलब्ध है।

४– **निघण्टु**– अभिधान चिन्तामणि कोश, अनेकार्थ संग्रह, देशी नाममाला सम्पादन करने के पश्चात् अन्त में आचार्य हेमचन्द्र ने 'निघण्टुशेष' नामक वनस्पति कोश की रचना की। यह उनके प्रारम्भिक श्लोक से विदित होता है[१]। यह वनौषधि का एक कोश है। निघण्टु में भी ६ काण्ड हैं तथा ३९६ श्लोक हैं। इनमें सभी वनस्पतियों के नाम दिये गये हैं। इसके वृक्ष, गुल्म, लता, शाक, तृण और धान्य ६ काण्ड हैं। वैद्यक-शास्त्र के लिए भी इस कोश की अत्यधिक उपयोगिता है। काण्ड विवरण निम्न अनुसार है–

१ —निघण्टुशेष–प्रारम्भिक श्लोक

निघण्टु शेष : १. वृक्षकाण्ड श्लोक १८९०–२०७०,
२. गुल्म ,, ,, २०७१–२१७५,
३. लता ,, ,, २१७६–२२२०,
४. शाक ,, ,, २२२१–२२५२,
५. तृण ,, ,, २२५३–२२७०,
६. धान्य ,, ,, २२७१–२२८५,

इस कोश पर अभी तक कोई वृत्ति प्राप्त नहीं होती है। इस कोश से हेमचन्द्र का शब्द-शास्त्र का कार्य सम्पूर्ण होता है। पञ्चाङ्ग सहित सिद्ध हेम शब्दानुशासन (उनके वृत्तियों सहित) तथा वृत्ति सहित तीनों कोश एवं 'निघण्टु शेष' यह सब मिलाकर हेमचन्द्र का शब्दानुशासन पूर्ण होता है। इस प्रकार हेमचन्द्र ने गुजरात के ज्ञान-पिपासु अध्ययनार्थी के लिए–और इस माध्यम से भारत के ज्ञानेच्छु पाठकों के लिये, शब्द-शास्त्र के अध्ययनार्थ सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थों की रचना की। विशेष ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक पाठकों के लिए उन्होंने विस्तृत जानकारी से युक्त वृत्तियाँ लिखीं। अध्ययन के लिए हेमचन्द्र के ग्रन्थों का महत्व सदैव अक्षुण्ण रहेगा। इस प्रकार चालुक्य नरेश सिद्धराज जयसिंह की इच्छा उसके वैभव और उच्च स्तर के अनुसार कार्यरूप में परिणत हुई और साहित्य की प्रत्येक शाखा में सिद्धराज जयसिंह के आश्रय में गुजरात ने सर्वोत्कृष्टता प्राप्त की। हम कह सकते हैं कि सिद्धराज जयसिंह ने न केवल आचार्य हेमचन्द्र के रूप में एक जीवन्त विश्वविद्यालय खड़ा किया अपितु अध्ययन के ज्ञानपूर्ण ग्रन्थों का समूह भी प्रस्तुत किया। एक गुजराती कवि ने 'हेम' शब्द पर कोटि लिखते हुए ठीक ही कहा है।

'हेम प्रदीप प्रगटावी सरस्वतीनो सार्थकय की थुं
निज नामनु सिद्धराजे' अर्थात् सिद्धराज ने सरस्वती का हेम प्रदीप जलाकर (सुवर्ण दीपक अथवा हेमचन्द्र) अपना 'सिद्ध' नाम सार्थक कर दिया[1]।

—o—

१— रानको देवी काव्य–स० रामनारायण पाठक।

अध्याय : ६

दार्शनिक एवं धार्मिक-ग्रन्थ

अ. भारतीय दर्शन में जैन-दर्शन का स्थान– ईसा की पाँचवी-छठीं शताब्दी पूर्व वैदिक कर्म-काण्ड के विरोध में एक महान् क्रान्ति का सूत्रपात हुआ, जिसके नेता थे महावीर स्वामी और गौतम बुद्ध। धर्म के क्षेत्र में यह वैमनस्य साहित्य के क्षेत्र में अत्यन्त शुभ सिद्ध हुआ। भारतीय षड् दर्शन की अभ्युन्नति में भी इस क्रान्ति का हाथ रहा है। इस दृष्टि से भारतीय इतिहास में एवं भारतीय दर्शन में जैन-धर्म एवं दर्शन का अपना विशिष्ट स्थान है। उस समय पारस्परिक स्पर्धा के कारण साहित्य के अतिरिक्त सामाजिक जीवन में भी अद्भुत, उन्नति हुई। भारत के धार्मिक इतिहास में जैन-धर्म का प्रमुख स्थान है। भारतीय साहित्य को प्रेरणा, प्रोत्साहन और प्रगति प्रदान करने में जैन-धर्मावलम्बी आचार्यों का प्रमुख योग रहा है। अपने आरम्भिक काल में जैन-धर्म को विरोध का सामना करना पड़ा किन्तु उत्तरोत्तर उसमें समन्वय एवं सामञ्जस्य की भावना का विकास हुआ और आज भारत का सारा जन-मानस जैन-धर्म को परमादर की दृष्टि से देखता है।

भारत के धार्मिक इतिहास में प्रगतिशील धर्मों में जैन-धर्म की गणना होती है। अतः इस देश की संस्कृति के निर्माण में जैन-दर्शन का महत्वपूर्ण स्थान है। सामान्यतः जैन-धर्म और हिन्दू-धर्म में कोई विशेष अन्तर नहीं है। जैन-धर्म केवल वैदिक कर्म-काण्ड के प्रतिबन्धों एवं उसके हिंसा सम्बन्धी विधानों को स्वीकार नहीं करता है। वेदों में वर्णित अहिंसा और तप को ही जैनों ने अपनाया है। साधना और वैराग्य की भावना उन्होंने वेदान्त से ग्रहण की। श्रमण पर-

म्परा का जन्मदाता जैन-धर्म है। सत्यतः दो चिन्तन धारायें बहती हैं। पहली परम्परा-मूलक ज्ञान के संरक्षित स्वरूप के अनुगमन पर जोर देती है। वह ब्राह्मण-वादी परम्परा है। दूसरी चिन्तनधारा प्रगति-शील है, ज्ञान को विकास-शील मानती है, इसमें यज्ञ के स्थान पर आचरण को महत्व है, देवयजन के ऊपर मनुष्यत्व को महत्व है, निः श्रेयस के लिये मानवीय पुरुषार्थ का महत्व है, यह श्रामण्य परम्परा कहलाती है। जैन-धर्म का त्रिरत्न—सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्र हिन्दू-धर्म के भक्तियोग, ज्ञानयोग तथा कर्मयोग का ही रूपान्तर है। इस प्रकार जैन-धर्न मूलतः हिन्दू-धर्म, विशेषतः वैष्णव सम्प्रदाय के, अधिक पास है। दार्शनिक दृष्टिकोण मे भी ब्राह्मणों के साँख्य और योग-दर्शनों के निरी-श्वरवाद से जैन-धर्म की पर्याप्त समानता है। सृष्टि और ब्रह्म की पृथक् सत्ता का जितना समर्थक कपिल का साँख्य है, उतना ही जैन-दर्शन भी। वेदान्त का मुमुक्षु या जीवन्मुक्त ही जैन-दर्शन का सिद्धजीव एवं अर्हत् है। दोनों दर्शन आत्मा की सत्ता की स्वीकार करते हैं, और ब्रह्म-साक्षात्कार के लिए आत्मा के विकास पर जोर देते हैं। आत्मा और मोक्ष के स्वरूप सम्बन्ध दृष्टि में रखकर विचार किया जाय तो जैन-दर्शन उतना ही आस्तिक ठहरता है जितना कि ब्राह्मण दर्शन। जैन-दर्शन आत्मा का चरमोद्देश्य साधना एवं तपश्चर्या को बताता है, वेदान्त में भी जीवन्मुक्त के लिए ब्रह्म तक पहूँचना अनिवार्य बताया गया है।

जैन-परम्परा अत्यन्त विशाल एवं विस्तृत है। जैन-मत का अविर्भाव वैदिक मत के बाद में हुआ। दिगम्बर श्वेताम्बरों का आविर्भाव ३०० ई० पू० में हो चुका था। भद्र, साहूँ आदि दिगम्बर सम्प्रदाय के प्रवर्तक एवं स्थूलभद्र आदि श्वेताम्बर सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं। स्थूलभद्र का परलोकवास २५२ ई० पू० में हो चुका था। मध्ययुगीन न्याय-शास्त्र के इतिहास में जैनों का एक विशेष स्थान है। अकलङ्क का 'न्याय वार्तिक' स्वामी विद्यानन्द का 'श्लोक वार्तिक', समन्तभद्र की 'आप्त मीमांसा', हरिभद्रसूरि के 'षड्दर्शन समुच्चय' मल्लिसेन की 'स्याद्वाद मंञ्जरी' इत्यादि ग्रन्थों में नैयायिक दृष्टि से जैन सिद्धा-न्तों का प्रतिपादन किया गया है। जैन-धर्म की सबसे बड़ी देन 'स्यादवाद वाद' है। उसमें सविकल्प मानवीय ज्ञान की अल्पना की अनुभूति कूट-कूट कर भरी है। वस्तुतः वीतरागता, सम्पूर्ण वीतरागता जैन-धर्म का लक्ष्य है।

जैन-धर्म की अनेक शाखायें और उप-शाखायें हैं। जैन-धर्म की परम्परा भारत में आज भी जीवित है। इसका एक मात्र कारण यह है कि भारतीय धर्म एवं दर्शन में जैन-धर्म का एक विशिष्ट स्थान है। समन्वयवाद, जिसे अनेकान्त-

वाद से पुकारा जाता है—का साक्षात् दर्शन प्रदान कर जैन-दर्शन ने भारतीय दर्शन में अपना अन्यतम स्थान बना लिया है। श्रामण्य विचार-परम्परा का जन्मदाता होने के कारण और श्रमण संस्कृति का प्रवर्तक होने के कारण आज जैन-धर्म श्रमण प्रधान—जिसमें आचरण को प्रमुखता दी गयी है—बन गया है।

हेमचन्द्र के दार्शनिक ग्रन्थ – प्रमाण मीमांसा

आचार्य हेमचन्द्र ने अपनी सम्पूर्ण साहित्य सर्जना एक विशेष हेतु की पूर्ति अर्थात् जैन-धर्म के प्रचार हेतु की है। अत: उनके प्रत्येक ग्रन्थ में—फिर वह काव्य हो या स्तुति हो या पुराण हो, जैन धर्म एवं दर्शन के उच्च तत्व रत्न अंतर्निहित हैं। उनकी 'वीतराग–स्तुति' अथवा 'द्वात्रिंशिका' काव्य, सभी में दार्शनिक तत्व गुथे हैं। फिर भी विशुद्ध दार्शनिक कोटि में गणनीय उनका एक मात्र अपूर्ण ग्रन्थ है—और वह है उनका 'प्रमाण मीमांसा' नामक ग्रन्थ।

आचार्य हेमचन्द्र के दर्शन ग्रन्थ—'प्रमाण मीमांसा' में यद्यपि उनकी मूल स्थापनाएँ विशिष्ट नहीं है फिर भी जैन प्रमाण-शास्त्र को सुदृढ़ करने में, अकाट्य तर्कों पर सुप्रतिष्ठित करने में'प्रमाण मीमांसा'का विशिष्ट स्थान है। उनके द्वारा रचित 'प्रमाणमीमांसा' प्रमाण प्रमेय की साङ्गोपाङ्ग जानकारी प्रदान करने में सक्षम है। अनेकान्तवाद, प्रमाण, पारमार्थिक प्रत्यक्ष की तात्विकता इन्द्रिय-ज्ञान का व्यापार-क्रम, परोक्ष के प्रकार, अनुमानावयवों की प्रायोगिक व्यवस्था, निग्रह-स्थान, जय-पराजय व्यवस्था, सर्वज्ञत्व का समर्थन आदि मूल विषयों पर इस लघु ग्रन्थ में विचार किया गया है।

कलि-काल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्रसूरि की अन्तिम कृति 'प्रमाण मीमांसा' का प्रज्ञाचक्षु पं० श्री सुखलाल जी द्वारा सम्पादन किया गया तथा सिंधी जैन ग्रन्थमाला के द्वारा ई० स० १६३६ में प्रकाशन हुआ। 'प्रमाण मीमांसा' सूत्र-शैली का ग्रन्थ है। यह अक्षपाद गौतम के सूत्रों की तरह पांच अध्यायों में विभक्त है और प्रत्येक अध्याय कणाद या अक्षपाद के अध्याय के समान दो आन्हिकों में परिसमाप्त है। इसमें गौतम के प्रसिद्ध न्यायसूत्रों के अध्याय आन्हिक का ही विभाग रखा गया है, जो हेमचन्द्र के पूर्व श्री अकलंक ने जैन वाङ्मय में शुरू किया था। दुर्भाग्य की बात है कि यह ग्रन्थ पूर्ण रूप से उपलब्ध नहीं है। इस समय तक सूत्र १०० ही उपलब्ध हैं तथा उतने ही सूत्रों की वृत्ति भी है। अंतिम उपलब्ध २:१:३५ की वृत्ति पूर्ण होने के बाद एक नये सूत्र का उत्थान उन्होंने शुरू किया और उस अधूरे उत्थान में ही खण्डित लभ्यग्रन्थ पूर्ण हो जाता है। उपलब्ध ग्रन्थ दो अध्याय तीन आन्हिक मात्र है जो स्वोपज्ञवृत्ति

सहित ही है। सम्भवतः आचार्य अपनी वृद्धावस्था में इस ग्रन्थ को पूर्ण नहीं कर सके, अथवा सम्भव है कि शेष भाग काल कवलित हो गया हो। इस ग्रन्थ में हेमचन्द्र की भाषा वाचस्पति मिश्र की तरह नपी-तुली, शब्दाडम्बर शून्य, सहज, सरल है ; उसमें न अति संक्षिप्तता है और न अधिक विस्तार।

तुलनात्मक दृष्टि से दर्शन-शास्त्र की परिभाषा का अध्ययन करने वालों के लिए 'प्रमाण मीमांसा' महत्वपूर्ण है। भारतीय दर्शन विद्या के ब्राह्मण, बौद्ध और जैन इन तीनों मतों की तात्विक परिभाषाओं में और लाक्षणिक ब्याख्याओं में किस प्रकार क्रमशः विकसन, वर्धन और परिवर्तन होता गया यह ज्ञान इस ग्रन्थ के अध्ययन से हो जाता है। सूत्र तथा उसकी वृत्ति की तुलना में अनेक जैन, बौद्ध और वैदिक ग्रन्थों का उपयोग उन्होंने किया है। 'प्रमाण मीमांसा' का उद्देश्य केवल प्रमाणों का चर्चा करना नहीं है। अपितु प्रमाणनय और सोपाय बन्ध मोक्ष इत्यादि परम पुरुषार्थोपयोगी विषयों की चर्चा करना है। हेमचन्द्र ने 'स्वप्रकाशत्व' के स्थापन और ऐकान्हिक 'परप्रकाशत्व' के खण्डन में बौद्ध, प्रभाकर, वेदान्त, आदि सभी स्वप्रकाशवादियों की युक्तियों का संग्रहात्मक उपयोग किया है। श्वेताम्बर आचार्यों में भी हेमचन्द्र की खास विशेषता यह है कि उन्होंने ग्रहीत-ग्राही और ग्रहीष्यमाणग्राही दोनों का समत्व दिखाकर सभी धारावाही ज्ञानों में प्रामाण्य का समर्थन किया है और यह समर्थन करते हुए सम्प्रदाय निरपेक्ष तार्किकता का परिचय कराया है। यद्यपि वे जिनभद्र, हरिभद्र देवसूरि तीनों के अनुगामी हैं तथापि वेधारणा के लक्षण सूत्र में दिगम्बराचार्य अकलङ्क, विद्यानन्द, आदि का शब्दशः अनुसरण करते हैं। जिनभद्र के मन्तव्य का खण्डन न करके, हेमचन्द्र समन्वय करते हैं। अनुमान-निरूपण में भी हेमचन्द्र ने पूर्ववर्ती तार्किकों के अनुसार वैदिक परम्परा सम्मत त्रिविध अनुमान प्रणाली का खण्डन नहीं किया किन्तु अनुमान प्रणाली को व्यापक बना दिया है, जिससे असङ्गति दूर हो गयी।

'प्रमाण मीमांसा' का आभ्यन्तर स्वरूप– 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' के अनुसार आचार्य हेमचन्द्र ने भी अपने ग्रन्थ का आरम्भ 'अथ प्रमाण मीमांसा' १।१।१ सूत्र से किया है और फिर उपोद्घात के विस्तार में न जाते हुए एकदम दूसरे ही सूत्र में प्रमाण की लघुतम एवं सरलतम परिभाषा प्रस्तुत की है। 'सम्यगर्थ-निर्णयः प्रमाणम्' १।१।२ उनका प्रमाण विभाग विशेष महत्व रखता है। उनके अनुसार प्रमाण दो हैं–प्रत्यक्ष और परोक्ष। आचार्य का यह प्रमाण विभाग दो दृष्टियों से अन्य परम्पराओं की अपेक्षा विशेष महत्व रखता है। एक तो एक

विभाग में आने वाले प्रमाण दूसरे विभाग से असङ्कीर्ण रूप से अलग हो जाते हैं। दूसरी बात यह है कि सभी प्रमाण बिना खींच-तान के इस विभाग में समा जाते हैं। प्रत्यक्ष अनुभव को सामने रखकर आचार्य जी ने प्रमाण के प्रत्यक्ष और परोक्ष ऐसे दो मुख्य विभाग किये जो एक दूसरे से बिलकुल अलग हैं। इसमें न तो चार्वाक की तरह परोक्षानुभव का अपलाप है, न बौद्ध-दर्शन-सम्मत प्रत्यक्ष अनुमान द्वैविध्य की तरह आगम आदि इतर प्रमाण व्यापारों का अपलाप है, न त्रिविध प्रमाणवादी सांख्य तथा प्राचीन वैशेषिक, न चतुर्विध प्रमाणवादी नैयायिक, पञ्चविध प्रमाणवादी प्रभाकर, षड्विध प्रमाणवादी मीमांसक, सप्त-विध या अष्टविध प्रमाणवादी पौराणिक आदि की तरह अपनी प्रमाण संख्या का अपलाप है। चाहे जितने प्रमाण हों, वे या तो प्रत्यक्ष होंगे या परोक्ष। इस प्रकार प्रमाण शक्ति की मर्यादा के विषय में जैन दर्शन का या कहें हेमचन्द्र इन्द्रियाधिपत्य तथा अनिन्द्रियाधिपत्य दोनों स्वीकार करके उभयाधिपत्य का ही समर्थन करते हैं।

प्रत्यक्ष का तात्विक विवेचन करते हुए आचार्य हेमचन्द्र की मत है कि इन्द्रियाँ कितनी ही पटु क्यों न हों, पर वे अन्ततः हैं परतन्त्र ही! परतन्त्र-जनित ज्ञान की अपेक्षा स्वतंत्र-जनित ज्ञान को ही प्रत्यक्ष मानना न्याय सङ्गत है। स्वतन्त्र आत्मा के आश्रित ज्ञान ही प्रत्यक्ष हैं। आचार्य के ये विचार तत्व-चिंतन में मौलिक हैं। ऐसा होते हुए भी लोक-सिद्ध प्रत्यक्ष को सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहकर उन्होंने अनेकान्त दृष्टि का उपयोग किया है।

'प्रमाण मीमांसा' में सन्निपातरूप प्राथमिक इन्द्रिय व्यापार से लेकर अन्तिम इन्द्रिय व्यापार तक का विश्लेषण एवं स्पष्टता के साथ अनुभव सिद्ध अतिविस्तृत वर्णन है। यह वर्णन आधुनिक मानस-शास्त्र तथा इन्द्रिय व्यापार-शास्त्र का वैज्ञानिक अध्ययन करने वालों के लिए बहुत महत्व का है।

आचार्य ने सभी प्रकार के ज्ञानों को प्रमाण कोटि में अन्तर्भुक्त किया जिनके बल पर वास्तविक व्यवहार चलता है। सभी प्रमाण-प्रकारों को उन्होंने परोक्ष के अन्तर्गत लेकर अपनी समन्वय दृष्टि का परिचय कराया है। वे इन्द्रियों का स्वतन्त्र सामर्थ्य मानते हैं। उसी प्रकार अनिन्द्रिय अर्थात् मन और आत्मा दोनों का अलग-अलग भी स्वतन्त्र सामर्थ्य मानते हैं। वे सभी आत्माओं का स्वतन्त्र प्रमाण सामर्थ्य मानते है प्रमाण सामर्थ्य मानते है। इसके विपरीत न्याय-दर्शन के अनुसार केवल ईश्वर मात्र का प्रमाण सामर्थ्य इष्ट है, किन्तु हेमचन्द्र की दृष्टि से अनिन्द्रिय का भी प्रमाण सामर्थ्य इष्ट है, इन्द्रियों का प्रमाण-साम-

कार्य भी मान्य है। धर्मा-धर्म के विषय में केवल आगन नहीं, मन, आत्मा दोनों का प्रमाण-सामर्थ्य इष्ट हैं।

जैन तार्किकों के अनुसार 'प्रमाण-मीमांसा' में भी हेतु का एकमात्र अन्यथा-नुपपत्ति रूप निश्चित किया गया जो उसका निर्दोष लक्षण भी हो सके और सब मतों के समन्वय के साथ जो सर्वमान्य भी हो। हेतु के ऐसे एकमात्र तात्विक रूप के निश्चित करने का तथा उसके द्वारा ३,४,५,६, पूर्व प्रसिद्ध हेतु रूपों के यथा सम्भव स्वीकार करने का श्रेय जैन तार्किकों के साथ आचार्य हेमचन्द्र की ही है। परार्थानुमान के अवयवों की संख्या का निर्णय श्रोता की योग्यता के आधार पर ही किया गया है। अवयव प्रयोग की यह व्यवस्था वस्तुतः सर्व सङ्ग्राहिणी है। अन्य परम्पराओं में शायद ही यह देखी जाती है।

आचार्य हेमचन्द के समय सम्भवतः तत्व-चिन्तन में जल्प, वितण्डा, कथा का चलाना प्रतिष्ठा समझा जाने लगा था, जो छल जाति आदि के असत्य दांव-पेचों पर ही निर्भर था। हेमचन्द्र ने अपने तर्क-शास्त्र में कथा का एक वादात्मक रूप ही स्थिर किया, जिसमें छल आदि किसी भी कपट-व्यवहार का प्रयोग वर्ज्य है। "तत्वसंरक्षार्थं प्रश्निकादि समक्षं साधन दूषण वदनं वादः" (२।१।३०), कथा वही जो एकमात्र तत्व-जिज्ञासा की दृष्टि से चलायी जाती है। इस प्रकार एक मात्र वाद कथा को ही प्रतिष्ठित बनाने का मार्ग जैन तार्किकों ने प्रशस्त किया है। वाद के साथ ही हेमचन्द्राचार्य ने अपनी 'प्रमाण मीमांसा' में जयपराजय व्यवस्था का नया निर्माण किया है। यह नया निर्माण सत्य और अहिंसा दोनों तत्वों पर प्रतिष्ठित हुआ है। यह जय-पराजय की पूर्व व्यवस्था में नहीं था।

प्रमेय और प्रमता के स्वरूप—जैन दर्शन के अनुसार वस्तुमात्र परिणामी नित्य है। जब अनुभव न केवल नित्यता का है और न केवल अनित्यता का, तब किसी एक अंश को मानकर दूसरे अंश का बलात् मेल बैठाने की अपेक्षा दोनों अंशो को तुल्य रूप में—तुल्य सत्यरूप में स्वीकार करना ही न्याय संगत है। द्रव्य-पर्याय की व्यापक दृष्टि का यह विकास जैन-परम्परा की ही देन है। प्रमाण मीमांसा ने इसी को स्वीकार किया है। आचार्य हेमचन्द्र ने आत्मा का स्वरुप ऐसा माना जिसमें एकसी परमात्म-शक्ति भी रहे और जिसमें दोष,वासना,आदि के निवारण द्वारा जीवन-शुद्धि का वास्तविक उत्तरदायित्व भी रहे। इस प्रकार हेमचन्द्र के आत्मविषयक चिन्तन में वास्तविक परमात्म-शक्ति या ईश्वर-भाव का तुल्यरूप से स्थान है। दोषों के निवाणार्थ तथा सहजशुद्धि के आविर्भावार्थ प्रयत्न का पूरा

अवकाश है। इसी व्यवहार-सिद्ध बुद्धि में से जीव-भेदवाद तथा देह-प्रमाणवाद स्थापित हुए जो सम्मिलित रूप से एक मात्र जैन-परम्परा में ही हैं।

जैन-परम्परा, दृश्य-विश्व के अतिरिक्त, जड़ और चेतन जैसे परस्पर अत्यन्त भिन्न, अनन्त सूक्ष तत्वों को मानती है। स्थूल जगत् को सूक्ष्म जड़-तत्वों का ही कार्य या रूपान्तर मानती है। सूक्ष्म जड़-तत्व परमाणु रूप है। ये परमाणुरूप सूक्ष्म जड़-तत्व आरम्भवाद के परमाणु की अपेक्षा अत्यन्त सूक्ष्म माने गये हैं। जैन-दर्शन परिणामवाद की तरह परमाणुओं को परिणामी मानकर स्थूल जगत् को उन्हीं का रूपान्तर या परिणाम मानता है। आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार जैन दर्शन वस्तुतः परिणामवादी है। सांख्य-योग का परिणाम वाद केवल जड़ तक ही परिमित है। भर्तृ प्रपंच आदि का परिणामवाद मात्र चेतनतत्वस्पर्शी है। हेमचन्द्र के अनुसार जैन परिणामवाद जड़, चेतन, स्थूल, सूक्ष्म समग्र वस्तु-स्पर्शी है। वह सर्व व्यापक परिणामवाद है। आरम्भ और परिणाम दोनों वादों का जैन-दर्शन में व्यापक रूप में पूरा स्थान तथा समन्वय है। वस्तुमात्र को परिणामी नित्य और समान रूप से वास्तविक सत्य मानने के कारण जैन-दर्शन प्रतीत्य समुत्पादवाद तथा विवर्तवाद का सर्वथा विरोध ही करता है।

जैन-दर्शन चेतन बहुत्ववादी है, किन्तु उसके चेतन-तत्व अनेक दृष्टि से भिन्न स्वरूप वाले हैं। हेमचन्द्र चेतन को न्याय, साँख्य के समान न तो सर्वव्यापक द्रव्य मानते हैं, न विशिष्टाद्वैत की तरह अणुमात्र ही मानते हैं। न बौद्ध-दर्शन की तरह ज्ञान की निर्द्रव्य धारा मात्र ! जैनों का चेतन-तत्व, समग्र चेतन-तत्व मध्यम परिमाणवाले सङ्कोच-विस्तारशील होने के कारण इस विषय में जड़द्रव्यों से अत्यन्त विलक्षण नहीं।

'प्रमाण मीमांसा' के अनुसार जैन-दर्शन जीवात्मा और परमात्मा के बीच भेद नहीं मानता। सब जीवत्माओं में परमात्म-शक्ति एक-सी है और वह साधन पाकर व्यक्त होती भी है। जैन-दर्शन चेतन बहुत्ववादी होने के कारण तात्विक रूप से बहुपरमात्म वादी है। प्रकृति से अनेकान्त-वादी होते हुए भी जैन-दर्शन का स्वरूप एकान्ततः वास्तववादी ही है। आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार इन्द्रियजन्य, मतिज्ञान और पारमार्थिक केवल ज्ञान में सत्य की मात्रा में अन्तर है, योग्यता अथवा गुण में नहीं। आचार्य अनेक सूक्ष्मतम भावों की अनिर्वचनीयता को मानते हुए भी निर्वचनीय भावों को भी यथार्थ मानते हैं। जीवात्मा और परमात्मा में अभेद की कल्पना हिन्दू-दर्शन (वैदिक) का ही प्रभाव प्रतीत होता है।

'प्रमाण मीमांसा' में जीव-सर्वज्ञवाद सिद्ध किया गया है जो उसकी

एक अन्यतम विशेषता है। आचार्य जी अनुसार हर कोई अधिकारी व्यक्ति सर्वज्ञ बनने की शक्ति रखता है। उनके अनुसार जैन-पक्ष निरपवादरूप से सर्वज्ञ-वादी ही रहा है, जैसा कि न बौद्ध-परम्परा में हुआ है, और न वैदिक-परम्परा में। इस कारण से काल्पनिक, अकाल्पनिक, मिश्रित यावत् सर्वज्ञत्व समर्थक युक्तियों का सङ्ग्रह अकेले जैन प्रमाण-शास्त्र में ही मिलता है।

जैन-दर्शन के अनुसार ही आचार्य हेमचन्द्र पर्यायार्थिक और द्रव्यार्थिक दोनों दृष्टियों को सापेक्ष भाव से तुल्यबल और समान सत्य मानते हैं। द्रव्य के बीच विश्लेषण करते-करते अन्त में सूक्ष्मतम पर्यायों के विश्लेषण तक वे सही पहूँचते हैं पर वे पर्यायों को वास्तविक मानकर भी द्रव्य की वास्तविकता का परित्याग बौद्ध-दर्शन की तरह नहीं करते। पर्यायों और द्रव्यों का समन्वय करते-करते एक सत् तत्व तक वे पहूँचते हैं। फिर भी वे ब्रह्मवादी की तरह द्रव्य-भेदों और पर्यायों की वास्तविकता का परित्याग नहीं करते। जैन-धर्म में बौद्ध-परम्परा की तरह न तो आत्यन्तिक विश्लेषण हुआ और न वेदान्त की तरह आत्यन्तिक समन्वय। इसी कारण से जैन दृष्टि में अपरिवर्तिष्णुता आज तक रही है। उसका वास्तववादित्व स्वरूप स्थिर रहा।

'प्रमाण मीमांसा' में आचार्य हेमचन्द्र ने अनेकान्तवाद तथा नयवाद का शास्त्रीय निरूपण प्रस्तुत किया है जो जैनाचार्यों की भारतीय प्रमाण-शास्त्र को विशिष्ट देन है। विश्व के अधिकतम वाद अनेकान्त दृष्टि से शान्त किये जा सकते हैं। अनेकान्त दृष्टि के द्वारा जैनाचार्यों ने देखा कि प्रत्येक सयुक्तिकवाद अमुक-अमुक दृष्टि से अमुक-अमुक सीमा तक सत्य है। प्रत्येक वाद को उसी की विचार-सरणी से उसी की विषय सीमा तक परीक्षित किया जाय और इस परीक्षण में वह ठीक निकले तो उसे सत्य का एक भाग मानकर, ऐसे सब सत्यांश मणियों को एक पूर्ण सत्य रूप विचार-सूत्र में पिरोकर अविरोधी माला बनायी जाय। इस विचार ने जैनाचार्यों को अनेकान्त दृष्टि के आधार पर तत्कालीन सब वादों का समन्वय करने की ओर प्रेरित किया। आज भी अनेक वादों में उचित समन्वय यह अनेकान्त दृष्टि कर सकती है। समन्वय मात्र अथवा विश्लेषण मात्र के अवान्तर विचार-सरणियों के कारण अनेक तत्वों पर अनेक विरोधी वाद आप ही आप खड़े हो जाते हैं। उन सबका समाधान अने-कान्त वाद से ही होता है। सभी वाद विरोध की शान्ति के लिए अनेकान्तवाद कुञ्जी है। आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार प्रतीति अभेदगामिनी हो या भेदगामिनी किन्तु सभी वास्तविक हैं। अभेद और भेद की प्रतीतियाँ विरुद्ध इसी से जान

पड़ती है कि प्रत्येक को पूर्ण प्रमाण मान लिया जाता है। सामान्य और विशेष की प्रत्येक प्रतीति स्व विषय में यथार्थ होने पर भी पूर्ण प्रमाण नहीं वह प्रमाण का अंश अवश्य है। इसे वृक्ष और वन के दृष्टान्त से भी स्पष्ट किया जा सकता है। अनेक वृक्षों को सामान्य रूप में वन रूप में ग्रहण करते हैं तब विशेषों का अभाव नहीं हो जाता, पर सब विशेष लीन हो जाते हैं यही एक प्रकार का अद्वैत हुआ। जब एक-एक वृक्ष को विशेष रूप से देखते हैं तब सामान्य अन्तर्लीन हो जाता है। दोनों अनुभव सत्य हैं।। अपने-अपने विषयों में दोनों की सत्यता होते हुए भी किसी एक को पूर्ण सत्य नहीं कह सकते। पूर्ण सत्य दोनों अनुभवों का समुचित समन्वय ही है। इसी में दोनों अनुभव समा सकते हैं। यही स्थिति विश्व के सम्बन्ध में सद्‌अद्वैत, अथवा सद् द्वैत दृष्टि की भी है। जो तत्व अखण्ड प्रवाह की अपेक्षा से नित्य कहा जा सकता है वही तत्व खण्ड-खण्ड क्षण परिमित परिवर्तनों व पर्यायों की तुलना से क्षणिक भी कहा जा सकता है। वस्तु का कालिक पूर्ण स्वरूप अनादि अनन्तता और सादि सान्तता दोनो अंशों से बनता है। दोनों दृष्टियाँ प्रमाण तभी बनती हैं जब वे समन्वित हों। दूध दूध रूप से भी प्रतीत होता है और अदधि या दधि-भिन्न रूप से भी। ऐसी दशा में वह भाव, अभाव, उभय रूप सिद्ध होता है। इसी तरह धर्म-धर्मी, गुण-गुणी, कार्य-कारण, आधार-आधेय, आदि द्वंद्वों के अभेद और भेद के विरोध का परिहार भी अनेकान्त दृष्टि कर देती है। एक ही विषय में प्रतिपाद्य भेद से हेतुवाद और आगमवाद दोनों को अवकाश है। जीवन में दैव और पौरुष दोनों वाद समन्वित किये जा सकते हैं। कारण में कार्य सत् भी है, और असत् भी ! कड़ा बनने के पूर्व सुवर्ण में क्षमता के कारण कार्य सत् किन्तु उत्पादक सामग्री के अभाव में उत्पन्न न होने के कारण असत् भी है। बौद्धों का परमाणुपुञ्जवाद एवं नैयायिकों का अपूर्वावयवी वाद दोनों का समन्वय आचार्य हेमचन्द्र ने 'प्रमाण-मीमांसा' में अनेकान्तवाद के अन्तर्गत कर दिया है। इस प्रकार का सामञ्जस्य या समन्वय करते समय नयवाद और भङ्गवाद आप ही आप फलित हो जाते हैं।

सम्भावित सभी अपेक्षाओं से दृष्टिकोणों से चाहे वे विरुद्ध ही क्यों न दिखायी देते हो किन्तु वास्तविक चिन्तन व दर्शनों का सार-समुच्चय ही उस विषय का पूर्ण अनेकान्त दर्शन है। प्रत्येक अपेक्षा सम्भवी दर्शन उस पूर्ण दर्शन का एक अंग है जो परस्पर विरुद्ध होकर भी पूर्ण दर्शन में समन्वय पाने के कारण वस्तुतः अविरुद्ध ही है। (१) अभेद भूमिका पर "सत्" शब्द के एक

मात्र अखण्ड अर्थ का दर्शन सङ्ग्रह नय है। (२) गुण-धर्मकृत भेदों की ओर झुकने वाला विश्व का दर्शन व्यवहार नय कहलाता है। (३) अतीत अनागत को 'सत्' शब्द से हटाने वाला, वर्तमान भेद गामी दर्शन ऋजुसूत्र नय कहलाता है। (४) सभी शब्दों को अव्युत्पन्न मानना-उनका अर्थ भेद का दर्शन 'शब्दनय' या साम्प्रत नय हैं। (५) प्रत्येक शब्द को व्युत्पत्ति सिद्ध मानने वाला दर्शन समभिरूढ़नय कहलाता है। (६) एक ही व्युत्पत्ति से फलित होने वाले अर्थभद एवं भूत नय कहलाता हैं। (७) देश, रूढ़ि के अनुसार भेदगामी, अभेदगामी, सभी विचारों का समावेश नैगम नय कहलाता हैं। प्रायः प्रत्येक दृष्टिकोण एक नय ही है। नयरूप आधार-स्तम्भों के अपरिमित होने के कारण विश्व का पूर्ण दर्शन अनेकान्त भी निस्सीम है।

सप्तभंगी का आधार नयवाद है और उसका ध्येय समन्वय है। दर्शनों का समन्वय बतलाने की दृष्टि से उनके विषयभूत भाव अभावात्मक दोनों अंशों को लेकर उन पर सम्भावित वाक्य भंग बनाये जाते है। वही सप्तभंगी है। इस तरह नयवाद और भंगवाद अनेकान्त दृष्टि के क्षेत्र में आप ही आप फलित हो जाते हैं। समन्वय के आग्रह में जैन तार्किकों ने अनेकान्त, नय और सप्तभंगीवाद का बिलकुल स्वतन्त्र और व्यवस्थित शास्त्र निर्माण किया। अनेकान्त दृष्टि और उस शास्त्र निर्माण के पीछे जो अखण्ड और सजीव सर्वांश सत्य को अपनाने की भावना जैन-परम्परा में रही और जो प्रमाण-शास्त्र में अवतीर्ण हुई उसमें जीवन के समग्र क्षेत्रों में सफल उपयोग होने की पूर्ण योजना होने के कारण ही उसे भारतीय प्रमाण-शास्त्र को जैनाचार्य की अपूर्व देन कहना अनुपयुक्त नहीं है।

भारतीय दर्शन को हेमचन्द्र की देन – 'प्रमाण मीमांसा' में हेमचन्द्र ने पूर्ववर्ती आगमिक तार्किक, सभी जैन मन्तव्यों को विचार व मनन से पचाकर अपने ढंग की विशद् अनुरुक्त, सूत्र-शैली तथा सर्व सङ्ग्राहिणी विशद्तम स्वोपज्ञवृत्ति में उसे सन्निविष्ट किया। निर्युक्ति, विशेषावश्यकभाष्य तथा तत्वार्थ जैसे आगमिक ग्रन्थ तथा सिद्धसेन, समन्तभद्र, अकलङ्क, माणिक्य नन्दी, विद्यानन्द की प्रायः समस्त कृतियां 'प्रमाण मीमांसा' की उपादान सामग्री बनी हैं। प्रभाचन्द के 'मार्तण्ड' का भी इसमें पूरा प्रभाव है। अनन्तवीर्य की 'प्रमेयरत्नमाला' का भी इसमें विशेष उपयोग हुआ है। वादी देवसूरि की कृतिका भी उपयोग स्पष्ट है। फिर भी 'प्रमाण मीमांसा' में अकलंक और माणिक्य नन्दी का ही मार्गानुगमन प्रधानतया देखा जाता है। दिङ्नाग, धर्मकीर्ति, धर्मोत्तर, अर्चट शान्तरक्षित आदि बौद्ध तार्किक भी इनके अध्ययन के विषय रहे हैं। कणाद, भासर्वज्ञ, व्योमशिव,

श्रीधर, अक्षपाद्, वात्स्यायन, उद्योतकर, जयन्त, वाचस्पति मिश्र, शबर, प्रभाकर, कुमारिल, आदि विविध वैदिक परम्पराओं के प्रसिद्ध विद्वानों की सब कृतियाँ प्राय: इनके अध्ययन की विषय रहीं। चार्वाक् जयराशि भट्ट का "तत्वोपप्लव" भी इनकी दृष्टि के बाहर नहीं था। आचार्य हेमचन्द्र की भाषा तथा निरूपण शैली पर धर्मकीर्ति, धर्मोत्तर, अर्चट, भासर्वज्ञ,वात्स्यायन, जयन्त, वाचस्पति मिश्र, कुमारिल, आदि का ही आकर्षक प्रभाव पड़ा है। 'प्रमाण मीमांसा' ऐतिहासिक दृष्टि से जैन तर्क साहित्य में तथा भारतीय दर्शन साहित्य में विशिष्ट स्थान रखती है।

भारतीय प्रमाण-शास्त्र में 'प्रमाण मीमांसा' का विशिष्ट स्थान है। भारतीय प्रमाण-शास्त्र न्याय-दर्शन के अन्तर्गत आता है, जिसके प्रवर्तक महर्षि गौतम माने जाते हैं। न्याय-दर्शन का मूल ग्रन्थ गौतम का न्याय-सूत्र है। इसके बाद न्याय-भाष्य के अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं, जैसे वात्सायायन का 'न्यायभाष्य', उद्योतकर का 'न्यायवार्तिक', वाचस्पति की 'न्यायवार्तिक तात्पर्य टीका', उदयन की 'न्यायवार्तिक तात्पर्यं परिशुद्धि' तथा' कुसुमांजलि' जयन्त की 'न्याय मञ्जरी' आदि। इनमें स्वमतमण्डन तथा परमतखण्डन विशेष रूप से विद्यमान है। नव्य न्याय का आरम्भ गंगेश की 'तत्वचिन्तामणि' से हुआ है। नव्यन्याय में तर्क-विज्ञान अथवा प्रमाण-शास्त्र सम्बन्धी विषयों का विशद् विवेचन है। "प्रमाणैरर्थ परीक्षणं न्याय:" फिर भी इसमें १६ पदार्थो का परीक्षा पूर्वक विवेचन होता है, १. प्रमाण, २. प्रमेय, ३. संशय, ४. प्रयोजन, ५. दृष्टान्त, ६. सिद्धान्त, ७. अवयव, ८. तर्क, ९. निर्णय, १०. वाद, ११. जल्प, १२. वितण्डा, १३. हेत्वाभास, १४. छल, १५. जाति और १६. निग्रहस्थान।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपनी 'प्रमाण मीमांसा' में इन सभी पदार्थों पर प्रकाश डालते हुए भी भारतीय प्रमाण-शास्त्र को कुछ मौलिक एवं नवीन विचार भेंट किये है, जो जैनाचार्यों की भी भारतीय प्रमाण शास्त्र को अपूर्व देन कही जा सकती है। सबसे प्रथम एवं सर्वश्रेष्ठ देन-'अनेकान्त-वाद' है। 'प्रमाण मीमांसा' में 'अनेकान्तवाद' की विशद चर्चा कर हेमचन्द्र ने प्रमाण-शास्त्र को समन्य की और अग्रसर किया है। इस प्रकार दर्शन शास्त्र में अधिक से अधिक व्यापक दृष्टि कोण को अपनाने के लिए उन्होंने प्रेरित किया है। इससे सर्वधर्मसहिष्णुत्व अथवा परमतसहिष्णुत्व की भावना को बल मिला है। भारतीय दर्शन, जो अधिकांश में हिन्दू दर्शन है, परमतसहिष्णु है। यह सहिष्णुता सम्भवत: जैन-दर्शन से सम्पर्क के कारण ही है। प्रत्येक क्षेत्र में दृष्टि की इस व्यापकता का

दर्शन होता है। उदाहरणार्थ भारतीय प्रमाण-शास्त्र में चार ही प्रमाण माने जाते हैं, किन्तु आचार्य हेमचन्द्र ने प्रमाणों का ऐसा विभाजन किया है कि उसके अन्तर्गत सभी प्रमाण समा जाते हैं। प्रत्यक्ष का तात्विकत्व, 'प्रमाण मीमांसा' की दूसरी विशिष्टता है। स्वतन्त्र आत्मा के आश्रित ज्ञान ही प्रत्यक्ष है। परतन्त्र इन्द्रियजन्य ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं है। तत्वचिन्तन में ये विचार नितान्त मौलिक है। हेमचन्द्र की अनुमान के अवयवों की व्यवस्था सर्व सङ्ग्राहिणी है, जो भारतीय प्रमाण-शास्त्र को उनकी तीसरी देन है। वस्तु मात्र परिणामी नित्य कहकर द्रव्य पर्याय की व्यापक दृष्टि का परिचय जैन-परम्परा की ही देन है। आत्म विषयक जैन-चिन्तन में परमात्म-शक्ति का स्थान है, तथैव दोष निर्वाणार्थ प्रयत्न का पूरा अवकाश भी है-यह 'प्रमाण मीमांसा' की अन्यतम विशिष्टता है। 'न्याय के अनुसार शरीर ग्रस्त आत्मा के दुःखों का पूर्ण विनाश सम्भव नही है। अन्त में 'प्रमाण मीमांसा में जीव-सर्वज्ञवाद का प्रभावपूर्ण समर्थन कर जीवमात्र के लिए अमृतमार्ग खुला कर दिया है। सर्वज्ञत्व समर्थक युक्तियों का सङ्ग्रह जैन प्रमाण-शास्त्र में तथा 'प्रमाण मीमांसा' में ही मिलता है।

इस प्रकार भारतीय प्रमाण-शास्त्र में हेमचन्द्र की 'प्रमाण मीमांसा' का स्थान अद्वितीय है, जो भारतीय प्रमाण-शास्त्र के विकास में अपूर्व योगदान देता है। 'प्रमाण मीमांसा' के कारण प्रमाण शास्त्र और अधिक व्यापक बन गया है। सम्प्रदायातीत विचारों के प्रचार में तथा प्रसार में 'प्रमाण मीमांसा' अपूर्व सहायता कर सकती है। 'प्रमाण मीमांसा' से दर्शन-जगत में तथा तर्क-साहित्य में परमतसहिष्णुता का प्रसार हुआ है, जो पोषक वातावरण के लिए अत्यन्त आवश्यक है। सम्प्रदाय वृद्धयर्थ लिखा गया ग्रन्थ सम्प्रदायातीत बन गया, यह 'प्रमाण मीमांसा' की अपूर्व विशेषता है। अतः'प्रमाण मीमांसा' से न केवल जैन दर्शन का अपितु सम्पूर्ण भारतीय दर्शन-शास्त्र के गौरव में वृद्धि हुई

भारतीय दर्शन पाश्चात्य दर्शनों की भाँति केवल तत्वों की मीमांसा ही नहीं करता है, अपितु आचार-शास्त्र, प्रमाण-शास्त्र, क्रिया-शास्त्र, मोक्ष-शास्त्र, आदि सभी विषयों को अपने में समेट कर चलता है। इस दृष्टि से आचार्य हेमचन्द्र का दूसरा धार्मिक एवं दार्शनिक ग्रन्थ 'योग-शास्त्र' भी द्रष्टव्य, विचारणीय एवं चिन्तनीय है।

योग शास्त्र– आचार्य हेमचन्द्र ने योगशास्त्र पर बड़ा ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। इसकी शैली पतञ्जलि के 'योग-सूत्र' के अनुसार ही है, किन्तु विषय और वर्णन क्रम में मौलिकता एवं भिन्नता है। इस दृष्टि से 'योग-शास्त्र' का

महत्व अधिक है। यह ग्रन्थ सरल श्लोकों में लिखा गया है। उसके साथ ही बहुत-कुछ परिष्कृत गद्य में लिखित ग्रन्थकार की ही अपनी टीका भी मिलती हैं। विशद् टीका सहित प्रथम चार परिच्छेदों में जैन-दर्शन का विस्तृत और स्पष्ट वर्णन दिया गया है, अन्तिम आठ परिच्छेदों में जैन धर्म के विभिन्न कृत्यों का और मुनियों के आचारों का प्रतिपादन किया गया है। डॉ. कीथ के मत के अनुसार जैन-धर्म ग्रन्थों के समान इसमें भी अहिंसा की प्रशंसा तथा नारी की निन्दा की गयी है। हेमचन्द्र में उत्कृष्ट कविता लिखने की योग्यता है तो भी इनकी इस कृति 'योग-शास्त्र' को कोई विशिष्ट साहित्यिक महत्व नहीं दिया जा सकता। वास्तव में जैनाचार्य हेमचन्द्र का 'योग-शास्त्र' नीति विषयक उपदेशात्मक काव्य की कोटि में आता है, जो कि आचार प्रधान है तथा धर्म और दर्शन दोनों से प्रभावित है। योग-शास्त्र ने नीति-काव्यों या उपदेश काव्यों की परम्परा को समृद्ध एवं समुन्नत किया है। 'योग-शास्त्र' एक प्रकार से जैन-सम्प्रदाय का विशुद्ध धार्मिक एवं दार्शनिक ग्रन्थ हैं।

चालुक्य नरेश कुमारपाल के अनुरोध से हेमचन्द्र ने 'योग-शास्त्र' की रचना की थी। इसमें १२ प्रकाश तथा १०१८ श्लोक हैं। जिस प्रकार दिगम्बर सम्प्रदाय में योगविषयक शुभचन्द्रकृत 'ज्ञाणार्णव' ग्रन्थ अप्रतिम है उसी प्रकार श्वेताम्बर सम्प्रदाय में हेमचन्द्र का 'योग-शास्त्र'भी एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। १२ प्रकाशों में विभक्त 'योग-शास्त्र' भी 'ज्ञानार्णव' के समान सरल सुबोध संस्कृत में रचा गया है। इसका ६१ पद्यमय ११ वाँ प्रकाश आर्यावृत्त में और १२ वें प्रकाश के प्रारम्भिक ५१ पद्य भी आर्यावृत्त में, ५२–५३ ये दो पद्य क्रम से पृथ्वी व मंदाक्रान्ता वृत्तों में तथा अन्तिम दो पद्य शार्दूल विक्रीड़ित वृत्त में रचे गये हैं। शेष सम्पूर्ण ग्रन्थ अनुष्ठुभ छंद में रचित है। प्रथम चार प्रकाशों पर विस्तृत टीका मिलती है, किन्तु अन्तिम आठ प्रकाशों पर संक्षिप्त टीका मिलती है। सम्भवतः हेमचन्द्र के शिष्यों में से किसी शिष्य ने टीका लिखी हो 'त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित' के भी उद्धरण इसमें मिलते हैं।

'योग-शास्त्र' को अध्यात्मोपनिषद् भी कहा गया है। गृहस्थ जीवन में आत्म साधना करने की प्रक्रिया का निरूपण इसमें किया गया है। इसमें योग की परिभाषा, व्यायाम, रेचक, कुम्भक, पूरक आदि प्राणायामों तथा आसनों का निरूपण किया गया है। 'योग-शास्त्र' के अध्ययन एवं अभ्यास से मुमुक्षु को आध्यात्मिक प्रगति की प्रेरणा मिलती है। व्यक्ति की अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों के उद्घाटन का पूर्ण प्रयास इसमें किया गया है। सम्भवतः कुमारपाल को धर्म का

मुनि जहाँ उपर्युक्त अहिंसादि व्रतों का सर्वात्मना पालन करते हैं वहाँ उस मुनि-धर्म में अनुरक्त गृहस्थ उक्त व्रतों का देशतः ही पालन करते हैं। इस गृहि धर्म की प्ररूपणा करते हुए हेमचन्द्राचार्य ने प्रथमतः दस श्लोकों में (४७–५७) यह बतलाया है कि कैसा गृहस्थ उस गृहि धर्म परिपालन के योग्य होता है। तत्पश्चात् पाँच अणुव्रतादि स्वरूप गृहस्थ के १२ व्रतों को सम्यक्त्व मूलक बतलाकर यहाँ उस सम्यक्त्व व उसके विषयभूत दैव, गुरु, धर्म, का भी वर्णन करते हुए द्वादश व्रतों का विस्तार के साथ विवेचन किया गया है। प्रथम प्रकाश के अन्त में आदर्श गृहस्थ का वर्णन अनुकरणीय है।

इस प्रकार आदर्श गृहस्थ बनने के लिए द्वितीय प्रकाश का आरम्भ व्रत-निर्देशों से होता है। गृहस्थों के लिए निर्देशित व्रतों के अन्तर्गत ५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत तथा ४ शिक्षाव्रत आते हैं। इन्हीं को सम्मिलित रूप से द्वादश-व्रत भी कहते हैं[1]। पूर्व निर्देशित पञ्च महाव्रत ही पाँच अणुव्रत हैं तथा द्वितीय प्रकाश इन्हीं व्रतों का वर्णन किया गया है।

तृतीय प्रकाश में तीन गुणव्रतों का वर्णन हैं। इसके अन्तर्गत मदिरा दोष, माँस दोष, नवनीत भक्षण दोष, मधु दोष, उदुम्बर भक्षण दोष, रात्रि भोजन दोष आदि का वर्णन हैं। तत्पश्चात् चार शिक्षाव्रतों का वर्णन है। इसके बाद महा-श्रावक की दिन-चर्या का सुन्दर वर्णन किया गया है। ब्राह्म मुहूर्त में जाग्रत होकर रात्रि में शयनपर्यन्त सम्पूर्ण कार्यक्रम को यथाविधि सम्पन्न करते हुए मोक्ष का आनन्द प्राप्त करने की सदैव इच्छा करनी चाहिये।

चतुर्थ प्रकाश में इन्द्रियजय, कषायजय, मनःशुद्धि और राग-द्वेष जय की विधि का विवेचन करते हुए समान भाव को उद्दीप्त करने वाली १२ भावनाओं

१– द्वादशव्रतः अणुव्रत, ५– १ अहिंसा, २ सत्य, ३ अस्तेय, ४ अपरिग्रह, ५ ब्रह्मचर्य
गुणव्रत ३– १ दिग्विरतिः २, भोगोपभोगमान, ३ अनर्थदण्ड-विरमण
शिक्षाव्रत ४– १ सामायिक, २ देशावकाशिक, ३ पोषध, ४ अतिथिसंविभाग।

इन व्रतों की मान्यता के सम्बन्ध में दो मत प्रचलित हैं। प्रथम मत में 'देशावकाशिक व्रत' की गणना गुणव्रतों में की गयी है और द्वितीय में शिक्षाव्रतों में। प्रथम मत 'भोगोपभोगपरिमाण' को शिक्षाव्रतों में परिगणित करता है और द्वितीय गुणव्रतों में।

का वर्णन किया गया है। साथ ही वहाँ यह कहा गया है कि मोक्ष जिस कर्मक्षय से सम्भव है, वह कर्मक्षय आत्मज्ञान से होता है और वह आत्मज्ञान ध्यान से सिद्ध किया जा सकता है। साम्यभाव के बिना ध्यान नहीं और ध्यान के बिना वह स्थिर साम्यभाव भी सम्भव नहीं है। इसलिए ध्यान तथा साम्यभाव दोनो परस्पर एक दूसरे के कारण है। इस प्रकार ध्यान की भूमिका बाँधते हुए ध्यान का स्वरूप व उसके दो भेद-धर्म्य और शुक्ल, निर्दिष्ट किये गये है। तथा धर्म्य-ध्यान को संस्कृत करने के लिए मैत्री आदि भावनाओं को ध्यान का रसायन बतलाकर उनका भी संक्षेप में स्वरूप दिखलाया गया है। इस प्रकार रत्नत्रयों का सम्यग् वर्णन करने के पश्चात् चतुर्थ प्रकाश से प्रारम्भ में मोक्ष की सुन्दर व्याख्या दी है। यह आत्मा ही चिद्रूप है, ध्यानाग्नि में सर्वकर्म भस्मसात होकर आत्मा निरंजन हो जाती है। कषायों को जीतकर जितेन्द्रिय पुरुष को ही मोक्ष मिलता है। इसके बाद काम-क्रोध रूप का वर्णन किया गया है। इन्द्रिय जय तथा मनः शुद्धि पर विशेष जोर दिया गया है। राग-द्वेष पर विजय प्राप्त करके समत्व प्राप्ति करनी चाहिये। तत्पश्चात् बारह भावनाओं का वर्णन है। तप के दो प्रकारों–बहिस्तप तथा आन्तरतप, का वर्णन किया गया है। ध्यान का वर्णन करते हुए "समत्वमलम्ब्याथ ध्यानं योगी समाश्रयेत्" कहकर गीतोक्त समत्वयोग की ही आचार्य जी ने प्रतिष्ठा की है। ध्यान की सिद्धि के लिए योगी को, जिसने आसन पर विजय प्राप्त करली है, आत्मस्थिति के हेतुभूत किसी तीर्थ-स्थान अथवा अन्य किसी भी एकान्त, पवित्र स्थान का आश्रय लेना चाहिये। इसके लिए प्रकृत में पर्यंक, वीर, वज्र, कमल भद्र, दण्ड उत्कटिका, गोदोहिका, और कामोत्सर्ग इन आसन विशेषों का निर्देश करके उनके पृथक-पृथक लक्षण भी दिखलाये गये हैं।

पञ्चम प्रकाश में प्राणायाम की प्ररूपणा करते हुए प्राणापानादि वायु-भेदों के साथ पार्थिव, वारुण, वायव्य, और आग्नेय, नामक वायु-मण्डलों तथा उनके प्रवेश, निगमन को लक्ष्य में रखकर उससे सूचित फल की विस्तार से चर्चा की गयी है। योग की आश्चर्य जनक शक्तियों के बारे में भी वर्णन किया गया है। प्राणायाम का ३०० श्लकों में प्ररूपण करने पर भी ज्ञानार्णव के समान ही उसे मोक्ष-प्राप्ति में बाधक कहा गया है। हेमचन्द्र को शुभचन्द्र का इस विषय में ऋणी मानना चाहिये।

६ ठे प्रकाश में परपुरप्रवेश व प्राणायाम को निरर्थक कष्टप्रद बतलाकर उसे मुक्ति-प्राप्ति में बाधक बतलाया है। साथ ही धर्म-ध्यान के लिए मन को

इन्द्रिय विषयों की ओर से खींच कर उसे नामि आदि विविध स्थानों में से किसी भी स्थान में स्थापित करने की प्रेरणा की गयी है।

७ वें प्रकाश के प्रारम्भ में कहा गया है कि ध्यान के इच्छुक जीव को ध्यान, ध्येय और उसके फल को जान लेना चाहिये। क्योंकि सामग्री के बिना कभी कार्य सिद्ध नहीं होते है, तदनुसार यहाँ ध्यान के विषय में कहा गया है कि जो संयम की धुरा को धारण करके प्राणों का नाश होने पर भी कभी उसे नहीं छोड़ता है, शीत-उष्ण आदि की बाधा से कभी व्यग्र नही होता है, क्रोधादि कषायों से जिसका हृदय कभी कलुषित नही होता है, जो काम-भोगों से विरक्त होकर शरीर में भी निःस्पृह रहता है, तथा जो सुमेरु के समान निश्चल रहता है, वही धाता प्रशंसनीय है।

ध्येय (ध्यान का विषय) के पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत—इन चार भेदों का निर्देश करके पिण्डस्थ में सम्भव पार्थिवी, आग्नेयी, मारुती, वारुणी और तत्रभूः इन पाँच धारणाओं का पृथक्-पृथक् विवेचन किया गया है। साथ ही, उस पिण्डस्थ ध्येय के आश्रय से जो योगी को अपूर्व शक्ति प्राप्त होती है, उसका भी दिग्दर्शन कराया गया है।

८ वें प्रकाश में पदस्थ, ९ वें प्रकाश में रूपस्थ और १० वें प्रकाश में रूपातीत ध्यान का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त १० वें प्रकाश में उस धर्म-ध्यान के आज्ञा विचयादि अन्य चार भेदों का स्वरूप दिखलाते हुए उक्त धर्म-ध्यान का फल भी सूचित किया गया है[1]।

११ वें प्रकाश में पृथक्त्ववितक आदि चार प्रकार के शुक्लध्यान का उल्लेख करके केवली 'जिन' के माहात्म्य को प्रकट किया है।

अंतिम १२ वें प्रकाश के प्रारम्भ में 'श्रुतसमुद्र' और गुरु के मुख से जो कुछ मैंने जाना है उसका वर्णन कर चुका हूँ, अब यह निर्मल अनुभव-सिद्ध तत्व को प्रकाशित करता हूँ' ऐसा निर्देश करके विक्षिप्त, यातायात, श्लिष्ट, सुलीन, इन चित्त-भेदों के स्वरूप का कथन करते हुए वहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा का स्वरूप भी कहा गया है। अन्त में चित्त की स्थिरता पर विशेष बल दिया गया है। तभी समाधि-अवस्था प्राप्त होकर पुरुष सिद्ध बन जाता है। आचार्य हेमचन्द्र के 'योगशास्त्र' की इस दृष्टि से पतञ्जलि के योगसूत्र से तुलना उचित प्रतीत होती है।

१–भावना १२–अनित्य[1], अशरण[2], संसार[3], एकत्व[4], अन्यत्व[5], अशौच[6], आस्त्रव[7],

योगशास्त्र का विवेचन – विषय तथा वर्णन क्रम में मौलिकता तथा भिन्नता होने होने पर भी महर्षि पतञ्जलि के 'योगसूत्र' तथा हेमचन्द्र के 'योगशास्त्र' बहुत सी बातों में समानता पायी जाती है। उदाहरणार्थ कर्मवाद को ही ले सकते हैं। कर्मवाद को प्रायः भारत के सभी दर्शन मानते हैं। कर्मवाद के अनुसार 'कृत-प्रणाश' तथा 'अकृताभ्युपगम' नहीं होता है। अर्थात् किये हुए कर्म का फल नष्ट नहीं होता और बिना किये हुए कर्म का फल नहीं मिलता। पातञ्जल योगसूत्र के अनुसार भी संसार के सभी जोव अविद्या, अहंकार, वासना, राग-द्वेष और अमि-निवेश (मृत्यु भय) आदि के कारण दुःख पाते हैं। वे भाँति-भाँति के कर्मों के फलस्वरूप सुख-दुःख भोग करते हैं। योगसूत्र के दूसरे पाद में कर्म-फल आदि के विषय में वर्णन आता है। जब तक पूर्व कर्मजन्य सभी संस्कारों का नाश नहीं हो जाता और चित्त की सभी वृत्तियों का अन्त नहीं हो जाता तब तक दुःखों के पुनरावर्तन की सम्भावना बनी रहती है। भूत और वर्तमान के विविध कर्मों से उत्पन्न संस्कारों को नष्ट करने के लिए समाधि की स्थिति में दृढ़तापूर्वक स्थिर रहना बड़ा ही दुस्तर कार्य है। इसके लिए चिरसाधना और कठिन योगाभ्यास की जरूरत है।

जैन दर्शन में भी कर्मवाद प्राणभूत तत्व माना जाता है। हेमचन्द्र के योगशास्त्र के अनुसार संसार की विषमता के मूल में कर्म का अस्तित्व ही है। सुख-दुःख देने वाला कर्म-पुञ्ज आत्मा के साथ अनादि काल से संयुक्त है। इसी के कारण आत्मा संसार में परिभ्रमण करती है। वासना विभिन्न प्रकार के पर-माणु समूहों का एक समुच्चय ही है। इसी को दूसरे शब्दों में कर्म कहते हैं। आत्मा की कर्मबद्ध अवस्था ही संसार है। जैन शास्त्रों के समान आचार्य हेमचन्द्र भी मानते हैं कि सम्पूर्ण कर्मों का क्षय होते ही मुक्तजीव ऊर्ध्व गति को प्राप्त होता है। कर्म के फल के विषय में हेमचन्द्र कहते हैं कि उग्र पाप की भाँति

---

[८] संवर, [९] निर्जरा, [१०] धर्म, [११] लोक, [१२] वोधिभावना

तप १२ – [१] अनशन, [२] अवमौदर्य, [३] वृत्तिपरिसंख्यान, [४] रसपरित्याग, [५] विविक्त-शैय्यासन, [६] कायक्लेश, [७] प्रायश्चितन्त, [८] विनय [९] वैयावृह्य, [१०] स्वाध्याय, [११] व्युत्सर्ग, [१२] ध्यान

कषाय ४ – [१] क्रोध, [२] मान, [३] लोभ, [४] माया

उग्र पुण्य का फल भी इस जन्म में मिल सकता है। जैन दर्शन के अनुसार कर्म की बध्यमान, सत् और उदयमान अवस्थाएँ मानी गयी है। इन्हें क्रमशः बन्ध, सत्ता और उदय कहते हैं। योगसूत्र में क्रमशः क्रियमाण, सञ्चित, तथा प्रारब्ध नाम से इन्हीं अवस्थाओं का वर्णन किया नया है।

कर्मवाद के बाद बन्ध और मोक्ष के विषय में भी दोनों के विचार एक से मालूम पड़ते हैं। कर्म का आत्यन्तिक क्षय होना ही मोक्ष है। ईश्वरता और मुक्तता एक ही है। पातञ्जल योग के अनुसार चित्तवृत्तियों के निरोध के द्वारा आत्मा बन्धनमुक्त होकर आत्म-साक्षात्कार का अनुभव करती है। कर्मबन्ध से छूट जाना ही मोक्ष है। पातञ्जल योग में यम-नियम, ध्यान, धारणा द्वारा साधक असंप्रज्ञात समाधि तक पहुँचता है। वहाँ पहुँच जाने पर योगी समस्त विषय संसार से मुक्त होता है। इस अवस्था में आत्मा विशुद्ध चैतन्य स्वरूप में रहती है और अपने कैवल्य या मुक्तावस्था के प्रकाश का आनन्द लेती है। इस अवस्था को प्राप्त करने पर पुरुष सभी दुःखों से मुक्ति पा जाता है। इस अवस्था को धर्ममेध भी कहते हैं क्योंकि वह योगी के ऊपर कैवल्य या मुक्ति की वर्षा करता है।

आचार्य हेमचन्द्र भी प्रायः इसी प्रकार मुक्तावस्था का वर्णन करते हैं। जिस प्रकार ईन्धन शेष न रहने पर अथवा ईन्धन का सम्बन्ध समाप्त हो जाने पर आग स्वयमेव बुझ जाती है, उसी प्रकार मन का उपर्युक्त क्रम से अणु पर पूर्ण रूप से स्थिर होते ही चाञ्चल्य दूर हो जाता है और वह पूर्ण रूप से शान्त बन जाता है। केवल ज्ञान, सर्वज्ञता प्रकट होती है। आगे योगशास्त्र की समाप्ति करते हुए आत्मानन्द की अनुभूति का वर्णन आचार्य हेमचन्द्र वैदिक दर्शन के समान ही करते हैं। मोक्ष हो या न हो, परन्तु चित्त की स्थिर दशा में परमानन्द का संवेदन होता है। जिसके आगे समग्र सुख मानों कुछ भी नही हैं, ऐसा प्रतीत होता हैं।(१२।५१)

इस मोक्षावस्था को प्राप्त करने के लिए जो उपाय या साधन बतलाये हैं उनमें भी पातञ्जल योगसूत्र तथा हेमचन्द्र के 'योगशास्त्र' में पर्याप्त साम्य दिखलायी देता है। आत्मोन्नति के साधन रूप में पातञ्जल योग की महत्ता को प्रायः सभी भारतीय दर्शनों ने स्वीकार किया है। जब तक मनुष्य का चित्त या अन्तःकरण निर्मल और स्थिर नहीं होता तब तक उसे धर्म के तथ्य का सम्यक् ज्ञान नहीं हो सकता। आत्मशुद्धि के लिए योग ही सर्वोत्तम साधन है। इससे शरीर ओर मन की शुद्धि हो जाती है। सभी भारतीय दर्शन अपने-अपने सिद्धान्तो को यौगिक रीति से ध्यान, धारणा आदि के द्वारा अनुभव करने के लिए

प्रयत्न करते हैं। योग का अर्थ है चित्तवृत्ति का निरोध। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि इन आठ साधनों से योग की साधना की जाती है।

जैन दर्शन के पञ्चमहाव्रतों तथा पतञ्जलि योगसूत्र के यमों में कुछ भी अन्तर नहीं हैं। जैन धर्म के समान ही योगसूत्र में भी यम-नियमों की विवेचना की गयी है। योगी के लिए इन की साधना अत्यावश्यक है क्योंकि मन को सबल बनाने के लिए शरीर को सबल बनाना अत्यावश्यक है। जो काम-क्रोधादि पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता उसका मन या शरीर सबल नहीं रह सकता। जब तक मन पाप वासनाओं से भरा है और चञ्चल रहता है तब तक वह किसी विषय पर एकाग्र नही हो सकता, इस लिए योग या समाधि के साधक को सभी आसक्तियों से और कुप्रवृत्तियों से विरत होना आवश्यक है। नियम का पालन का अर्थ है– सदाचार का पालन। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पाँच यम हैं, तथा शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान नियम हैं।

आचार्य हेमचन्द्र ने भी प्रतिपादित किया है कि सम्यक् ज्ञान, तथा सम्यक् आचार से मोक्ष मिलता है। सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् व्यवहार से ही मोक्ष मिलता है। जैन दर्शन मोक्ष या निर्वाण प्राप्त करने के हेतु आचार को प्रधानता देता है। नये कर्मों को रोकने के लिए तथा पुराने कर्मों को नष्ट करने के लिए पञ्च महाव्रत पालन करना नितान्त आवश्यक हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह पाँच व्रत हैं। पातञ्जल योगसूत्र में भी यमों का वर्णन करते हुए काया, वाचा, मनसा अहिंसा का पालन करने के लिए कहा है तथा योग साधनों के लिए अत्यन्त सात्विक आहार की उपादेयता बतलाकर अभक्ष्य भक्षण का निषेध किया गया है। यदि सत्य भी परपीड़ाकर हो, तो न बोलना चाहिये। कौशिक तापस के संच कहने से कई मनुष्यों की क्रूर हत्या हुई थी और उसे नरक मिला था। यह कथन मनु-वचन 'सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्' इस से बिलकुल मिलता-जुलता है। इस प्रकार सत्य के विषय में आचार्य जी ने मध्यम-मार्ग ही बतलाया है। ब्रह्मचर्य के विषय में सुवर्णमध्य का अवलम्बन करते हुए वे योगशास्त्र में लिखते हैं कि अपनी पत्नी की मर्यादित संगति के अतिरिक्त प्रत्येक प्रकार की काम-चेष्टा हेय है। इस व्रत का अभिप्रेय है वेश्या, विधवा, कुमारी और परपत्नी का त्याग। "धर्माविरूद्धो भूतेषु कामोऽस्वि" गीता की इस उक्ति से ऊपर की उक्ति में बहुत साम्य दिखाया देता है। अन्त मे अपरिग्रह व्रत का वर्णन करते हुए हेमचन्द्र कहते हैं कि यह परिग्रह परिमाण

व्रत अच्छी समाज-व्यवस्था का सर्जन कराने वाला व्रत है। व्रत से तृष्णा के समुचित नियन्त्रण, एवं लोभ पर अंकुश हो जाता है। इसके साथ ही वैदिक कार्यक्रमों में रात के भोजन का निषेध किया गया है।

इस प्रकार आत्मोन्नति के लिए आचार्य हेमचन्द्र जी ने अपने योगशास्त्र में आचार-धर्म पर विशेष जोर दिया है। पातञ्जल योग के अष्टांग साधनों में से केवल यम-नियमों पर उन्होंने साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से विचार किया हैं। जिस आत्मा की उन्नति के हेतु पञ्च-महाव्रत आदि साधनों का वर्णन किया गया है उस आत्मा के विषय में—आत्मा के स्वरूप के विषय में भी 'योगसूत्र' तथा 'योगशास्त्र' में बहुत कुछ साम्य पाया जाता है।

महर्षि पतञ्जलि अपने योगसूत्र में आत्मा को स्वभावतः शुद्ध चैतन्य स्वरूप, तथा नित्य मानते हैं। योगसूत्र के अनुसार आत्मा वस्तुतः शारीरिक बन्धनों और मानसिक विकारों से मुक्त रहती है, परन्तु अज्ञान के कारण यह चित्त के साथ-साथ अपना तादात्म्य कल्पित कर लेती है। भ्रमवश वह अपने को चित्त समझने लगती है। इन्द्रिय-निरोध से चित्त का धारा प्रवाह बन्द हो जाता है और आत्मा को अपने यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होता है। यही आत्म-साक्षात्कार योग का उद्देश्य है।

जैन दर्शन के अनुसार, और 'योगशास्त्र' के अनुसार भी, कर्म के अस्तित्व के आधार पर आत्मा स्वतः सिद्ध होती है। आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार आत्मा चैतन्य स्वरूप, परिणामी, कर्ता-साक्षात्, भोक्ता एवं स्वदेह परिमाणः प्रतिक्षेत्रं भिन्नः है। आत्मा ज्ञानमय है किन्तु शरीर के बाहर आत्मा का अस्तित्व नहीं है। आत्मा के ज्ञान-इच्छादि गुणों का शरीर में ही अनुभव होने के कारण इन गुणों की स्वामी आत्मा भी शरीर में ही रहने वाली सिद्ध होती है। आत्मा के ज्ञानमय तथा प्रकाशमय होने के विषय में आचार्य जी लिखते हैं कि सब प्रकार का (यथार्थ-अयथार्थ) ज्ञान स्वप्रकाशक (स्वसंवेदन रूप) है अर्थात् वह स्वयं अपने आपको प्रकाशित करता है। जैसे दीपक को प्रकाशन के लिए दूसरी वस्तु की अपेक्षा नही वह स्वयं प्रकाशरूप है। वैसे ही ज्ञान भी स्वप्रकाश होकर ही पर प्रकाश करता है।

आचार्य हेमचन्द्र की यह उदारता उनकी परमेश्वर विषयक कल्पना में भी दिखायी देती है। वे परमात्मा व्यक्ति के नहीं—उसके गुणों के पूजक हैं। "नमो वक्कार" में सबसे प्रथम "नमो अरि हन्ताणं" से राग-द्वेषादि आन्तरिक शत्रुओं का नाश करने वाले को नमस्कार कहा है। जैन दर्शन के निरीश्वरवादी

होते हुए भी हेमचन्द्र ईश्वरवादी-से प्रतीत होते हैं। वीतराग-स्तोत्रों में उन्होंने महावीर की स्तुति की है, इतना ही नहीं सोमनाथ के मन्दिर में जाकर उन्होंने सोमनाथ की स्तुति भी की है। सर्व साधारण के लिए वे परमेश्वर के लक्षण देते हैं कि सर्वज्ञ राग-द्वेषादि समस्त दोषों से निर्मुक्त त्रैलोक्यपूजित और यथा-स्थित तत्वों के उपदेशक को ईश्वर कहते हैं। वही परमेश्वर 'अर्हत्' देव है। सभी वस्तुओं के ज्ञान में जो रुकावटें या आवरण हैं उनके नष्ट हो जाने पर अर्हन्मुनि का यह स्वभाव ही हो जाएगा कि वे सभी वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करें। फिर सर्वज्ञत्व उनमें क्यों नहीं होगा ? ज्ञान के वर्धमान प्रकर्ष की पूर्णता जिसमें प्रकट होती है वह सर्वज्ञ सर्वदर्शी कहलाता है। जैनों के अनुसार ईश्वर जगत का कर्ता नहीं है। वे यद्यपि जगत् स्रष्टा के रूप में ईश्वर को नहीं मानते हैं फिर भी जैन-धर्म में तीर्थङ्कर ही मानों ईश्वर है। जो-जो गुण ईश्वर के लिए आवश्यक समझे जाते हैं वे सभी जैन तीर्थङ्करों में पाये जाते हैं। मार्ग-दर्शन के लिए एवं अन्तः प्रेरणा के लिए इन्हीं की पूजा की जाती है।

पातञ्जल योगदर्शन के सेश्वर होने पर भी उसमें ईश्वर के स्वरूप की विवेचना नहीं है। ईश्वर की उपयोगिता इसी में है कि वह भी चित्त की एकाग्रता या ध्यान के साधनों में से एक है। इस प्रकार 'योगसूत्र' तथा 'योगशास्त्र' इस विषय में भी पास-पास आ रहे हैं। पातञ्जल 'योगसूत्र' के अनुसार यौगिक साधन के लिए अधिकारी- पात्र व्यक्ति की जरूरत है। चाहे जो मनुष्य आसन, प्राणायाम, ध्यान-धारणा आदि नहीं कर सकता। मनुष्य आसन, प्राणायाम, आदि सोपान परम्परा से ही आत्मसाक्षात्कार का अनुभव कर सकता है, अन्यथा नहीं। अतः पातञ्जल का योगमार्ग एक प्रकार से ऐकान्तिक हो गया है। उसके द्वार सबके लिए खुले नहीं है। उसमें सबको आत्मानुभूति देने का आश्वासन भी नहीं दिया गया है। 'योगशास्त्र' में सभी मनुष्य उनके बताये हुए मार्ग पर चल कर मुक्तावस्था का आनन्द अनुभव कर सकते हैं।

जैन धर्म में सब कुछ आचार-धर्म में ही समाविष्ट है। आचार धर्म में भी आचार्य हेमचन्द्र ने ऐकान्तिकता नहीं आने दी है। उनका दर्शन संसार के भिन्न-भिन्न मतों के प्रति आदरभाव रखने वाला दर्शन है। वहाँ सबके लिये द्वार खुले हैं। उनके मत के अनुसार ब्राह्मण, स्त्री, भ्रूण, गाय, इन सबकी हत्या करने से नरक भोगने के अधिकारी और ऐसे ही अन्य पापी भी योग की शरण लेकर पार उतर गये हैं। (१-२श्लोक) अपराधियों के लिए भी वहाँ आत्मोत्थान करने का अवसर दिया गया है। 'अपराधी मनुष्य के ऊपर भी प्रभु महावीर के

नेत्र दया से तनिक नीचे झुकी हुई पुतली वाले तथा करुणावश आये हुए किंचित् आँसुओं से आर्द्र हो गये। आचार्य हेमचन्द्र के विश्व-व्यापक प्रेम ने तथा अनन्त कारुण्य ने धर्म के द्वार सबके खोल दिये हैं। जिन भगवान की व्याख्यान सभा में किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न था।

आचार्य हेमचन्द्र ने संकुचित दृष्टिकोण भेद के कारण मत-मतान्तरों में संकीर्णता आ जाती है। कामराग और स्नेहराग का निवारण सुकर है; परन्तु अतिपापी दृष्टिराग का उच्छेदन तो पण्डित और साधु-सन्तो के लिए भी दुष्कर है। यह वस्तुस्थिति का सुन्दर चित्रण है। संसार के सभी वाद, सम्प्रदाय, मत इसी दृष्टिराग के ही परिणाम हैं। इस दृष्टिराग के कारण ही संसार में अशान्ति एवं दुख: दिखायी देता है। अत: विश्वशान्ति के लिए तथा दृष्टिराग के उच्छेदन के लिये आचार्य हेमचन्द्र का 'योगशास्त्र' आज भी अत्यन्त उपादेय ग्रन्थ है। हमारे धर्म-निरपेक्ष राज्य में साम्प्रदायिक राग का बढ़ने के पहले ही उच्छेद वाँछनीय है। हेमचन्द्र के योगशास्त्र की उपादेयता इसी में है। कर्म आत्मा पर प्रभाव डालते हैं। कीचड़ में पैर डालकर फिर धोने की अपेक्षा तो कीचड़ में पैर न डालना ही अच्छा है।

आचार्य हेमचन्द्र के योगशास्त्र में शक्ति-सम्प्रदाय के सिद्धान्त भी जगह-जगह बिखरे मिलते हैं। श्री बालचन्द्र सूरि ने "वसन्त विलास" महाकाव्य के मंगलाचरण में शक्ति-पद्धति का अनुमोदन किया है। श्वेताम्बर सम्प्रदायानुसार २४ तीर्थङ्कर की २४ शासनदेवता मानी जाती हैं। सरस्वती के १६ विद्याव्यूह माने जाते हैं।

जैन शासन में तीर्थङ्कार विषयक ध्यान-योग का विधान है। उस ध्यान के धर्मध्यान और शुक्लध्यान दो मुख्य विभाग है। उसमें धर्मध्यान के ध्येयस्वरूप पर बने हुए चार विभाग हैं–(१) पिंडस्थ (२) पदस्थ (३) रूपस्थ और (४) रूपवर्जित। जिस ध्यान में ध्येय अर्थात् ध्यान का आलम्बन पिण्ड में हो ऐसे ध्यान को पिण्डस्थ ध्यान कहते हैं। जिसमें शब्द ब्रह्म के वर्ण पद, वाक्य के ऊपर रचित भावना करनी होती है उसे पदस्थ ध्यान कहते है। जिसमें आकार वाले अर्हत की भावना होती है उसे रूपस्थ ध्यान कहते हैं और जिसमें निराकार आत्मचिन्तन होता है उसे रूपवर्जित ध्यान कहते हैं। इस चार प्रकार के ध्यान में पृथ्वी, जल वायु आदि की धारणा का क्रम पिण्डस्थ ध्यान योग में होता है। और इस पिण्डस्थ ध्यान में अपनी आत्मा को सर्वज्ञकल्प (सर्वज्ञसम) और कल्याण गुण युक्त अपने देश में सतत ध्यान करने वाले को मन्त्र मण्डल की नीची शक्तियाँ, शाकिनी, आदि

क्षुद्र योगिनियाँ बाध नहीं कर सकतीं और हिंस्र स्वभाव के प्राणी अगर उसके पास आकर खड़े हो जाये तो स्तम्भित हो खड़े रह जाते हैं। जैन ध्यान योग का हेमचन्द्र सूरि के अध्यात्मोपनिषद नामान्तरवाले योगशास्त्र में अच्छी तरह से प्रतिपादन किया गया है।

पिण्डस्थ ध्यान के बाद दूसरा ध्यान पदस्थ वर्ग का होता है। इस ध्यान में हिन्दुओं के षट्चक्र वेध की पद्धति के अनुसार वर्णमयी देवता का चिन्तन होता है। इस ध्यानयोग में हिन्दुओं के मन्त्र-शास्त्र की सम्पूर्ण पद्धति स्वीकार की हुई प्रतीत होती है। नाभिस्थान में षोडशदल में सोलह स्वर-मात्राएँ, हृदयस्थान में २४ दल में मध्य कर्णिका के साथ में २५ अक्षर और मूल पंकज में अकचटत-पयश वर्णाष्टक को बनाकर मातृ ध्यान का विधान किया गया है। इस मातृ के ध्यान को सिद्ध करने वाले को नष्ट पदार्थों का तत्काल भान होता है। फिर नाभिस्कंद के नीचे अष्टदल पद्म की भावना करके, उसमें वर्गाष्टक बनाकर प्रत्येक दल की सन्धि में माया प्रणव के साथ अर्हन् पद बनाकर, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उच्चार से नाभि, हृदय, कण्ठ आदि स्थानों को सुषुम्ना मार्ग से अपने जीव को ऊर्ध्वगामी करना और उसके अन्तर में यह चिन्तन करना कि अन्तरात्मा का शोधन होता है। तत्पश्चात् षोडशदल पद्म में सुधा से प्लावित अपनी अन्त-रात्मा को १६ विद्या देवियों के साथ १६ दलों में बैठाकर यह भावना करना कि अमृत भाव मिलता है,। अन्त में ध्यान के आवेश से "सोऽहम्" "सोऽहम्" शब्द से अपने को अर्हत् के रूप में अनुभव करने के लिए मूर्घा में प्रयत्न करना। इस प्रकार जो अपनी आत्मा को, जिस परमात्मा में से राग द्वेष, मोह, निवृत हो गये हैं, जो सर्वदर्शी हैं और जिसे देवता भी नमस्कार करते हैं ऐसे धर्मदेश- धर्मोपदेश को करने वाले अर्हत् देव के साथ एकीभाव को प्राप्त हुआ अनुभव कर सके वे पिण्डस्थ ध्येय सिद्ध किये हुए समझे जा सकते हैं।

इस सामान्य प्रतिक्रिया के सिवाय और भी अनेक मन्त्रो की परम्परा से शक्तियुक्त आत्म-स्वरूप की भावनाओं का विधान योगशास्त्र के अष्टम प्रकाश में कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्रसूरि ने किया है। इन मन्त्रों में प्रणव (ॐ) माया (ह्रीं) आदि बीजाक्षर शक्ति-तन्त्र के जैसे के तैसे स्वीकार किये गये हैं। केवल मुख्य देवता रूप में 'अरिहन्ताणम्' जैन पंचाक्षरी ली गयी है। इस मन्त्र शक्ति की प्रक्रिया का हेमचन्द्रसूरि ने स्वयं आविष्कार नहीं किया, परन्तु प्राचीन गणधरो द्वारा स्वीकृत मन्त्र सम्प्रदाय की रीति के आधार पर ही इसका वर्णन किया है। यह तथ्य उनके योगशास्त्र के ८ वें प्रकाश के अन्तिम श्लोकों से स्पष्ट मालूम

होता है।

पदस्थ ध्यानयोग का फल वर्णन करते हुए हेमसूरि कहते हैं कि ध्यान से योगी वीतराग होता है। इसके अतिरिक्त श्रम को तो केवल ग्रन्थ विस्तार ही समझना चाहिये। मन्त्र विद्या के वर्ण और पद की आवश्यकता हो तो विश्लेषण करना अर्थात् बिना सन्धिवाले पदों को भी प्रयोग में लाना चाहिये क्योंकि वैसा करने से लक्ष्य वस्तु अधिक स्पष्ट होती है। इस जैन शासन में मन्त्ररूपी तत्व-रत्न का प्राचीन गणधरों के प्रमुख पुरुषों द्वारा स्वीकार किये हुए हैं। यह ज्ञान बुद्धिमानों को भी प्रकाश देते हैं। इसलिए ये मन्त्र अनेक भव के क्लेशों का नाश करने के लिए प्रकाशित किए गये हैं।

योगशास्त्र के नवम और दशम प्रकाश में रूपस्थ और रूपवर्जित ध्यान के प्रकारों का वर्णन है, परन्तु उसके साथ शक्ति-वाद का सम्बन्ध नहीं है। उसके बाद की शुक्लध्यान की प्रक्रिया भी शक्तिवाद के साथ सम्बन्ध नहीं रखती। सारांश यह है कि ऐसा प्रतीत होता है कि पिण्डस्थ और पदस्थ ध्यान योग में जैनों को तन्त्र-साधना और तन्त्र-शक्ति को स्वीकारा है और मूल वस्तु की शक्ति को देवता भाव से अङ्गीकार किया गया है। जैनों में भी मलिन विद्या और शुद्ध विद्या का होना सम्भव है। हेमचन्द्रसूरि ने शुद्ध विद्या पर ही जोर दिया है। श्री विंटरनीत्ज अपने भारतीय साहित्य के इतिहास में लिखते हैं कि हेमचन्द्र का 'योगशास्त्र' केवल ध्यानयोग नहीं है अपितु सामान्य धर्माचरण की शिक्षा है। श्री वरदाचारी भी इसी प्रकार का मत प्रकट करते हैं[१]।

१–"योगशास्त्र of Hemchandra does not mean merely meditation or absorption but religions exercise in general, the whole effort which the pious must made. The work contains complete doctrine of duties. The actual योग takes about 1/10 of the whole commentary. Hemchandra is well versed in Brahminical literature and quotes the verses from Manu." History of Indian Literature by Winternitz, vol II; Page 511, 569, 571. तथा योगशास्त्र gives an account of duties of Jains and rigid practices peculiar to the asectic tempermanent of Jains"—History of Sanskrit Litrature by Varadachari, Page 101

हेमचन्द्र की धार्मिक आस्था का स्वरूप – धार्मिक आस्था के सम्बन्ध में विचार करते समय यह ध्यान में रखना चाहिये कि हिन्दू, बौद्ध, जैन सभी धर्मों ने भक्ति पथ को स्वीकार किया है। यह एक अत्यन्त प्राचीन साधना-मार्ग रहा है। आचार्य हेमचन्द्र के ग्रन्थों के विवरण से यह प्रभावित होता है कि केवल स्तुति-स्तोत्र या स्तव-स्तवन ही नहीं पूजा, वन्दना, विनय, मंगल और महोत्सव के रूप में भी जैन भक्ति पनपती रही है। उनके मत से पूजा भक्ति का मुख्य अंग है। ध्यान और भाव पूजा को एक मानकर ध्यान-भक्ति की एकता ही आचार्य हेमचन्द्र ने सिद्ध की है। उसके भावपूजा, द्रव्यपूजा जैसे कई प्रकार भी बतलाये गये हैं। विनय और श्रद्धा का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। नृत्य, गायन, वादन, नाटक, रास, रथ-यात्रा इत्यादि सभी कुछ भक्त के भावों की अभिव्यक्ति है। 'योगशास्त्र' के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जैनों का भगवान वीतरागी है। 'पर' में होने वाला राग ही बन्ध का हेतु है, परन्तु वीतरागी परमात्मा 'पर' नहीं अपितु 'स्व' आत्मा ही है। वीतराग में किया गया अनुराग निष्काम ही है। भगवान अरहन्त या सिद्ध राग-द्वेषरहित होने पर भी भक्तों को उनकी भक्ति के अनुसार फल देते हैं। इस प्रकार परमेश्वर की स्तुति पुण्यवर्धक कर्मों को जन्म देती है। स्तुति पुण्यभोग का निमित्त है, कर्म-क्षय का नहीं। भगवान जिनेन्द्र के चरण कमल-युगल की स्तुति को एक ऐसी नदी माना है जिसके शीतल जल से कालोदग्र दावानल उपशम हो जाता है, अर्थात मोक्ष मिलता है।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने दर्शन ग्रन्थों में एक और आत्मा के गीत गाये तो दूसरी और अर्हन्त के चरणों के निकट श्रद्धा के दीपक जलाये। उन्हीं ने निर्गुण और सगुण जैसे खण्डों की कभी कल्पना नहीं की।

हेमचन्द्र के ग्रन्थों से विदित होता है कि तीर्थयात्रा से भी भक्ति पर प्रदर्शित की जाती है। 'प्रबन्ध चिन्तामणि' के अनुसार सम्राट कुमारपाल ने गिरनार की तीर्थ-यात्रा की थी। उस पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ लगवायी थीं। उसने शत्रुञ्जय तीर्थक्षेत्र के उद्धार में १ करोड़ ६० लाख रुपया व्यय किया था। स्वयं आचार्य हेमचन्द्र भी तीर्थ यात्रा करते थे।

तर्थङ्करो के जन्म महोत्सव, रथ-यात्रा महोत्सव, इत्यादि प्रकारों से भी धार्मिक आस्था प्रकट की जाती थी। धार्मिक आस्था प्रकट करने के ये प्रकार आचार्य हेमचन्द्र को मान्य हैं। उन्होंने अपने महावीरचरित में उस रथ-यात्रा महोत्सव का सरस वर्णन किया है जो सम्राट कुमारपाल ने सम्पन्न करवाया था[1]।

१–प्रतिग्रामं प्रतिपुरमासमुद्रं महीतले। रथयात्रोत्सवं सोऽर्हत्प्रतिमानां करिष्याति
हेमचन्द्राचार्य-महावीरचरित-सर्ग १२-श्लो, ७६

"मोहराज पराजय" नाटक में भी कुमारपाल द्वारा रथ-यात्रा महोत्सव मनाने की आज्ञा देने का उल्लेख है। श्री सोमप्रभाचार्य के 'कुमारपाल प्रतिबोध'(११८५ई.) में तो इस महोत्सव का विशद वर्णन है।

तीर्थङ्करों के जन्मोत्सव के अवसर पर नृत्य-नाटकादिकों का भी आयोजन होता था। यह भी धार्मिक आस्था प्रकट करने का एक माध्यम था। कुमारविहार में भगवान महावीर की मूर्ति की स्थापना के अवसर पर यशपाल मोढ़ के "मोहराज पराजय" नाटक का प्रदर्शन हुआ था। श्री लक्ष्मीशंकर व्यास का मत है कि कुमारपाल ने गुरु हेमचन्द्र से वि० स० १२१६ में जैन धर्म की दीक्षा लेने के उपरान्त कुमारविहार का निर्माण और प्रतिष्ठा करवायी थी[1]।

"इन्द्रमहोत्सव" के प्रारम्भ से सम्बन्धित एक कथा 'त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित' (१–६–२१४–२५) में दी हुई है, जिससे आचार्य हेमचन्द्र की धार्मिक आस्था का स्वरूप मालूम पड़ता है। एक बार ऋषभदेव के पुत्र भरत ने इन्द्रदेव से पूछा कि क्या आप स्वर्ग में भी इसी रूप में रहते है ? इन्द्र ने उत्तर दिया कि वहाँ के रूप को मनुष्य देख ही नहीं सकता। भरत ने देखने की इच्छा प्रकट की तो इन्द्र ने अलङ्कारों से सुशोभित अपनी एक अंगुली भरत को दी। वह जगतीरूपी मन्दिर के लिए दीपक के समान थी। राजा भरत ने अयोध्या में उस अंगुली की स्थापना कर जो महोत्सव मनाया वह 'इन्द्र महोत्सव' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह कथा आवश्यक चूर्णि (पूर्वार्ध २१३५०) और वसुदेव हिण्डी (पृ० १८४) में भी दी हुई है।

वे जैनाचार्य होते हुए भी सोमेश्वर की यात्रा में कुमारपाल के साथ गये थे तथा आवाहन, अवगुण्ठन, मुद्रा, मन्त्र, न्यास, विसर्जन आदि स्वरूप पंचोपचार विधि से उन्होने शिव की पूजा की एवं भगवान शिव को प्रत्यक्ष किया। सारांश यह कि आचार्य हेमचन्द्र की धार्मिक आस्था का स्वरूप अतिविशाल एवं व्यापक था।

१–श्री लक्ष्मीशंकर व्यास-चौलुक्य कुमारपाल-भारतीय ज्ञानपीठ, काशी १९५४ पृष्ठ ३३, ४०.

२–भक्ति के १२ भेद–सिद्धभक्ति[1], श्रुतभक्ति[2], चारित्रभक्ति[3], योगभक्ति[4], आचार्य भक्ति[5], पंचगुरु भक्ति[6], तीर्थङ्कर भक्ति[7], शान्ति भक्ति[8], समाधिभक्ति[9], निर्माण भक्ति[10], नन्दीश्वर भक्ति[11], चैत्यभक्ति[12],

धार्मिक साहित्य में योगशास्त्र का स्थान–संस्कृत का धार्मिक साहित्य सुदूर वैदिककाल से आरम्भ होता है। वेदों में जो कर्मकाण्ड विषयक साहित्य है वही प्राचीनतम धार्मिक साहित्य है। यजुर्वेद तथा ब्राह्मण-ग्रन्थों से यह साहित्य विपुलता से प्राप्त होता है। उसी प्रकार स्मृतिकाल में या सूत्रकाल में संस्कृत में धार्मिक साहित्य की सबसे अधिक समृद्धि हुई। इसके अन्तर्गत यज्ञसंस्था को स्थिर रखने के लिए तदनुकूल आचार-धर्म पर विशेष जोर दिया गया है, तथा वर्णाश्रम धर्म की प्रतिष्ठा की गयी है।

इस काल में धार्मिक साहित्य के अन्तर्गत विशेषतः कल्पसूत्र तथा गृह्यसूत्र आते हैं। श्रोतसूत्र अथवा कल्पसूत्र में वेदोक्त कर्मकाण्ड का ही वर्णन है तथा गृह्यसूत्रों में चातुर्वर्ण्यों के आचार-धर्म का वर्णन है। उसी समय बहुत से स्मृति ग्रन्थ भी लिखे गये जिनमें भी आचार-धर्म की प्रमुखता है।

जैन धर्म भी श्रमण प्रधान है जिसमें आचरण को प्रमुखता दी गयी है। केवल वैदिक कर्मकाण्ड के प्रतिबन्ध एवं उसके हिंसा सम्बन्धी विधानों को छोड़कर जैन धर्म एक प्रकार से ब्राह्मण धर्म को ही स्वीकार करता है। सत्य, अहिंसा, तप, त्याग, साधना, वैराग्य आदि बातें जैन धर्म में वेदान्त के सदृश ही हैं। इस दृष्टि से आचार्य हेमचन्द्र के ग्रन्थों का संस्कृत के धार्मिक साहित्य मे विशिष्ट स्थान है। आचार्य जी अपने योगशास्त्र में कर्म-सिद्धान्त की प्रतिष्ठा करते हैं, तथा आत्म-चिन्तन के लिए श्रवण, मनन, निदिध्यास पर जोर देते हैं। आत्मा की सत्ता एवं साक्षात्कार के लिए आत्मा के विकास पर आचार्य हेमचन्द्र ब्राह्मण धर्म के समान ही जोर देते हैं। आत्मा के विकास के अनुसार ही पंच–महाव्रत इत्यादि द्वादश–व्रतों का उन्होंने योगशास्त्र में वर्णन किया है। अतः हेमचन्द्र ने अपने योगशास्त्र से न केवल जैनियों की आत्मसाधना करने की प्रेरणा की अपितु नैष्कर्म्य के प्रति आसक्त हिन्दूधर्म में भी आत्म-साधना की प्रेरणा की। योगशास्त्र में सभी गृहस्थों के लिए गृहस्थ जीवन में आत्म-साधना करने की प्रेरणा दी है और इस प्रकार पुरुषार्थ से दूर रहने वाले समाज को उन्होंने पुरुषार्थ की प्रेरणा दी। उनका धर्म केवल उन पुरुषों के लिए है जो वीर और दृढ़चित्त है। इनका मूल मन्त्र मानो स्वावलम्बन है। इसलिए ये मुक्तात्मा को 'जिन' या 'वीर' कहते हैं।

संस्कृत का धार्मिक साहित्य अपनी घिसी-पिटी प्राचीन परम्परा को छोड़कर वैष्णवधर्म अथवा भक्ति सम्प्रदाय के रूप में नया मोड़ ले रहा था। हेमचन्द्र का जीवन एवं साहित्य इस सम्प्रदाय के साथ आचार-धर्म में पर्याप्त साम्य रखता था। इस त्रयी दिशा में संस्कृत धार्मिक साहित्य का जो विकास

हो रहा था उसमें आचार्य हेमचन्द्र के ग्रन्थों ने अपूर्व योगदान देकर विकास में मदद दी है। उनके ग्रन्थों ने संस्कृत के धार्मिक साहित्य में भक्ति के साथ श्रमण-धर्म का एवं तदर्थ कठोर साधानायुक्त आचार धर्म का प्रचार किया। अतएव संस्कृत के धार्मिक साहित्य में आचार्य हेमचन्द्र के ग्रन्थों का महत्वपूर्ण स्थान सदैव अक्षुण्ण रहेगा। तत्कालीन समाज में निद्रालस्य को भगाकर जाग्रति उत्पन्न करने का श्रेय आचार्य जी के धार्मिक ग्रन्थों को भी है। उनके योगशास्त्र के अध्ययन एवं अभ्यास से आध्यात्मिक प्रगति की प्रेरणा तो मिलती ही है। ऐहिक जीवन में सात्विक जीवन व्यतीत कर दीर्घायु पाने में एवं सदाचार से आदर्श नागरिक निर्माण कर समूचे समाज को सुव्यवस्थित करने में आचार्य हेमचन्द्र ने अपूर्व योगदान किया है। संक्षेप में राष्ट्रोत्थान के लिए राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण करने में आचार्य हेमचन्द्र के धार्मिक ग्रन्थ पूर्णतया सक्षम हैं। इस दृष्टि से संस्कृत के धार्मिक साहित्य में आचार्य हेमचन्द्र के ग्रन्थों का स्थान सदा ही अनुकरणीय रहेगा।

जैन धर्म का साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। यह अधिकांशतः प्राकृत में है। सूत्र काल में जब अन्य दर्शनों ने जैन-मत की आलोचना की तब जैनों ने अपने मत के संरक्षण के लिए संस्कृत भाषा को अपनाया। इस प्रकार संस्कृत में भी जैन साहित्य का विकास हुआ है। प्राचीनतम धर्म ग्रन्थों में चतुर्दशपूर्व और एकादश अंग गिनाये जाते हैं। लेकिन पूर्व ग्रन्थ अभी लुप्त हो गये हैं। उनके बाद क्रमशः उपांग, प्रकीर्ण सूत्र, इत्यादि नाना श्रेणी के ग्रन्थ लिखे गये हैं। संस्कृत में उमास्वाति का 'तत्वार्थाधिगमसूत्र' सिद्धसेन दिवाकर का 'न्यायावतार' नैमिचन्द्र का 'द्रव्यसङ्ग्रह' मल्लिसेन की 'स्याद्वादमञ्जरी' प्रभाचन्द्र का 'प्रमेय-कमलमार्तण्ड' आदि प्रसिद्ध दार्शनिक ग्रन्थ हैं।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने पूर्ववर्ती सभी आचार्यों के धार्मिक साहित्य का समुचित उपयोग किया और उसी परम्परा को पुष्ट करते हुए उसे विकसित करते हुए, उसे और आगे बढ़ाया है। प्राचीन काल में जैन वर्ग तात्विक विचारों के नाम पर मानो दारिद्रय ही था। केवल कायिकतप, अशन, त्यागपर विशेष जोर दिया जाता था। आभ्यन्तर तप में स्वाध्याय लाचारी से आ गया था। केवल असन त्याग से शरीर तो जीर्ण होता ही है, ज्ञान भी जीर्ण, कृशकाय, मरणासन्न हो जाता है, यह प्रतीति जैन पुराण पुरुष को दूसरों की अपेक्षा बहुत विलम्ब से हुई। उमास्वाति ने सर्व प्रथम इस अनुभूति को व्यक्त किया। उमास्वाति से जैन देह में दर्शनात्मा ने प्रवेश किया। कुछ ज्ञान की चेतना प्रस्फुटित हुई जो आगे

कुन्दकुन्द, सिद्धसेन, अकलंक, विद्यानन्द, हरिभद्र, यशोविजय आदि के रूप में विकसित होती गयी[1]।

इसी ज्ञान की चेतना को आचार्य हेमचन्द्र ने अपनी तर्कशुद्ध एवं तर्कसिद्ध तथा भक्ति युक्त सरस वाणी के द्वारा विकास की परमोच्च चोटी पर पहुँचा दिया। इन्होंने पुरानी जड़ता को जड़मूल से उखाड़ फेंक दिया, एवं आत्मविश्वास का सञ्चार किया। और इस प्रकार आचार्य हेमचन्द्र के ग्रन्थों ने जैन धर्म के साहित्य में समृद्धि तो की है, साथ ही इसमें उत्कृष्टता लाये। जैन धर्म के साहित्य में उनके ग्रन्थों का स्थान अपूर्व है। और उनके ग्रन्थों के कारण ही जैन धर्म गुजरात में तो दृढ़मूल हुआ ही भारतवर्ष में सर्वत्र, विशेषत: मध्य-प्रदेश में, जैन धर्म के प्रचार एवं प्रसार में आचार्य हेमचन्द्र तथा उनके ग्रन्थों ने अभूतपूर्व योगदान किया है। इस दृष्टि से जैन धर्म के साहित्य में आचार्य हेमचन्द्र के ग्रन्थों का स्थान अमूल्य हैं।

—•—

१—जैन दर्शन—मुनि श्री न्याय विजय जी-प्राक्कथन ; शान्तिलाल

अध्याय : ७

उपसंहार

भारतीय साहित्य को हेमचन्द्र की देन

आचार्य हेमचन्द्र की बहुमुखी प्रतिभा

नमोऽस्तु हेमचन्द्राय विशदा यस्य धी-प्रभा
विकासयति सर्वाणि शास्त्राणि कुमुदानिव ॥१॥

कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र – जिन्हें पश्चिमी विद्वान् आदरपूर्वक 'ज्ञान का सागर' (Ocean of Knowledge) कहते हैं – संस्कृत जगत् में विशिष्ट स्थान रखते हैं। संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश साहित्य के मूर्धन्य प्रणेता, आचार्य हेमचन्द्र का व्यक्तित्व जितना गौरवपूर्ण है, उतना ही प्रेरक भी है। 'कलिकालसर्वज्ञ' उपाधि से उनके विशाल एवं व्यापक व्यक्तित्व के विषय में अनुमान लगाया जा सकता है। न केवल अध्यातम एवं धर्म के क्षेत्र में अपितु साहित्य एवं भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में भी उनकी प्रतिभा का प्रकाश समान रूप से विस्तीर्ण हुआ। इनमें एक साथ ही वैयाकरण, आलङ्कारिक, दार्शनिक, साहित्यकार, इतिहासकार, पुराणकार, कोषकार, छन्दोऽनुशासक, धर्मोपदेशक और महान् युगकवि का अन्यतम समन्वय हुआ है। आचार्य हेमचन्द्र का व्यक्तित्व सार्वकालिक, सार्वदेशिक एवं विश्वजनीन रहा है, किन्तु दुर्भाग्यवश अभीतक उनके व्यक्तित्व को सम्प्रदाय-विशेष तक ही सीमित रखा गया। सम्प्रदायरूपी मेघों से आच्छन्न होने के कारण इन आचार्य सूर्य का आलोक सम्प्रदायेतर जन-

साधारण तक पहुँच न सका। स्वयं जैन सम्प्रदाय में भी साधारण बौद्धिक स्तर के लोग आचार्य हेमचन्द्र के विषय में अनभिज्ञ हैं। किन्तु आचार्य हेमचन्द्र का कार्य तो सम्प्रदायातीत और सर्वजनहिताय रहा है। और इस दृष्टि से वे अन्य सामान्य जन, आचार्यो एवं कवियों से कहीं बहुत अधिक सम्मान एवं श्रद्धा के अधिकारी हैं।

भारतीय इतिहास में १२ वीं शताब्दी अर्थात् हेमचन्द्र-युग जैन संस्कृति के जयघोष का युग है। इस समय तक धर्म, आचार और चिन्तन के क्षेत्रों को नियमित और निर्देशित करने वाले शास्त्रों और सूत्र-ग्रन्थों का प्रणयन हो चुका था एवं जन-जीवन की जान्हवी जैन आगमों की उपत्यका से उतर कर लोकभाषा की सपाट समतल भूमि पर विचरण करने लगी थी। विस्तार ने उसका वेग तथा भू-किल्विष कर्दम ने उसका नैर्मल्य कुछ क्षीण कर दिया था। आचारांगादि आगम सूत्रों के उभयतटस्पर्शी तुङग कगारों के बीच उसका प्रवाह यद्यपि अपेक्षाकृत आबद्ध था, फिर भी उसकी शीतल मधुर पावन फुहार की आह्लाद-दायिनी शक्ति में रंचमात्र की कमी न आने पायी थी।

हेमचन्द्र सच्चे अर्थ में आचार्य थे। आचार्य किसे कहते हैं ? आचार्य आचार ग्रहण करवाता है, आचार्य अर्थों की वृद्धि करता है या बुद्धि बढ़ाता है। आचार्य के तीनों धर्मों का समावेश इसमें होता है। आजकल की परिभाषा के अनुसार-आचार्य शिष्य वर्ग को शिष्टाचार तथा सद्वर्तन सिखाता है। विचारों की वृद्धि करता है। जो इस प्रकार बुद्धि की वृद्धि करता है। जो चरित्र तथा बुद्धि का विकास करने में समर्थ हो; वह आचार्य है। इस अर्थ में आचार्य हेमचन्द्र गुजरात के एक प्रधान आचार्य हो गये, यह निःसन्देह है। यह बात उनके जीवन-कार्य का और लोक में उसके परिणाम का इतिहास देखने से स्पष्ट हो जाती है। आचार्य के सभी गुण हेमचन्द्र में विद्यमान थे।

संस्कृत साहित्य और विक्रमादित्य के इतिहास में जो स्थान कालिदास का और श्री हर्ष के दरबार में जो स्थान बाणभट्ट का है, प्रायः वही स्थान १२ वीं शताब्दी में चौलुक्य वंशोद्भव सुप्रसिद्ध गुर्जर नरेन्द्र शिरोमणि सिद्धराज जयसिंह के इतिहास में श्री हेमचन्द्राचार्य का है। आचार्य हेमचन्द्र अनेक विद्याओं तथा शास्त्रों में निष्णात थे। श्री सोमप्रभसूरि ने शतार्थकाव्य में इनका गौरव-पूर्वक उल्लेख किया है –"विद्यांभोनिधि मंथ मंदर गिरिः श्री हेमचन्द्रो गुरुः"। ग्रन्थों की सर्वांगपूर्णता, वैज्ञानिकता और सरलता की दृष्टि से इनका स्थान अद्वितीय है। निखिलशास्त्र निपुणता तथा बहुज्ञता के कारण उन्होंने कलिकाल-

सर्वज्ञ की उपाधि प्राप्त की थी । उनकी योग्यता, उनकी क्षमता, उनका जीवन, उनका कार्य, उनका आचार–व्यवहार–चरित्र सभी गुण शतप्रतिशत आचार्य के समान थे ।

आचार्य के साथ-साथ वे कलिकाल-सर्वज्ञ भी थे । महान् विद्वान् के साथ-साथ वे चमत्कारी पुरूष थे । योगसिद्ध होने से उन्होंने अनेक अलौकिक बातें क्रियान्वित की थीं । आचार्य हेमचन्द्र मन्त्र-विद्या में पारङ्गत थे किन्तु उन्होंने उसका उपयोग सांसारिक वैभवों की प्राप्ति में कभी नहीं किया । उनके पास विद्याएँ थीं, मंत्र थे और उन्हें देवियां सिद्ध थीं । किन्तु आचार्य हेमचन्द्र ने उनका कभी रागात्मक प्रयोग नहीं किया । हेमचन्द्राचार्य स्वयं चमत्कारसिद्ध पुरुष थे फिर भी वे लोगों को चमत्कार के जाल में मोहित करना नहीं चाहते थे । उनकी धार्मिक आस्था मूलरूप से बुद्धिवाद पर ही थी । हेमचन्द्र यद्यपि बुद्धिवादी प्रकाण्ड पण्डित थे फिर भी अलौकिक शक्ति पर उनका विश्वास था और वे अलौकिक शक्तियुक्त स्वयं भी थे । उन्होंने अपने आश्रयदाता कुमारपाल की बीमारी अपनी मंत्र-शक्ति से दूर की थी । वृद्धावस्था में लूता रोग हो जाने पर अष्टांगयोगाभ्यास द्वारा लीला के साथ उन्होंने उस रोग को नष्ट कर दिया था[1] । 'प्रभावकचरित' (५–११५–१२७) में जोणिपाहुड़ (योनिप्राभृत) के बल से मछली और सिंह उत्पन्न करने की तथा 'विशेषावश्यकभाष्य' (गाथा १७७५) की हेमचन्द्र–सूरि कृत टीका में अनेक विजातीय द्रव्यों के संयोग से सर्प, सिंह आदि प्राणि और मणि, सुवर्ण आदि अचेतन पदार्थो के पैदा करने का उल्लेख मिलता है । आज भी पाटन में उनकी अलौकिक शक्तियों के सम्बन्ध में नाना-प्रकार की किंबदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं । वैसे भी ३॥ करोड़ पंक्तियों के विराट साहित्य का एक व्यक्ति के द्वारा सृजन करना स्वयं में असाधारण बात है । आचार्य हेमचन्द्र अपने भव्य व्यक्तित्व के रूप में एक जीवित विश्वविद्यालय अथवा मूर्तिमान ज्ञानकोष थे । उन्होंने ज्ञानकोष के समकक्ष विशाल ग्रन्थ सङ्ग्रह का भी भावी पीढ़ी के लिये सृजन किया था

प्रो० पारीख इन्हें 'Intellectual giant' कहा है । वे सचमुच 'लक्षणा' साहित्य तथा तर्क' अर्थात व्याकरण, साहित्य तथा दर्शन के असाधारण आचार्य थे । वे सुवर्णाभ कान्ति के तेजस्वी, आकर्षक, व्यक्तित्व को धारण करने वाले महापुरुष थे । वे तपोनिष्ठ थे, शास्त्रवेत्ता थे तथा कवि थे । व्यसनों को छुड़ाने में वे प्रभावकारी सुधारक भी थे । उन्होंने जयसिंह और कुमारपाल की

१—प्रबन्धचिन्तामणि–हेमप्रबन्ध

सहायता से मद्यनिषेध सफल किया था। उनकी स्तुतियाँ उन्हें सन्त सिद्ध करती हैं, तथा आत्म-निवेदन उन्हें योगी सिद्ध करता है। वे सर्वज्ञ के अनन्य उपासक थे।

आचार्य हेमचन्द्र के दिव्य जीवन में पद-पद पर हम उनकी विविधता, सर्वदेशीयता, पूर्णता, भविष्यवाणियों में सत्यता और कलिकाल-सर्वज्ञता देख-सकते हैं। उन्होंने अपनी ज्ञान-ज्योत्स्ना से अंधकार का नाश किया। वे महर्षि, महात्मा, पूर्ण संयमी, उत्कृष्ट जितेन्द्रिय एवं अखण्ड ब्रह्मचारी थे। वे निर्भय, राजनीतिज्ञ, गुरुभक्त, मातृभक्त, भक्तवत्सल तथा वादिमानमर्दक थे। वे सर्वधर्मसमभावी, सत्य के उपासक, जैन धर्म के प्रचारक तथा देश के उद्धारक थे। वे सरल थे, उदार थे, निस्पृह थे। सबकुछ होते हुए भी, प्रो० पीटर्सन के शब्दों में, दुनिया के किसी भी पदार्थ पर उनका तिलमात्र मोह नहीं था। उनके प्रत्येक ग्रन्थ में विद्वत्ता की झलक, ज्ञानज्योति का प्रकाश, राजकार्य में औचित्य, अहिंसा प्रचार में दीर्घदृष्टि, योग में स्वानुभव का आदर्श, प्रचार-कार्य में व्यवस्था, उपदेश में प्रभाव, वाणी में आकर्षण, स्तुतियों में गांभीर्य, छन्दों में बल, अलंकारों में चमत्कार, भविष्यवाणी में यथार्थता एवम् उनके सम्पूर्ण जीवन में कलिकाल-सर्वज्ञता झलकती है[1]।

आचार्य हेमचन्द्र जैनाचार के प्रति केवल आस्थावान ही नहीं थे अपितु स्वयं भी एक सूरि का जीवन व्यतीत करते थे। उन्होंने अपने प्रभाव एवम् उपदेश से ३३००० कुटुम्ब अर्थात लगभग १॥ लाख व्यक्ति जैन धर्म में दीक्षित किये। इतना सब होते हुए भी हेमचन्द्राचार्य प्रकृति से सन्त थे। सिद्धराज जयसिंह एवम् कुमारपाल की राज्यसभा में रहते हुए भी उन्होंने राज्यकवि का सम्मान ग्रहण नहीं किया। वे राज्यसभा में भी रहे तो आचार्य के रूप में ही। गुजरात का जीवन उन्नत करने के लिये उन्होंने अहिंसा और तत्वज्ञान का रहस्य जन-साधारण को समझाया, उनसे आचरण कराया और इसीलिये अन्य स्थानों की अपेक्षा गुजरात में आज भी अहिंसा की जड़ें अधिक मजबूत हैं। गुजरात में अहिंसा की प्रबलता का श्रेय आचार्य हेमचन्द्र को ही है। गुजरात ने ही आचार्य हेमचन्द्र को जन्म दिया तथा गुजरात ने ही आगे जाकर महात्मा गाँधी को जन्म दिया। यह दैवी घटनाओं का चमत्कार प्रतीत होता है, किन्तु वास्तव में आचार्य हेमचन्द्र ने अपने दिव्य आचरण से, प्रभावकारी प्रचार एवं उपदेश से महात्मा गांधी के जन्म की पृष्ठभूमि ही मानों तैयार की थी।

भारत के इतिहास में यदि सर्वथा मद्यविरोध तथा मद्यनिषेध हुआ है

१—हेमचन्द्राचार्य– ईश्वरलाल जैन-आदर्श ग्रन्थमाला, मुलतान।

तो वह सिद्धराज एवं कुमारपाल के समय में ही। इसका श्रेय निःसन्देह पूर्णतया आचार्य हेमचन्द्र को ही है। उस समय गुजरात की शान्ति, तुष्टि, पुष्टि एवम् समृद्धि के लिये आचार्य हेमचन्द्र ही प्रभावशाली कारण थे। इनके कारण ही कुमारपाल ने अपने आधीन अठारह बड़े देशों में चौदह वर्ष तक जीवहत्या का निवारण किया था। कर्णाटक, गुर्जर, लाट, सौराष्ट्र, कच्छ, सिन्धु, उच्च भंमेरी, मरुदेश, मालव, कोकण, कीर जांगलक, सपादलक्ष, मेवाड़, दिल्ली और जालंधर देशों में कुमारपाल ने प्राणियों को अभयदान दिया और सातों व्यसनों का निषेध किया।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने पाण्डित्य की प्रखर किरणों से साहित्य, संस्कृति और इतिहास के विभिन्न क्षेत्रों को आलोकित किया है। वे केवल पुरातन पद्धति के अनुयायी नहीं थे। जैन साहित्य के इतिहास में 'हेमचन्द्र युग' के नाम से पृथक समय अंकित किया गया है तथा उस युग का विशेष महत्व है। वे गुजराती साहित्य और संस्कृति के आद्य-प्रयोजक थे। इसलिये गुजरात के साहित्यिक विद्वान् उन्हें गुजरात का "ज्योतिर्धर" कहते हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन तत्कालीन गुजरात के इतिहास के साथ गुंथा हुआ है। उन्होंने अपने ओजस्वी और सर्वाङ्गपरिपूर्ण व्यक्तित्व से गुजरात को संवारा है, सजाया है और युगयुग तक जीवित रहने की शक्ति भरी है। "हेम सारस्वत सत्र" उन्होंने सर्वजनहिताय प्रकट किया। क० मा० मुन्शी ने उन्हें गुजरात का चेतनदाता "Creator of Gujarat consciousness" कहा है[1]।

'त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित' की प्रशस्ति में उन्होंने कहा है कि व्याकरण की रचना तो सिद्धराज जयसिंह के अनुरोध पर की गयी किन्तु द्व्याश्रय, काव्यानुशासन, छन्दोऽनुशासन, योगशास्त्र आदि की रचना 'लोकाय' लोगों के लिये की गयी। यहां 'लोकाय' का अर्थ 'साम्प्रदायिक मनोवृति के लोग जैन' किया जाता है, किन्तु निःसन्देह आचार्य हेमचन्द्र के सम्मुख जो श्रोतृवृन्द अथवा पाठकवर्ग था वह जैन सम्प्रद्राय से अधिक व्यापक था। उसमें सभी धर्मों के सभी सम्प्रदायों के लोग सम्मिलित थे।

आचार्य हेमचन्द्र कलात्मक निर्माण के भी प्रेरक थे। इनकी प्रेरणा से पश्चिम तथा पश्चिमोत्तर भारत में अनेक मन्दिरों एवं विहारों का निर्माण हुआ। सिद्धपुर में सिद्धराज ने रूद्रमहालय प्रासाद बनवाया। यह २३ हाथ ऊँचा

१—जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास—मो. द. देसाई तथा गुजरात एण्ड इट्स लिटरेचर—क. मा. मुन्शी

सर्वाङ्गपूर्ण प्रासाद है। उस प्रासाद में अश्वपति, गजपति, नरपति इत्यादि बड़े-बड़े राजाओं की मूर्तियाँ बनवाकर हैं और उनके सामने हाथ जोड़े हुए अपनी मूर्ति भी बनवायी है। सिद्धराज ने सहस्रलिङ्ग सरोवर बनवाया। कुमारपाल ने सोमेश्वर-सोमनाथ मन्दिर का उद्धार किया। कुमारपाल ने १४४० नये विहार बनवाये। त्रिभुवनपाल विहार में पार्श्वनाथ की मूर्ति की स्थापना करवायी। इसके अतिरिक्त मूषक विहार, यूकाविहार, करम्बकविहार, झोलिका विहार आदि विहार बनवाये। संसार-प्रसिद्ध ऐतिहासिक सोमनाथ के मन्दिर का पुनर्निमाण आचार्य हेमचन्द्र की प्रेरणा से ही हुआ था। 'प्रबन्ध-चिन्तामणि' में इसका उल्लेख है। पञ्चकूल के मन्दिर का निर्माण पूर्ण हो जाने पर आचार्य हेमचन्द्र और कुमारपाल दोनों ही देवदर्शन करने के लिये गये थे। आचार्य हेमचन्द्र के प्रभाव एवं प्रेरणा से गुजरात तथा राजस्थान में बने मन्दिर एवं विहार कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। उनमें वास्तुकला की सारी शैलियों का समावेश हुआ है। उस समय के स्थापत्य निर्माण में द्राविड़ तथा आर्य-शैलियों का समन्वय किया गया है। जैनों द्वारा निर्मित कीर्तिस्तम्भ अथवा मन्दिरों में पथ के रूप से निर्मित स्तम्भ उनकी कला के यश के परिचायक हैं। स्तम्भ पर नक्काशी भी पायी जाती है[1]। आबू पहाड़ पर स्थित श्वेत पाषाणों से बना हुआ जैन मन्दिर स्थापत्य के वैभव का सूचक है। मन्दिरों के गुम्बद अष्ट-कोणीय हैं। मेहराबों की रचना कुछ इस तरह की है जिससे आठों स्तम्भ उस गुम्बद के अन्तरङ्ग की शोभा बढ़ाते हैं। इस गुम्बद के भीतरी भाग के अलङ्कार चक्र एकहरे, दोहरे, तिहरे होकर गुम्बद के केन्द्र तक पहुँचे हैं। इस अलङ्कार चक्र का वैचित्र्य तथा उसकी समृद्धि दोनों उच्चकोटि की सुरुचि का संवर्धन तथा पोषण करते हैं। गुजरात के बड़नगर के सुन्दर तोरणों या प्रवेश द्वार की भव्यता, खुदाई की अनुपम पटुता तथा शोभा भारतीय स्थापत्यकला को संसार की आंखों में निःसन्देह ऊंचा उठाती है। इस युग में भवन-निर्माण में भी जैनों ने काफी रुचि बतलायी और इस सब के प्रेरणास्रोत आचार्य हेमचन्द्र थे।

व्याकरण शास्त्र में हेमचन्द्र का योगदान –मालव और गुजरात में राजनीतिक ईर्ष्या शताब्दियों से चली आ रही था। राजनीतिक ईर्ष्या की यह भावना आगे जाकर साहित्यिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र तक व्यापक हो गयी थी। भोजदेव के लगभग ८० वर्ष पश्चात् गुजरात के प्रसिद्ध राजा सिद्धराज जयसिंह मालवा के भोजवंशीय राजा यशोवर्म देव को युद्ध में परास्त करके अवन्तिनाथ कहलाने लगा

१–प्रबन्धचिन्तामणि तथा भारतीय वास्तुशास्त्र पृ. ७२–डी. एन. शुक्ल।

था। उस समय सिद्धराज जयसिंह उज्जैन में आये। 'प्रभावक चरित' के अनुसार जब अधिकारीगण सिद्धराज जयसिंह को उज्जैन का ग्रन्थालय दिखा रहे थे तब उनकी दृष्टि व्याकरण ग्रन्थ पर पड़ी। हेमचन्द्राचार्य ने बतलाया, यह शब्द-शास्त्र पर ग्रन्थ है। इसी तरह अलङ्कारशास्त्र, दैवज्ञशास्त्र, तर्कशास्त्र, इत्यादि के ग्रन्थ वे बताते रहे। राजा ने पूछा, 'क्या हमारे यहाँ कोई विद्वान नहीं जो इस प्रकार शास्त्रीय ग्रन्थ रचना कर सके'। सब लोग हेमचन्द्राचार्य की तरफ देखने लगे। राजा ने हेमचन्द्र से इस सम्बन्ध में पुन: पुन: प्रार्थना की' तब हेमचन्द्र ने कहा, 'कर्तव्यनिर्देश के लिये आपके शब्द पर्याप्त हैं। भारतीय देवी के ग्रन्थालय में ८ व्याकरण ग्रन्थ हैं। उन ग्रन्थों को काश्मीर से मंगाइये'। तत्पश्चात् हेमचन्द्र ने उपलब्ध विभिन्न व्याकरणों का सम्यक् अध्ययन कर सिद्धराज जयसिंह के नाम के साथ जोड़कर "सिद्ध हेम शब्दानुशासन" नामक ग्रन्थ रचा।

जितने प्राचीन आर्ष व्याकरण बने उनमें सम्प्रति एकमात्र पाणिनीय व्याकरण ही साङ्गोपाङ्ग उपलब्ध होता हैं। पाणिनि के पश्चात् कई शताब्दियों तक व्याकरण के क्षेत्र में पाणिनि का ही साम्राज्य रहा है। वार्तिककार कात्यायन तथा महाभाष्यकार पतञ्जलि ने अपने बहुमूल्य ग्रन्थों से पाणिनि का ही गौरव बढ़ाया है। कैयट ने 'महाभाष्य प्रदीप' लिखकर तथा जयादित्य वामन ने 'काशिका-वृत्ति' लिखकर, जिनेन्द्रबुद्धि ने 'न्यास' ग्रन्थ लिखकर इस परम्परा को परमोच्च चोटी तक पहुँचाया, किन्तु इस परम्परा में कुछ परिवर्तन कर, व्याकरण की नयी प्रणाली को जन्म देने का श्रेय आचार्य हेमचन्द्र को ही है।

पाणिनि के 'अष्टाध्यायी' में प्रक्रियानुसार प्रकरण रचना नहीं है। कातन्त्र की प्रक्रियानुसारी परम्परा को पुनरुज्जीवित कर आचार्य हेमचन्द्र ने व्याकरण के क्षेत्र में स्वयं का एक 'हैम सम्प्रदाय' निर्माण किया। हेमचन्द्र के प्रकरणानुसारी 'सिद्धहैम' अथवा 'शब्दानुशासन' का परवर्ती वैयाकरणों पर इतना प्रभाव हुआ कि पाणिनिय वैयाकरणों ने भी अष्टाध्यायी की प्रक्रिया पद्धति से पठन-पाठन की नयी प्रणाली का अविष्कार किया।

सोलहवीं शताब्दी के बाद तो पाणिनीय व्याकरण की समस्त पठन-पाठन प्रक्रिया ग्रन्थानुसार होने लगी। सूत्रपाठ, क्रमानुसारी पठन-पाठन शनैः शनैः उच्छिन्न हो गया। अष्टाध्यायी क्रम से पाणिनीय व्याकरण का अध्ययन प्राय: लुप्त हो गया।

आचार्य हेमचन्द्र के व्याकरण की पहली विशेषता यह है कि उन्होंने व्याकरण से सम्बद्ध सभी अङ्गों का प्रवचन स्वयं ही किया है। आचार्य हेमचन्द्र

ने अपने व्याकरण की बृहद् बृत्ति में कतिपय शिक्षासूत्रों को उद्धृत किया है। व्याकरण की रचना में यह असामान्य बात है। 'शब्दानुशासन' की दूसरी विशेषता यह है कि संस्कृत व्याकरण के साथ ही साथ वह प्राकृत तथा अपभ्रंश का भी प्रामाणिक व्याकरण है। उन्होंने अपने व्याकरण पर दो वृत्तियां लिखी हैं, एक लघुवृत्ति तथा दूसरी बृहद्वृत्ति। इसके अतिरिक्त स्वोपज्ञवृत्ति सहित धातूपारायण उणादि तथा लिङ्गानुशासन भी उन्होंने लिखा है। आचार्य हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण पर एक वृहन्नयास भी लिखा है। पण्डित भगवानदास ने इसका अन्वेषण तथा सम्पादन किया है। कहते हैं कि उसमें ८४,००० हजार श्लोक थे। सम्पादित अंश को देखकर हम उसकी सत्यता के विषय में निश्चित अनुमान कर सकते हैं।

इतनी विशाल एवं विराट् कृति को आश्चर्य जनक रुप से आचार्य जी ने अकेले ही सृजित किया है। हेमचन्द्र का व्याकरणशास्त्र में यह योगदान महत्वपूर्ण है। किन्तु शब्दानुशासन को ही सम्पूर्ण न मानकर शब्दशास्त्र की सम्पूर्णता के लिये उन्होंने चार कोश ग्रन्थ लिखे। इतने पर भी आचार्य हेमचन्द्र ने विश्राम नहीं किया। उन्होंने अपने व्याकरण की सोदाहरण व्याख्या करने के लिए शास्त्रकाव्य की भी रचना की। व्याकरण के क्षेत्र में इतना विशाल योगदान पतञ्जलि के बाद अन्य किसी भी वैयाकरण ने नहीं किया।

प्राकृत व्याकरण में अपभ्रंश का प्रकरण तो उनकी अन्यतम विशेषता है ही किन्तु अपभ्रंश के जो उदाहरण उन्होंने प्रस्तुत किये है वे अपभ्रंश साहित्य के मौलिक रत्न भी हैं। हेमचन्द्र प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य के उच्चकोटि के आचार्य थे। अपभ्रंश तथा आंचलिक बोलियों तथा विभिन्न विषयों का इतना बड़ा विशेषज्ञ उस युग में और कोई नहीं हुआ। पाणिनि और सायण से इनका महत्व किसी प्रकार कम नहीं था।

अपभ्रंश भाषा और साहित्य को हेमचन्द्र की देन– अपभ्रंश शब्द का अर्थ है शिष्टेतर या शब्द का बिगड़ा हुआ रूप। यह शब्द अपाणिनीय रूप के लिये प्रयुक्त होता था। अपभ्रंश मध्यकालीन और आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की बीच की कड़ी है, जिसका अधिक लगाव परवर्ती अर्थात् भारतीय आर्य भाषाओं से है। अपभ्रंश के अनेक नाम मिलते हैं, यथा अपभ्रंश, अवहंश, अपभ्रष्ट, अवहट्ट इत्यादि।

महर्षि पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में लिखा है कि, "भूयांसोऽपशब्दाः अल्पीयांसः शब्दाः। एकैकस्य हि शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः तद्यथा-गौरित्यस्य शब्दस्य गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका इत्येवमादयोऽपभ्रंशाः"। अर्थात् अपशब्द

बहुत और शब्द (शुद्ध) थोड़े हैं, क्योंकि एक-एक शब्द के बहुत अपभ्रंश है, जैसे गौ शब्द के गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका इत्यादि अपभ्रंश हैं। यहाँ पर 'अपभ्रंश' शब्द अपशब्द के अर्थ में ही व्यवहृत है, और अपशब्द अर्थ भी संस्कृत व्याकरण से असिद्ध शब्द है। उक्त उदाहरणों में गावी, गोणी इन दो शब्दों का प्रयोग प्राचीन जैन सूत्र ग्रन्थों में पाया जाता है[१]। चण्ड तथा आचार्य हेमचन्द्र आदि प्राकृत वैयाकरणों ने भी ये दो शब्द अपने-अपने प्राकृत व्याकरणों में लक्षण द्वारा सिद्ध किये हैं[२]। दण्डी ने अपने 'काव्यादर्श' में पहले प्राकृत और अपभ्रंश का अलग-अलग निर्देश करते हुए काव्यों में व्यवहृत आभीर प्रभृति की भाषा को अपभ्रंश कहा है और बाद में यह लिखा है कि 'शास्त्र में संस्कृत भिन्न सभी भाषायें अपभ्रंश कही गयीं हैं[३]। प्राकृत वैयाकरणों के मत में अपभ्रंश भाषा प्राकृत का ही एक अवान्तर भेद है। 'काव्यालंकार' की टीका में नमिसाधु ने लिखा है कि "प्राकृतमेवापभ्रंशः" (२-१२)अर्थात् अपभ्रंश भी शौरसेनी, मागधी आदि की तरह एक प्रकार की प्राकृत ही है। उक्त क्रमिक उल्लेखों से यह स्पष्ट है कि पतञ्जलि के समय में जिस अपभ्रंश शब्द का 'संस्कृत व्याकरण असिद्ध' इस सामान्य अर्थ में प्रयोग होता था उसने आगे जाकर क्रमशः प्राकृत का एक भेद के विशेष अर्थ को धारण किया।

अपभ्रंश भाषा के निदर्शन 'विक्रमोर्वशीयम्' 'धर्माभ्युदय' आदि नाट्य-ग्रन्थों में, 'हरिवंशपुराण' (स्वयम्भू), 'पउमचरिउ' (स्वयम्भू), 'भविसयत्तकहा' (धनपाल), *'संजम मंजरी', 'महापुराण'* (जिनसेन), 'जसहर चरिउ', 'णाय-कुमार चरिउ' (पुष्पदन्त), 'कथाकोष' (हरिषेण), 'पार्श्वपुराण' (चन्द्रकीर्ति), 'सुदंसण-चरिउ' (नयनंदि), 'करकंड चरिउ' (कनकामर), 'जयतिहुअणस्तोत्र', 'विलासवईकहा', 'सणंकुमार चरिउ' (हरिभद्र), 'सुपासनाहचरित', 'कुमारपाल चरित' (हेमचन्द्र), 'कुमारपाल प्रतिबोध', 'उपदेशतरंगिणी', प्रभृति काव्य ग्रन्थों में 'प्राकृत लक्षण', 'सिद्धहेम शब्दानुशासन' (अष्टम अध्याय), 'संक्षिप्तसार', 'षड्भाषाचन्द्रिका', 'प्राकृत सर्वस्व' आदि व्याकरणों में और 'प्राकृत पिङ्गल', 'छन्दोऽनुशासन' आदि छन्द-ग्रन्थों में पाये जाते हैं। अधिकतर अपभ्रंश साहित्य जैन भाण्डागारों में प्राप्त हुआ है अर्थात् अधिकतर जैन अपभ्रंश साहित्य सामने आया है। जैनों द्वारा रचित पुराणसाहित्य,आख्यानक काव्य,कथा-काव्य

१— *खारीणियाओ गावीओ, गोणं वियालं (आचा २,४,५); गोवीणं सगेल्लं (व्यवहारसूत्र उ. ४) णगरगावीओ (वि पा १,२-पम २६)*

२— प्राकृत लक्षण २,१६ तथा हे. प्रा. २, १७४

३— काव्यादर्श १-३६

और उपदेशात्मक धार्मिक और खंडनमंडनात्मक प्रशस्तिमूलक रचनाएँ मिलीं हैं। इतना ही नहीं, इनके अतिरिक्त मुक्तकों के रूप में विशुद्ध लौकिक शृङ्गारिक काव्य भी मिले हैं।

डॉ. होर्नेलि के मत में आर्यों की कथ्यभाषाएँ भारत के आदिमनिवासी अनार्य लोगों की भिन्न-भिन्न भाषाओं के प्रभाव से जिन रूपान्तरों को प्राप्त हुई थीं वे ही भिन्न-भिन्न अपभ्रंश भाषाएँ । सर ग्रियर्सन प्रभृति आधुनिक भाषा-तत्वज्ञ इसको स्वीकार नहीं करते। इनके मत से व्याकरण नियमित भिन्न-भिन्न प्राकृत भाषाएँ जनसाधारण में अप्रचलित होने के कारण जिन नूतन कथ्य-भाषाओं की उत्पत्ति हुई थी; वे ही अपभ्रंश भाषाएँ हैं[१]। ये अपभ्रंश भाषाएँ ईसवी पंचम शताब्दी के बहुत काल पूर्व से ही व्यवहृत होती थीं। महाकवि कालिदास के 'विक्रमोर्वशीयम्' नाटक में अपभ्रंश के रूप पाये जाते हैं। अतः कालिदास के समय से ही अपभ्रंश भाषाएँ साहित्य में स्थान पाने लगी थीं, यह स्पष्ट है। ये अपभ्रंश भाषाएँ प्रायः दशम शताब्दी पर्यन्त साहित्य की भाषाएँ थीं। इन अपभ्रंश भाषाओं की मूल वे विभिन्न प्राकृत भाषाएँ हैं जो भारत के विभिन्न प्रदेशों में पूर्वकाल में प्रचलित थीं।

अपभ्रंश के बहुत भेद हैं। 'प्राकृतचन्द्रिका' में इसके २७ भेद बताये गये हैं। मार्कण्डेय ने अपने 'प्राकृत सर्वस्व' में इन भेदों को नगण्य कहकर समस्त अपभ्रंशों, को नागर, ब्राचड, उपनागर, इन तीन प्रधान भेदों में ही विभाजित किया है। जिन अपभ्रंश साहित्य में निबद्ध होने से जो रूप पाये जाते हैं उनके लक्षण और उदाहरण आचार्य हेमचन्द्र ने केवल अपभ्रंश के सामान्य नाम से और मार्कण्डेय ने अपभ्रंश के तीन विशेष नामों से दिये हैं। आचार्य हेमचन्द्र ने 'अपभ्रंश' इस सामान्य नाम से जो उदाहरण दिये हैं वे राजपूताना तथा गुजरात प्रदेश के अपभ्रंश से ही सम्बन्ध रखते हैं। ब्राचडापभ्रंश सिन्ध प्रदेशीय अपभ्रंश से सम्बद्ध है। इसके सिवाय शौरसेनी अपभ्रंश के निदर्शन मध्यदेश के अपभ्रंश में पाये जाते हैं।

महाराष्ट्री प्राकृत में व्यञ्जनों का लोप सर्वापेक्षा अधिक है। अपभ्रंश में उक्त नियम का व्यत्यय देखने में आता है। महाराष्ट्री में जो व्यञ्जन वर्ण-लोप देखा जाता है अपभ्रंश में उसकी अपेक्षा अधिक नहीं, कम ही वर्णलोप पाया जाता है। ऋ, संयुक्त र कार भी विद्यमान है। वर्णलोप की गति ने महाराष्ट्री को स्वर बहुल आकार में परिणत कर दिया था। अपभ्रंश में उसी

१—वंगीय साहित्य परिषद् पत्रिका, १३१७

की प्रतिक्रिया आरम्भ हुई और प्राचीन स्वर-व्यञ्जनों को फिर स्थान देकर भाषा को भिन्न आदर्श में गठित करने की चेष्टा हुई। प्रादेशिक अपभ्रंश भाषाएँ साहित्य की भाषाओं के रूप में उन्नत होने लगीं। "सुभव्योऽपभ्रंशः सरसरचनं भूतवचनम्"[१] अपभ्रंश भाषा भव्य है, पैशाची की रचना रसपूर्ण है।

अपभ्रंश साहित्य की रचनाएं मुक्तक और प्रबन्ध दोनों रूपों में मिलती हैं। जैनों द्वारा लिखित तीन प्रकार की प्रबन्धात्मक अपभ्रंश रचनाएँ मिलती हैं— पुराण साहित्य, चरितकाव्य तथा कथाकाव्य। विशुद्ध लौकिक श्रृंगारिक अपभ्रंश काव्य आचार्य हेमचन्द्र के ग्रन्थों में मुक्तकों के रूप में तथा सन्देश रासकादि के रूप में मिलता है। आचार्य हेमचन्द्र के साहित्य में 'कुमारपाल चरित', 'प्राकृत शब्दानुशासन' का अन्तिम भाग, 'छन्दोऽनुशासन' तथा देशी नाममाला में अपभ्रंश पद्य पाये जाते हैं जिनसे उस कालतक के अपभ्रंश साहित्य का भी अनुमान किया जा सकता है। हेमचन्द्र के 'कुमारपाल चरित' नामक प्राकृत द्वयाश्रय काव्य के अन्तिम सर्ग में [illegible]–८२ तक पद्य अपभ्रंश में मिलते हैं। कथा की दृष्टि से प्रथम सर्ग से अष्टम सर्ग तक नगरवर्णन-ऋतुवर्णन, चन्द्रोदय, जिनमन्दिरगमन, पूजनादि विषयों का वर्णन विशद् और सुविस्तृत है। काव्य और व्याकरण की आवश्यकताओं की एक-साथ पूर्ति बड़ा दुष्कर कार्य है। इस दुष्कर कार्य को ही हेमचन्द्र ने अपनी इस कृति में बड़ी कुशलता से निबाहा है। इसकी तुलना संस्कृत साहित्य के एक 'भट्टी काव्य' से की जा सकती है, किन्तु 'भट्टी' में वह पूर्णता और क्रमबद्धता नहीं जो हमें हेमचन्द्र की कृतियों में मिलती है।

आचार्य हेमचन्द्र के 'शब्दानुशासन' के अष्टम अध्याय के चतुर्थ पाद में अपभ्रंश भाषा का निरूपण अन्तिम ११८ सूत्रों में बड़े विस्तार से किया है और इससे भी बड़ी विशेषता यह है कि इन नियमों के उदाहरणों में उन्होंने अपभ्रंश के पूरे पद्य उद्धृत किये हैं। उनके अपभ्रंश के उद्धरण रसभावापन्न हैं। 'छन्दोऽनुशासन' में भी उन्होंने अपभ्रंश छन्दों का समावेश कर देने का प्रयत्न किया है।

पण्डित केशवप्रसाद मिश्र ने हेमचन्द्र द्वारा उद्धृत अनेक दोहों को पूर्वी हिन्दी में परिणत करके दिखाया है। जैसे:—

सन्ता भोग जु परिहरइ तसु कत हो बलिकीसु।
तसु दइवेण वि मुण्डिअउं जसु खल्लिहडउं सीसु॥ हेम ८-४-३८९

आछत भोग जे छोडय तेह कन्ताक बलि जावँ।
तेकर देवय से मंडल जकर खललउ सीस॥

१—बालरामायण- राजशेखर–१–११

वैसे ही आगे का पद्य देखिये:—वायसु उड्डावन्ति अए पिउ दिटठउ सहसत्ति ।
अद्धावलया महिहिगय अद्धाफुट्ट त उत्ति ।।
—हेम ८-४-३५२

इस पद्य का उत्तरकाल में राजपूताने में निम्नलिखित रुप हो गया:—
काग उडावन जांवती पिय दीठो सहसत्ति ।
आधी चूडी कागगल आधी टूट तडित्ति ।।

आचार्य हेमचन्द्र के मुक्तक पद्यों में हमें स्वच्छन्द वातावरण मिलता है । जैसे:—
जिवँ जिवँ बंकिम लोअणहं णिरु सामलि सिकखे इ ।
तिवँ तिवँ वम्महु निअय सरुरवर पत्थारि ति करवेई ।। ८-४-३४४

अर्थात् ज्यों-ज्यों वह श्यामा लोचनों की वक्रता—कटाक्षपात सीखती है त्यों त्यों कामदेव अपने बाणों को कठोर पत्थर पर तेज करता है ।
पिय संगमि कउ निदूडी पिअही परोकख हो केम्ब ।
मइ विन्नि वि विन्नासिआ निदू न एम्ब न तेम्ब ।। ८-४-४१८

नायिका कहती है — न तो प्रिय संगम में निद्रा है और न प्रिय के परोक्ष होने पर । मेरी दोनों प्रकार की निद्रा नष्ट होगयी ।

प० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने हेमचन्द्र के ग्रन्थों के महत्व की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है । (१) "हेमचन्द्र ने पीछे न देखा तो आगे देखा, उधर का छूटा तो इधर बढ़ा लिया, अपने समय तक की भाषा का विवेचन कर डाला । यही हेमचन्द्र का पहला महत्व है कि और वैयाकरणों की तरह केवल पाणिनि के व्याकरण के लोकोपयोगी अंश को अपने ढचर में बदलकर ही वे सन्तुष्ट नहीं रहे, पाणिनि के समान पीछे नहीं तो आगे देखकर अपने समय तक की भाषा तक का व्याकरण बना गया" । (२) 'अपभ्रंश के अंश में उन्होंने पूरी गाथाएँ, पूरे छन्द और पूरे अवतरण दिये हैं, यह हेमचन्द्र का दूसरा महत्व है । अपभ्रंश के नियम यों समझ में न आते । मध्यम पुरुष के लिये पइं, 'शपथ' में थ की जगह घ होने से सवघ और मक्कडघुग्घि का अनुकरण प्रयोग बिना पूरा उदाहरण दिये समझ में नहीं आता । (३) तीसरा महत्व हेमचन्द्र का यह है कि वह अपने व्याकरण का पाणिनि और भट्टोजीदीक्षित होने के साथ-साथ उसका भट्टि भी है । उन्होंने अपने संस्कृत प्राकृत द्वयाश्रयकाव्य में अपने व्याकरण के उदाहरण भी दिये हैं तथा सिद्धराज कुमारपाल का इतिहास भी लिखा है । भट्टि और भट्ट भौमक की तरह वह अपने सूत्रों के क्रम से चलता है । याकोवी का विचार है कि हेम ने वररुचि के 'प्राकृत प्रकाश' के आधार

पर अपना प्राकृत व्याकरण बनाया किन्तु डा० पिशेल ने इस विचार का खण्डन किया है। देश-दिशा के भेद से अनेक प्रकार की अपभ्रंश भाषाओं के होने के कारण हेमचन्द्र के अपभ्रंश व्याकरण में अनेक प्रकार की भशाओं का आना अस्वाभाविक नहीं। ध्रुवं त्रुं प्रस्सदि व्रासु, आदि दूसरी बोलियों के शब्द हैं। हेमचन्द्र ने इनके विषय में अपने अन्य सूत्रों में भी बहुत कुछ लिखा है। अपभ्रंशत्तण का सम्बन्ध वैदिकत्वन् से है, एहि वैदिक एभिः से निकला है[1]।"

यद्यपि हेमचन्द्र ने भाषा की दृष्टि से अपभ्रंश दोहों को उद्धृत किया किन्तु निसर्गसिद्ध साहित्यिकता उनके महत्व को बढ़ा देती है। अपभ्रंश भाषा का प्रेम सम्पूर्ण दोहे को उद्धृत करने के लिये आचार्य को बाध्य करता है तथा उसके साहित्यिक स्वरूप को व्यक्त करता है। इससे आचार्य की संग्राहिका प्रतिभा और उनके लोक-भाषानुराग का पता चलता है। अपभ्रंश व्याकरण में उद्धृत दोहों को शृंगारिक, वीरभावापन्न, नैतिक, अन्योक्तिपरक, वस्तुवर्णनात्मक और धार्मिक भेदों में विभक्त कर सकते हैं। रूपवर्णन देखिये:-

जिवं तिवं तिक्खां लेवि कर जइ ससि छोल्लिज्जन्तु।
तो जइ गोरि हे मुह कमलि सरिसिग क विलहन्तु ॥ ३९५-१

जैसे-जैसे तीक्ष्ण किरणों को लेकर यदि चन्द्र को छीला जाता तब वह गोरी के मुख-कमल की समता कुछ पाता तो पाता। यहां तक्षि को छोल्ल आदेश हो गया। वीररस का उदाहरण देखिये:-

एइ ति घोडा एह थलि एहति निसिआ खग्ग।
एत्थु मुणीसिग जाणिअइ जो नवि वालइ वग्ग ॥ ३३०-४

ये वे घोड़े हैं, यह वह युद्धस्थली है, ये वे तीक्ष्ण तलवारें हैं, यहीं पर उसकी मुणीसिम पुरुषार्थ की परीक्षा होगी, जो घोड़े की बाग नहीं मोड़ेगा। यहां पर एते ते के लिये इइ ति, खड्गाः के लिये खग्ग ह्रस्वान्त रूप प्रयुक्त है। शृंगार और वीर का मिश्रित रूप देखिये:-

संगर- स एं हिं जु बण्णिअइ देकखु अम्हारा कन्तु।
अइमत हं चत्तं कुसहं गय-कुंभइं दारन्तु ॥ ३४५-१

सैकड़ों युद्धों में जिसकी प्रशंसा की जाती है, ऐसे अत्यन्त मत्त तथा इंकुश की कुछ भी पर्वाह नहीं करने वाले गजों के कुम्भस्थलों को विदारने वाले मेरे कान्त को तो देखो। वियोग शृङ्गार का उदाहरण देखिये :-

जे महु दिण्णा दिअहडा दइएँ पवसन्तेण।
ताण गणन्तिए अंगुलिउ जज्जरिआउ नेहण ॥८-४-३३३

---

१ —पुरानी हिन्दी—पं० चंद्रधर शर्मा गुलेरी—पृष्ठ १२९

प्रिय ने प्रवासार्थ जाते हुए जितने दिन बताये थे उन्हें गिनते-गिनते नख मेरी अंगुलियाँ नख से जीर्ण हो गयीं।

जइ ससणे हि तो मुअइ अह जीवइ मिन्नेह।
रिहिं वि पयोरेंहि गइय घणकिं गज्जहि खलमेह ॥८–४–३६७

यदि वह मुझे प्यार करती है तो मर गई होगी, यदि जीवित है तो निःस्नेह होगी ! अरे खल मेघ ! दोनों ही तरह से वह सुन्दरी मैंने खो दी है – व्यर्थ क्यों गरजते हो ?

महु कन्त हो वे दोसडा हेल्लि म झंख हि आल।
देन्त हो हउं पर उव्वरिअ जुज्झन्त हो करवालु ॥८–४–३७९

हे सखि, मेरे प्रियतम में केवल दो दोष हैं, झूठ मत कहो। दान देते हुए केवल मैं बच रहती हूं और युद्ध करते हुए केवल तलवार !

भल्ला हुआ ज मारिआ बहिणि महारा कन्तु।
लज्जेज्जं तु वयं सिअहु जइभग्गा घर एन्तु ॥८–४–३५१

बहिन, अच्छा हुआ मेरा पति रणभूमि में मारा गया। यदि पराजित हो वह घर लौटता तो मैं अपनी सखियों के सामने लज्जित होती।

अतः हम कह सकते हैं कि हेमचन्द्र का अपभ्रंश प्रतिमित (Standard) अपभ्रंश है। शृङ्गारिक दोहों की परम्परा 'गाहा सत्तसई' से जोड़ी जाती है। जर्मन विद्वान् रिचर्ड पिशेल कहते हैं कि "हेमचन्द्र के दोहों को देखकर कुछ ऐसा *लगता है कि वे किसी ऐसे सङ्ग्रह के लिये गये हैं* जो सतसई के ढङ्ग का है। शृङ्गारिक दोहों में अधिकतर दोहे कवि-निबद्ध-वक्तृ-प्रौढोक्ति के रुप में विद्यमान हैं कई दोहे रतिवृत्तिप्रधान होते हुए भी वीररसपूर्ण दिखाई पड़ते हैं। नायिका सखी या दूती से रतिवृत्ति जागरित करने वाले भाव व्यक्त करती है अथवा पथिक से वाक्चातुर्य द्वारा गोपनवृत्ति की अभिव्यक्ति करती है। शृङ्गार रस के अतिरिक्त अन्य रसों के भी अनेक उद्धरण मिलते हैं। श्री मधुसूदन मोदी ने "हेमसमीक्षा" नामक गुजराती पुस्तक में हेमचन्द्र के दोहों की विविधता की चर्चा की और भावात्मक दृष्टि से भी उनके मत में अठारह वीररसप्रधान साठ उपदेशात्मक, दस जैनधर्म सम्बन्धी, पांच पौराणिक पद्य हैं। शेष दोहों में से आधे तो शृङ्गार रस के लगते हैं और दो दोहे मुंज के लगते हैं। श्री मोदी ने अपभ्रंश सूत्रों की वृत्ति में हेमचन्द्राचार्य के लगभग १७७ दोहों की चर्चा की है। इससे उनकी सर्वसङ्ग्राहक दृष्टि का पता चलता है। आचार्य हेमचन्द्र ने भाषा, छन्द, साहित्यिकता तीनों दृष्टियों से अपभ्रंश को सुव्यवस्थित तथा समृद्ध किया है।

इसी प्रकार हम देखते हैं कि अपभ्रंश व्याकरण में आये हुवे उद्धरणों में शृङ्गार, वीर आदि तथा अन्य रसों का संयोग है। कहीं नीति-सम्बन्धी उक्तियां हैं, कहीं धार्मिक सूक्तियाँ या अन्योक्तियाँ है। इन उद्धरणों में अनेक प्रकार के छन्द, रासक, रड्डा, दोहा, गाहा आदि दोहा प्रमुख हैं। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, विभावना, हेतु, अर्थान्तरन्यास आदि अनेक अलङ्कार भी हैं जो काव्यात्मकता को और भी बढ़ा देते हैं। जैनाचार्य हेमचन्द्र ने बहुत ही सूझ-बूझ से इनका सङ्ग्रह किया है। भाषा ही नहीं साहित्यिक प्रवृत्तियों को समझने के लिये भी इनका अध्ययन आवश्यक है।

हेमचन्द्र के अपभ्रंश व्याकरण में उद्धृत अनेक पद्य उनके पूर्ववर्ती जोइन्द्र, रामसिंह, भोजराज, चण्ड, भट्ट नारायण, वाक्पतिराज, तथा अज्ञात लेखक की रचनाओं में क्रमशः परमाप्पपयासु, पाहुडदोहा, सरस्वतीकण्ठाभरण, प्राकृत लक्षण, वेणीसंहार, गउडवहो और शुक सप्तति से लिये गये हैं। न्यूनाधिक परिवर्तन के साथ सम्भव है, हेमचन्द्र द्वारा उद्धृत पद्यों में हेमचन्द्र के अपने भी दोहे या पद्य हों। कुछ अपभ्रंश पद्य छन्दोऽनुशासन में भी मिलते हैं। यहाँ इन सुन्दर साहित्यिक दोहों में सरसता के साथ-साथ लौकिकजीवन और ग्राम्यजीवन के भी दर्शन हमें होते हैं।

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से हेमचन्द्र के साहित्य का मूल्याङ्कन :—

भारत में आर्य भाषाओं का विकास मुख्यतया तीन स्तरों में विभाजित पाया जाता है। पहले स्तर की भाषा का स्वरूप वेदों, ब्राह्मणों, उपनिषदों, द्वितीय का सूत्र-ग्रन्थों और तृतीय का रामायण,महाभारतादि पुराणो तथा काव्यों में पाया जाता है। ईसापूर्व छठी शती में महावीर और बुद्ध द्वारा उन भाषाओं को अपनाया गया जो उस समय पूर्व भारत की लोक भाषाएँ थीं और जिनका स्वरूप हमें पालि त्रिपिटक एवं अर्धमागधी जैनागम में दिखायी देता है। तत्पश्चात् जो शौरसेनी एवं महाराष्ट्री रचनाएँ मिलती हैं, उनकी भाषा को मध्ययुग के द्वितीय स्तर की माना गया है, जिसका विकास ईसा की दूसरी शती से पाँचवी शती तक हुआ। मध्ययुग के तीसरे स्तर को अपभ्रंश का नाम दिया गया है।

हेमचन्द्र के अपभ्रंश में अनेक प्रकार की भाषाओं का समावेश है। ध्रुंत्रं (८-४-३६०), तु ध्र (३७२), प्रस्सद्रि (३९३), व्रोप्पिणु, व्रोऽप्पि (३९१), गृहन्ति गृहेप्पिणु (३४१, ३९४, ४३८) और व्रासु (३९९), जो कभी 'र' और कभी 'ऋ' से लिखे जाते हैं — ये दूसरी बोलियों के शब्द हैं, हेमचन्द्र ने इनके

विषय में बहुत कुछ लिखा है। अपभ्रंश में अनेक उदाहरण ऐसे मिलते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि यह भाषा सिन्ध से बङ्गाल तक बोली जाती थी। साहित्यिक अपभ्रंश निश्चय ही प्राकृतमूलक अपभ्रंश है, जो उकार बहुल है। जैसे :–

संस्कृत – रामः वनं गतः।
प्राकृत – रामो वणं गओ।
अपभ्रंश – रामु वणु गयउ।

हेमचन्द्र के अपभ्रंश व्याकरण एवं साहित्य का अवलोकन करने से यह मालूम होता है कि अपभ्रंश में तीन-चार कारक ही रह गये थे। अयोगात्मकता की ओर उसकी प्रवृत्ति स्पष्ट दिखायी देती है। इसमें तज, केर आदि परसर्गों का उपयोग होने लगा था। क्रियाओं के स्थान पर क्रियाओं से सिद्ध विशेषणों का उपयोग होने लगा था। व्याकरण की इन विशेषताओं के अतिरिक्त काव्यरचना की बिलकुल नयी प्रणालियाँ और नये छन्दों का प्रयोग अपभ्रंश में पाया जाता है। दोहे और पद्धडिया छन्द अपभ्रंश काव्य की अपनी वस्तु हैं, इन्हीं से हिन्दी दोहों व चौपाईयों का आविष्कार हुआ है।

आचार्य हेमचन्द्र के साहित्य में 'अपभ्रंश का व्याकरण' एक अपूर्व देन है। उन्होंने उदाहरणों के लिये अपभ्रंश के प्राचीन दोहों को रखा है इससे प्राचीन साहित्य की प्रकृति और विशेषताओं का ज्ञान होता है, साथ ही भाषा में उत्पन्न परिवर्तन का पता चलता है। आचार्य हेमचन्द्र ने ही सबसे पहले अपभ्रंश का इतना विस्तृत अनुशासन उपस्थित किया है। लक्ष्यों में पूरे दोहे दिये जाने से लुप्तप्राय अपभ्रंश साहित्य सुरक्षित रह सका है। भाषा की नवीन प्रवृत्तियों का नियमन, प्ररूपण, विवेचन इनके व्याकरण में विद्यमान है। तत्कालीन विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित उपभाषा, विभाषादि का सम्यक् विवेचन कर उन्होंने अपभ्रंश को अमर बना दिया है। उसमें शब्द-विज्ञान, प्रकृतिप्रत्यय-विज्ञान, वाक्य-विज्ञान सभी भाषा वैज्ञानिक तत्व उपलब्ध हैं। प्राचीन-अर्वाचीन ध्वनियों की सम्यक् विवेचना भी है। आधुनिक भाषाओं की प्रमुख प्रवृत्तियों का अस्तित्व उसमें विद्यमान है। हेमचन्द्र की भाषा पर प्राकृत, अपभ्रंश एवं अन्य देशी भाषाओं के शब्दों का पूर्णतः प्रभाव परिलक्षित होता है। अनेक शब्द तो आधुनिक भाषाओं में दिखलायी पड़ते हैं – जैसे लडडुक – लडडू, लाडू, अथवा गेन्दुक–गेन्द, हेरिक– हेर (गूढ़ पुरुष), कुछ शब्द समीकरण, विषमीकरण इत्यादि सिद्धान्तों से प्रभावित हैं।

इस प्रकार आधुनिक भाषा-विज्ञान के लिये भी उनको 'शब्दानुशासन' पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करता है। प्रत्येक स्तर के पाठक के लिये 'शब्दानुशासन' में अवकाश है। उनका व्याकरण-ग्रन्थ परिपूर्ण एवं समझने में सरल है। कातन्त्र-व्याकरण केवल लौकिक संस्कृत का व्याकरण है और वह भी अतिसंक्षिप्त। चान्द्र-व्याकरण में लौकिक भाग के साथ वैदिक स्वरप्रक्रिया भी है। पाल्यकीर्ति का व्याकरण केवल लौकिक संस्कृत का है। इस दृष्टि से आचार्य हेमचन्द्र का व्याकरण संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश सभी का सर्वाङ्गपरिपूर्ण है। उसमें स्वोपज्ञ-वृत्ति-कोष एवं शास्त्रकाव्य संयुक्त है। अतः आचार्य हेमचन्द्र का व्याकरणशास्त्र में अपूर्व योगदान है।

कथा-साहित्य की प्रगति में हेमचन्द्र का योगदान— संस्कृत कथा-साहित्य में आचार्य हेमचन्द्र का योगदान सशक्त है। जनसामान्य में प्रचलित कथाओं का साहित्यिक और धार्मिक स्तर पर सर्वप्रथम सोद्देश्य उपयोग जैन-बौद्धों ने ही किया। इन्होंने लोकभाषा के साथ-साथ लोककथाओं का उपयोग अपनी बात की पुष्टि के लिये किया। उन्होंने कुछ नयी कथायें गढ़ीं, कुछ पुरानी कथाओं में परिवर्तन किये। जो काम ब्राह्मण-ग्रन्थों ने कथाओं के माध्यम से किया था, वही काम जैन और बौद्धों ने लोक-कथाओं से लिया। संस्कृत भाषा में लोक-कथाओं का पहिला सोद्देश्य सङ्ग्रह हमें 'पञ्चतन्त्र' के नाम से उपलब्ध होता है। पञ्चतन्त्र की कहानियाँ धार्मिक, आध्यात्मिक और सामाजिक रूढ़िगत भार से सर्वथा मुक्त, विशुद्ध व्यावहारिक जीवन की कहानियाँ हैं, जिनमें मानव-प्रकृति के उदात्त और कुत्सित दोनों स्वरूपों के दर्शन होते हैं। विश्व की उपलब्ध कहानियों में 'पञ्चतन्त्र' प्राचीनतम है, यह निर्विवाद है। 'पंचतन्त्र' का अनुवाद संसार की सभी प्रमुख भाषाओं में हो चुका है। वास्तव में 'पञ्चतन्त्र' वर्तमान विश्व के कथा-साहित्य की पहली कृति है। 'हितोपदेश', जिसकी प्रथम प्रति १०७३ ई० की मिली है, पञ्चतन्त्र के आधार पर तैयार किया गया ग्रन्थ है। "वेतालपञ्चविंशति" कहानियों का एक सुन्दर सङ्ग्रह है। इसी प्रकार की लोककथाओं का एक सङ्ग्रह "सिंहासन-द्वात्रिंशिका" है जो विक्रम चरित के नाम से प्रसिद्ध है। 'शुक सप्तति' में ७० कथाएँ सङ्ग्रहीत हैं जो शुक द्वारा कही गयी हैं। आचार्य हेमचन्द्र किसी रूप में 'शुक सप्तति' से परिचित थे, ऐसा डॉ० ए० बी० कीथ का निश्चित मत है। वे लिखते हैं "हेमचन्द्र द्वारा दिया हुआ एक गद्यात्मक उद्धरण 'बृहत्कथा' से लिया हुआ माना जा सकता है अथवा हो सकता है कि वह किसी पीछे के संस्करण से या दूसरे स्रोत से लिया गया है। यह सम्भव है कि हेमचन्द्र द्वारा दिये गये पैशाची शब्दों के उल्लेख और उद्धरण

इस काश्मीरी ग्रन्थ से लिए गये हों, किन्तु यह निश्चित है कि जैन ग्रन्थकार हेमचन्द्र किसी न किसी रूप में 'शुक सप्तति' से परिचित थे"।

विश्वसाहित्य में भारत के आख्यान-साहित्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। मौलिकता, रचना-नैपुण्य, तथा विश्व-व्यापक प्रभाव की दृष्टि से वह अनुपम और अद्वितीय सिद्ध हो चुका है। भारतीय लोक-साहित्य के परिज्ञान के लिये संस्कृत आख्यानों का अनुशीलन परमावश्यक है। उपदेशात्मक प्रवृत्ति का मनोरंजनकारी परिपाक नीति-कथाओं में हुआ है। इनमें रोचक कहानियों द्वारा चरित्र-निर्माण का उपदेश होता है। ये नीति-कथाएँ संस्कृत भाषा की सरल एवं रोचक शैली का भी आदर्श उपस्थित करतीं हैं। इन कथाओं के प्रतिपाद्य विषय सदाचार, धर्माचार तथा व्यावहारिक ज्ञान होते हैं।

प्राकृत-जैन-कथा-साहित्य जैन विद्वानों की एक विशिष्ट देन है। उन्होंने धार्मिक और लौकिक आख्यानों की रचना कर साहित्य के भण्डार को समृद्ध किया। कथा, वार्ता, आख्यान, उपमा, दृष्टान्त, संवाद, सुभाषित, प्रश्नोत्तर, समस्यापूर्ति और प्रहेलिका आदि द्वारा इन रचनाओं को सरस बनाया गया। संस्कृत साहित्य में प्राय: राजा, योद्धा, धनीमानी व्यक्तियों के ही जीवन का चित्रण किया जाता था, किन्तु इस साहित्य में जनसामान्य के चित्रण को विशेष स्थान प्राप्त हुआ। जैन कथाकारों की रचनाओं में यद्यपि सामान्यतया धर्मोपदेश की ही प्रमुखता है फिर भी पादलिप्त, हरिभद्र, उद्योतनसूरि, नेमिचन्द्र गुणचन्द्र, मलधारि हेमचन्द्र, लक्ष्मणगणी, देवेन्द्रसूरि, आदि कथा-लेखकों ने इस कमी को बहुत कुछ पूरा किया। रीति-प्रधान शृंगारिक साहित्य की रचना की कमी रह गयी थी। उधर ११-१२ शताब्दी से लेकर १४-१५ शताब्दी तक गुजरात, राजस्थान, मालवा में जैन धर्म का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था। अनेक अभिनव कथा-कहानियों की भी रचना हुई। अनेक कथा-कोशों का संग्रह किया गया। कथा-साहित्य में तत्कालीन सामाजिक जीवन का विविध और विस्तृत चित्रण किया गया। विशिष्ट यति, मुनि, सती, साध्वी, सेठ साहूकार, मन्त्री सार्थवाह, आदि के शिक्षाप्रद चरित्र लिखे गये। इन चरितों में बीच-बीच में धार्मिक और लौकिक सरस कथाओं का समावेश किया गया।

उपदेशात्मक कथाएँ, जिसका साक्षात् उद्देश्य मनोरंजन के साथ उपदेश है, जैन साहित्य में प्रचुरता के साथ पायी जाती हैं। जैन विद्वानों की रुचि कहानियों में बहुत थी, परन्तु साथ ही उनका नैतिकता की ओर विशेष झुकाव था। इसीलिये जैन लेखक प्रायेण विक्रमादित्य के आख्यानों जैसी अच्छी कहा-

नियों को एवं महान् साहसिक कार्यों में भाग लेने वाले उनके पात्रों को जैन धर्म के व्याख्याताओं के रूप में चित्रित करने के प्रयत्न में बिगाड़ देते थे। आचार्य हेमचन्द्र भी सच्चे जैन थे। वे अपने धर्म के उत्साही प्रचारक थे। धर्म में आस्था के कारण उन्होंने वस्तुओं और घटनाओं को विकृत रूप में देखा है। इस प्रकार की रचनाओं में हेमचन्द्र के 'परिशिष्ठपर्वन्' को प्रथम स्थान देना चाहिये– जो उन्हींके पौराणिक काव्य 'त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित' का एक परिशिष्ट है।

जैन परम्परा में पुराकथाएँ शैली और कहावतों में धार्मिक साहित्य की कृति के निकट पहुँचने की प्रवृति प्रदर्शित करती हैं। आचार्य हेमचन्द्र भी इसके अपवाद नहीं थे। उनका 'परिशिष्ठपर्वन्' कथा-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इन कथाओं का उद्देश्य मनोरंजन की अपेक्षा उपदेश देना है। इस ग्रन्थ की अधिकांश कहानियाँ नैतिकता का प्रचार करने वाली हैं। जिन कथाओं को आचार्य जी कहते हैं, वे पौराणिक उपाख्यानों के ढंग की न होकर विशेष रूप से साधारण लोककथाओंसी हैं। अतः एक प्रकार से पञ्चतन्त्रादि कथाओं के ही लक्ष्य को उन्होंने अपनी कहानियों में आगे बढ़ाया है तथा उनका अपने सम्प्रदाय के प्रचार में समुचित उपयोग कर लिया है। यह प्रवृति प्रभाचन्द्र के प्रभावक् चरित में भी दिखायी देती है जिसमें हेमचन्द्र के 'परिशिष्ठपर्वन्' को ही आगे बढ़ाया है।

प्राचीन नीति-कथाओं एवं लोक-कथाओं में तथा 'परिशिष्ठपर्वन्' की कथाओं में मौलिक अन्तर है। आचार्य हेमचन्द्र का प्रधान लक्ष्य जैन धर्म प्रचार है। इसलिये 'पञ्चतन्त्र' या 'हितोपदेश' के अनुसार केवल पशुपक्षियों की कहानियाँ 'परिशिष्ठपर्वन्' में नहीं जिनका एकमात्र उद्देश्य सदाचार, राजनीति, व्यवहार एवं कुशलता का उपदेश था। 'बृहत कथा' अथवा 'कथासरित्सागर' के समान इन कहानियों का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं है। उनका प्रधान लक्ष्य धर्मप्रचार होने के कारण उनमें ऐतिहासिक तथ्यों को भी तरोड़-मरोड़ कर सम्प्रदायानुकुल बनाया गया है। 'हितोपदेश' और 'पञ्चतन्त्र' सम्प्रदाय-निरपेक्ष हैं, किन्तु हेमचन्द्र की कथाओं का उद्देश्य जैन-धर्म-प्रचार है। यथा–'परिशिष्ठपर्वन्' का नवम सर्ग, एकबार स्थूलभद्र अपने पुराने मित्र धनदेव के यहां गये, धनदेव की धनहानि बहुत हो गयी थी इसलिये वह कहीं बाहर गया हुआ था। धनदेव की पत्नी से धन घर में ही छुपे रहने की बात स्थूलभद्र ने बतलायी। धनदेव के वापिस आने पर उसने यह बात सत्य पायी। फिर धनदेव पाटलीपुत्र गया और जैन-धर्म में दीक्षित हो गया। स्थूलभद्र के दो शिष्य थे–महागिरि और

सुहस्तिन् । स्थूलभद्र ने उन्हें पढ़ाया । फिर वे जैन-धर्म के प्रचार के लिये विचरण करने लगे ।

आचार्य हेमचन्द्र का 'परिशिष्ठपर्वन्' न केवल जैन कथा-सङ्ग्रहों में श्रेष्ठ है अपितु सम्पूर्ण संस्कृत कथासाहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है । उसमें 'पञ्चतन्त्र' के अनुसार नीतिधर्म का उपदेश है और 'बृहत्कथा', 'कथासरित् सागर' के अनुसार मनोरंजन भी है । अत: 'पञ्चतन्त्र' और 'बृहत्कथा' का समुचित सामञ्जस्य आचार्य हेमचन्द्र की कथाओं में पाया जाता है । इसके अतिरिक्त धर्म-प्रचार के साधन के रूप में भी ये कथाएं साधारण जनता में लोकप्रिय हुई । 'कथासरित्-सागर' और 'परिशिष्ठपर्वन' की कतिपय कहानियों का रूपान्तर चीन की कहानियों में भी पाया जाता है ।

समन्वय भावना का विकास–नानारूपात्मक सृष्टि में सामन्जस्यका करने का प्रयास भारतीय संस्कृति में अनादिकाल से होता आया है । अनेकता में एकता तथा एकता में अनेकता का साक्षात्कार प्रागैतिहासिक काल में ही ऋषि-मुनियों नें किया था । अत: भारतीय दर्शन की दृष्टि प्रारम्भ से ही व्यापक रही है । यद्यपि भारतीय दर्शन की अनेक शाखाएँ हैं तथा उनमें मतभेद भी हैं फिर भी ये शाखाएँ एक-दूसरे की उपेक्षा नहीं करती हैं । सभी शाखाएँ एक-दूसरे के विचारों को समझने का प्रयत्न करतीं हैं । वे विचारों की युक्ति पूर्वक समीक्षा करती हैं और तभी किसी सिद्धान्त पर पहुचतीं हैं । इसी प्रक्रिया से समन्वय भावना' का उद्गम हुआ है । भारतीय दर्शन की इस व्यापक एवं उदार दृष्टि से ही भारतीय दर्शन में समन्वय भावना का विकास हुआ है तथा भारतीयों में परमत-सहिष्णुता, परधर्म-सहिष्णुता आयी है ।

'एकं सत् विप्राः बहुधा वदन्ति' इत्यादि उपनिषद्–वाक्य अथवा 'स्तैनाय नम: स्तेनानांपतये नम:' इत्यादि रुद्रसूक्त के मन्त्र समन्वय भावना के ही प्रतीक हैं । गौतम बुद्ध के 'मज्झिम मग्ग' (मध्यम मार्ग) की भी यही भावना है । जीवन का व्यवहार समुचित ढंग से चलाने के लिये भगवान कृष्ण ने गीता में मध्यम मार्ग का ही उपदेश दिया है । ऐकान्तिक उपवास से शरीर सुखाने का उपदेश वे नहीं करते । खाना ही ध्येय है, ऐसा वे नहीं कहते । उसी प्रकार मन तथा शरीर के विकारों को कुचलकर समाप्त करने की अपेक्षा धर्माविरुद्ध काम के पक्ष में वे उपदेश देते हैं । (गीता ६–१७, ७–११)

वेदपुराणों की बात तो समन्वयात्मक है ही; समय-समय पर साधु सन्तों ने, चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय के क्यों न हों, सहिष्णुता का उपदेश देकर सम-

साहित्य में देखने को मिलता है। जैन धर्म की अनेकान्त दृष्टि से वे इतने समरस न्वय भावना का विकास ही किया है। जैन दार्शनिकों ने वैदिक, आस्तिक,बौद्धादि दार्शनिकों के विचारों का गम्भीर अध्ययन करने के पश्चात् ही अपने तत्व-दर्शन की रचना की है। इसीलिये परस्पर-विरोधी विचार-पद्धतियों का समन्वय करने वाले 'अनेकान्तवाद' का निर्माण वे कर सके। जैन दार्शनिकों का कथन है कि प्रत्येक वस्तु अनन्तधर्मात्मक होती है। किसी वस्तु के सम्बन्ध में हम जो कुछ विचार करते हैं, उसकी सत्यता हमारी विशेष दृष्टि पर निर्भर करती है। हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि किसी विषय में कोई एक मत एकान्त सत्य नहीं होता, दूसरों के मत भी सत्य हो सकते हैं। इसीलिये जैन-दर्शन में अन्यान्य मतों के प्रति समादर का भाव विद्यमान है, आचार्य हेमचन्द्र ने अपने साहित्य में इसी समन्वय-भावना का विकास किया है।

'योगशास्त्र' में ध्यानयोग, आसन, आदि का वर्णन उन्होंने पातञ्जल-योग के सदृश ही किया है। यह भी उनकी असंकीर्णता का परिचायक है। उनके मोक्ष का आनन्द भी वैदिक मोक्ष के समान ही है। आचार्य हेमचन्द्र ने 'संस्कृत द्वयाश्रय काव्य' में अर्हन तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश का एक रूपत्व दिखाया है। उसमें शिवस्तुति भी प्रचुर मात्रा में की गयी है[1] तथा बीसवें सर्ग में तो शिवभक्ति का सुन्दर वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण 'द्वयाश्रय काव्य'में शिवमहिमा का वातावरण एवं वैदिक संस्कृति का प्रभाव है। इस दृष्टि-से उनका साहित्य ब्राह्मण संस्कृति से प्रभावित है, ऐसा कहा जा सकता है। योगशास्त्र में रूपस्थ ध्यान का वर्णन करते समय अष्टम प्रकाश में ब्राह्मण-मन्त्रों के ॐ ह्रीं इत्यादि बीजाक्षर वैसे के वैसे ही आचार्य हेमचन्द्र ने स्वीकार किये हैं। पदस्थ ध्यान में भी वैदिकों के मन्त्र-शास्त्र की पद्धति को स्वीकार किया है। अन्तर इतना ही है कि वे प्रणव के साथ "अर्हन" पद जोड़ देते हैं। उनके साहित्य में पुराणों के दृष्टान्त, स्वर्ग के इन्द्रादि देवताओं का वर्णन भी पाया जाता है। पूजा-पद्धति भी पौराणिकों के अनुसार पायी जाती है। इसलिये वे स्वयं जैनाचार्य होते हुवे भी सौमेश्वर की यात्रा में कुमारपाल के साथ गये थे तथा पञ्चोपचार विधि से उन्होंने भगवान शिव का पूजन किया। भगवान् की मनौती किये जाने का भी वर्णन उनके साहित्य में आता है। साधना, आत्मसाक्षात्कार, समाधि का आनन्द इत्यादि सब बातें वैदिक दर्शनानुसार ही उनके साहित्य में पायी जातीं हैं। पुष्पोञ्चय, सम्मार्जन, दक्षिणा इत्यादि बातों का वैदिक संस्कृति के अनुरूप मधुर चित्र उनके

---

१ —द्वयाश्रय-१।७६ तथा ५।१३३

हो गये थे कि वे अपने उपदेशों में सम्प्रदायातीत हो जाते थे।

आचार्य हेमचन्द्र के धार्मिक ग्रन्थों में ज्ञान और भक्ति में पृथकत्व मानते हुए भी अपृथकत्व का निर्वाह हुआ है। आगे चलकर हिन्दी के जैन भक्त कवियों को यह बात बिरासत में ही मिली। भक्ति और ज्ञान दोनों से ही स्वात्मोपलब्धि होती है। स्वात्मोपलब्धि का नाम ही मोक्ष है। आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार भगवन्निष्ठा और आत्मनिष्ठा दोनों एक ही हैं। अतः भक्ति और ज्ञान की एक-रूपता जिस प्रकार जैन शास्त्रों में विशेषतः आचार्य हेमचन्द्र के ग्रन्थों में घटित होती है वैसो अन्यत्र नहीं। जैन भक्ति की यह विशेषता उसकी अपनी है और इसका श्रेय अधिकाँश में आचार्य हेमचन्द्र के ग्रन्थों को ही है। यह अनेकान्ता-त्मक परम्परा के अनुरूप ही है।

आचार्य हेमचन्द्र के ग्रन्थों में चरित्र और भक्ति का उत्कृष्ट समन्वय पाया जाता है। दूसरे शब्दों में वहाँ चरित्र की भी भक्ति की गई है। उनका आराध्य केवल दर्शन और ज्ञान से नहीं अपितु अलौकिक चरित्र से भी अलङ्कृत था। चरित्र की शिक्षा निःसन्देह आदर्श नागरिक निर्माण के लिए उपादेय है। चारित्र-भक्ति का सम्बन्ध एक ओर बाह्य संसार से है, तो दूसरी ओर उसका सम्बन्ध आत्मा से है। इससे व्यक्तित्व का समुचित विकास होने के साथ लोक-प्रिय व्यवहार भी बनता है। आत्मा में परमात्मा का दिव्यालोक फैलता है।

आचार्य हेमचन्द्र किसी भी ऐकान्तिक पक्ष को मानने वाले नहीं थे। आत्यन्तिक अशनत्याग के भी वे विरोधी थे। "तेल से दीपक और पानी से वृक्ष की भाँति शरीरधारियों के शरीर आहार से ही टिकते हैं। आज का दिन बिना भोजन के व्यतीत किया उसी प्रकार अब भी यदि मैं आहार ग्रहण न करूँ और अभिग्रहनिष्ठ बना रहूँ, तो उन चार हजार मुनियों की जो दशा हुई थी अर्थात् भूख से पीड़ित होकर जिस प्रकार वे व्रतभग्न हुए उसी प्रकार भविष्य के मुनि भी भूख से पीड़ित होकर व्रतभग्न होंगे, यह विचार करके ऋषभदेव भिक्षा के लिये चल पड़े"[१]। आत्मा के सम्बन्ध में भी आचार्य हेमचन्द्र के विचार एकपक्षीय नहीं है। आत्मा को एकान्त और नित्य माने तो यह अर्थ होगा कि आत्मा में किसो प्रकार का अवस्थान्तर अथवा स्थित्यन्तर नहीं होता अर्थात् उसे सर्वथा कूटस्थ नित्य मानना पड़ेगा; और इसे स्वीकार करने पर सुखः-दुःखादि भिन्न अवस्थाएँ आत्मा में घटित नहीं होंगी। एकान्त अनित्य मानने से भी वे ही आपत्तियां खड़ी होती हैं। इसीलिये आचार्य हेमचन्द्र आत्मा को नित्यानित्य मानते हैं। एकान्त नित्य-

---

१–त्रिषष्ठिशलाका पर्व १–सर्ग ३–श्लोक २३९ से ४२ तक।

वाद अथवा अनित्यवाद सदोष है किन्तु नित्यानित्यवाद निर्दोष है। गुड़ कफ करने वाला है, सोंठ पित्तजनक किन्तु मिश्रण में ये दोष नहीं रहते। (वीतराग) हेमचन्द्र के मतानुसार सत्व-रज-तम इन परस्पर विरुद्ध तीन गुणों से युक्त प्रकृति को स्वीकार करके सांख्य-दर्शन ने स्याद्वाद् को ही स्वीकार किया है। एकही वस्तु में भिन्न धर्मों,लक्षणों एवं अवस्थाओं के परिणामों की सूचना करता हुआ योगदर्शन स्याद्वाद का ही चित्र उपस्थित करता है। इस प्रकार आचार्य हेमचन्द्र प्रत्येक दर्शन में समन्वय को ही देखते हैं। इस प्रकार के सोचने से अनेकान्त दर्शन से परस्पर भिन्न दृष्टिकोण अभिन्नता की ओर जाते हैं। परमत सहिष्णुता बढ़ती है। दृष्टि व्यापक होती है। भगवान में भी वे समन्वय भाव से ही देखते हैं। इस प्रकार अनेकान्त के आधार पर वे समन्वय का प्रचार करते हुए 'विश्वबन्धुत्व' एवं 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना जनमानस में प्रचारित करने का प्रयास करते हैं।

समन्वय-भावना के विकास ने कला के क्षेत्र में भी प्रभूत योगदान दिया है। जैन लोग सरस्वती के भक्त थे। उनका यह भक्तिभाव केवल स्तुति-स्तोत्रों में ही नहीं, वरन मनमोहक, मूर्तियों में भी व्यक्त हुआ है। दसवीं से तेरहवीं शताब्दी तक जितनी सरस्वती की मूर्तियां बनीं उनमें जैन-सरस्वती-प्रतिमाओं की भव्यता की तुलना किसी से नहीं की जा सकती। धार की भोजशाला में प्राप्त सरस्वती की मूर्ति, जो आजकल 'ब्रिटिश म्यूजियम, में स्थित है, जैन शैली में ही है।

आचार्य हेमचन्द्र समन्वय-भावना का केवल साहित्य में ही प्रतिपादन करके सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने अपने दैनिक आचरण में समन्वय-भावना का ही व्यवहार किया। इसीलिये जैन मन्दिरों के लिये काशी से पुजारी बुलाए गये थे। उन्होंने स्वयं सोमनाथ की पूजा की थी। सिद्धराज जयसिंह को आचार्य हेमचन्द्र ने दृष्टान्तों एवं सुरुचिपूर्ण कहानियों के द्वारा समन्वय का ही उपदेश दिया था। वे अपने आश्रयदाता, सिद्धराज जयसिंह को जैनधर्म का उपदेश देकर उन्हें जैन धर्म में दीक्षित होने के लिये प्रेरित कर सकते थे। किन्तु आचार्य हेमचन्द्र ऐसा करते तो वे साम्प्रदायिक कहलाते-केवल जैन सम्प्रदाय के महान् प्रचारक के रूप में ही प्रसिद्ध होते। किन्तु आज तो वे जैन धर्म का प्रचार एवं प्रसार करके भी समन्वय-भावना के अनुरूप प्रत्यक्ष आचरण करने के कारण धर्मनिरपेक्ष सम्प्रदायातीत युगप्रवर्तक युगपुरुष हो गये। कुमारपाल राजा दैनन्दिन आचार-विचार में एक श्रावक के अनुसार रहते हुए भी अन्त तक "परममाहेश्वर"

अर्थात् परम शिवभक्त बने रहे। आचार्य हेमचन्द्र के प्रभाव से हिन्दू मन्दिरों का भी निर्माण हुआ और फलतः हिन्दू धर्म का भी विकास हुआ।

अतः समन्वय-भावना जो कभी रवीन्द्रनाथ के शान्ति निकेतन में प्रकट होती थी अथवा महात्मा गांधी के सेवाग्राम में दिखायी देती थी, उसका प्रारम्भ आचार्य हेमचन्द्र ने ही अपने आचरण से किया था। आचार्य हेमचन्द्र की इस समन्वय-भावना के विकास के कारण गुजरात में धार्मिक कलह कभी नही हुए। धर्म के नाम पर कभी भी अशान्ति नहीं हुई। समन्वय-भावना के कारण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अभूतपूर्व विकास हुआ। सम्भवतः विशाल यात्रा, व्यापक पर्यटन के कारण भी आचार्य हेमचन्द्र की दृष्टि अधिक व्यापक बनी थी। विद्या, कला, साहित्य, सभ्यता के क्षेत्र में उन्होंने समन्वय-भावना का ही प्रसार किया। उनकी दृष्टि में संसार के सभी दर्शन अपनी-अपनी दृष्टि से सत्य हैं। उनके जीवन में भी दुराग्रह के लिये कोई स्थान नहीं था। राजदरबार में अथवा छात्रों को उपदेश देने में उन्होंने कभी भी दुराग्रह से काम नहीं लिया। उपदेश करने के पश्चात् 'यथेच्छसि तथा कुरू' इस गीतोक्ति का उन्होंने सदैव अनुसरण किया। गुजरात, मालवा, राजस्थान आदि प्रदेशों में जैन-धर्म के प्रसार का जो महान् कार्य किया गया वह किसी धार्मिक कट्टरता के बल पर नहीं, किन्तु नाना धर्मों के प्रति सद्भाव व सामञ्जस्य-बुद्धि द्वारा ही किया गया था। यही प्रणाली जैन धर्म का प्राण रही है, और हेमचन्द्राचार्य ने अपने उपदेशों एवं कार्यों द्वारा इसी पर अधिक बल दिया था।

हेमचन्द्र का भारतीय साहित्य में महत्व एवं परवर्ती लेखकों पर प्रभाव –

आचार्य हेमचन्द्र जैसे प्रतिभाशाली और उत्तमोत्तम गुणों के धारक थे वैसा ही उनका शिष्यसमूह भी था। कहते हैं कि १०० शिष्यों का परिवार उन्हें नित्य घेरे रहता था और जो ग्रन्थ गुरू लिखाते थे उनको वह लिख लिया करता था। रामचन्द्रसूरि, बालचन्द्रसूरि, गुणचन्द्रसूरि, महेन्द्रसूरि, वर्धमानगणी, देवचन्द्र, उदयचन्द्र, एवं यशश्चन्द्र उनके प्रख्यात शिष्य थे। इन्होंने आचार्य हेमचन्द्र की कृतियों पर टीकाएँ तथा वृत्तियाँ लिखी हैं। साथ ही इनके स्वतन्त्र ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं। रामचन्द्रसूरि इन सभी शिष्यों में अग्रणी थे। उनमें प्रखर प्रतिभा एवं साधुत्व का अलौकिक तेज था। ये ही 'कुमार विहारशतक' के रचयिता हैं। इन्हें 'प्रबन्धशतकर्ता' कहा जाता है। रामचन्द्र और गुणचन्द्र सूरि ने मिलकर 'नाट्य दर्पण' की रचना की। महेन्द्रसूरि ने 'अभिधानचिन्तामणि', 'अनेकार्थमाला', 'देशी नाममाला' और 'निघण्टु' पर टीकाएँ लिखीं हैं। देवचन्द्र सूरि ने 'चन्द्रलेखा

विजय प्रकरण', और बालचन्द्र गणी ने 'स्नातस्था' नामक काव्य की रचना की। उदयचन्द्र का नाम व्याकरण की बृहद्वृत्ति की टीका की प्रशस्ति में आया है। 'कुमार विहार-प्रशस्ति' में वर्धमान गणी का नाम भी मिलता है। 'सुपार्श्वनाथ चरित' के कर्ता लक्ष्मणगणी श्री चन्द्रसूरि के गुरुभाई और हेमचन्द्रसूरि के शिष्य थे। उन्होंने वि० सं० ११९९ में राजा कुमारपाल के राज्याभिषेक के वर्ष में इस ग्रन्थ की रचना की। लेखक ने आरम्भ में हरिभद्रसूरि आदि आचार्यों का बड़े आदरपूर्वक उल्लेख किया है। 'महावीर चरित' के अध्ययन से लेखक गुणचन्द्र गणी (वि०सं० ११३९) के मन्त्र-तन्त्र विद्यासाधन तथा वाममार्गियों और कापालिकों के क्रियाकाण्ड आदि के विशाल ज्ञान का पता लगता है। गुणचन्द्रगणी के ही ग्रन्थ 'पार्श्वनाथ चरित' (वि० सं० ११६८) में भी मन्त्र-तन्त्रों में कुशल वाममार्ग में निपुण भागुरायण नाम का पात्र रहता है।

डा० विन्टरनीत्ज अपने भारतीय साहित्य के इतिहास में अमरचन्द्र के 'पद्मानन्द' महाकाव्य का उल्लेख करते हैं जिसमें आचार्य हेमचन्द्र का अनुकरण किया गया है। आचार्य हेमचन्द्र के स्तोत्रों से प्रभावित होकर १४ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में श्री जिनप्रभसूरि ने "चतुर्विंशतिजिनस्तोत्रम्" और "चतुर्विंशतिजिनस्तुतयः" की रचना की। हेमचन्द्राचार्य के "नेमिस्तवन" से प्रभावित होकर उनके शिष्य श्री रामचन्द्रसूरि ने १७ साधारण जिनस्तवन् 'श्री मुनि सुव्रत देवस्तवः' और 'श्री नेमिजिनस्तवः' की रचना की थी। पण्डित आशाधर का सहस्त्रनामस्तवन सुखसागरीय और स्वोपज्ञवृत्तियों के साथ प्रकाशित हो चुका है। 'विविधतीर्थ कल्प' के कर्ता श्री जिनप्रभसूरि के 'उज्जयन्तस्तव', 'ढीपुरीस्तव', 'हस्तिनापुरतीर्थस्तवन' और 'पञ्च कल्याणक स्तवन' विविध तीर्थ कल्प में निबद्ध हैं। हरिभद्र जिनचन्द्रसूरि के शिष्य श्रीचन्द्र के शिष्य थे। कवि ने ग्रन्थ रचना अणहिलपाटन–पतन में वि० सं० १२१६ में की थी। हरिभद्र ने सिद्धराज और कुमारपाल के आमात्य पृथ्वीपाल के आश्रय में रहकर अपने ग्रन्थ की रचना की थी।

साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में परवर्ती संस्कृत लेखकों पर आचार्य हेमचन्द्र का प्रभाव परिलक्षित होता है। प्रभाचन्द्रसूरि का "प्रभावकचरित" निःसन्देह आचार्य हेमचन्द्र के 'परिशिष्ठपर्वन्' से प्रभावित है। 'कुमारपाल प्रतिबोध' के रचियता सोमप्रभाचार्य एवं 'मोहराजपराजय' नाटक के लेखक यशपाल तो आचार्य हेमचन्द्र के लघुवयस्क समकालीन ही थे। इनके अतिरिक्त जयसिंहसूरि (वि० सं० १४२२) जिनमण्डन उपाध्याय (वि० सं० १४९२) चरित्र सुन्दर-

गणी, राजशेखरसूरि (वि० सं० १४०५) इत्यादि लेखक आचार्य हेमचन्द्र से पूर्णतया प्रभावित थे। आचार्य जी का 'काव्यानुशासन' देखकर तत्कालीन मन्त्री वागभट ने भी 'काव्यानुशासन' की रचना की। डॉ. कीथ के अनुसार इसमें हेमचन्द्र का असफल अनुकरण किया गया है। काव्य के क्षेत्र में भी आचार्य हेमचन्द्र की परम्परा आगे एक शती तक पल्लवित होती रही। कथापुराण के क्षेत्र में उनका अनुकरण पर्याप्त मात्रा में हुआ है।

आचार्य हेमचन्द्र के ग्रन्थ निश्चय ही संस्कृत साहित्य के अलंकार हैं। वे लक्षणा, साहित्य, तर्क, व्याकरण एवं दर्शन के परमाचार्य हैं। आचार्य हेमचन्द्र की साहित्य-साधना बहुत विशाल एवं व्यापक है। विद्वत्ता तो जैसे उनकी जन्मजात सम्पत्ति है। व्याकरण, छन्द, अलङ्कार, कोश एवं काव्यविषयक इनकी रचनाएँ अनुपम हैं। इनके ग्रन्थ रोचक, मर्मस्पर्शी एवं सजीव हैं। पश्चिम के विद्वान् इनके साहित्य पर इतने मुग्ध हैं कि उन्होंने इन्हें 'Ocean of Knowledge'– ज्ञान का महासागर कहा है। इनकी प्रत्येक रचना में नया दृष्टिकोण, और नयी शैली वर्तमान है। जीवन को संस्कृत, सम्बन्धित और संचालित करने वाले जितने पहलू होते हैं उन सभी को उन्होंने अपनी लेखनी का विषय बनाया है। श्री सोमप्रभसूरि ने इनकी सर्वांगीण प्रतिभा की प्रशंसा करते हुए लिखा है :–

क्लृप्तं व्याकरणं नवं विरचितं छन्दो नवो द्वयाश्रया।
लंकारो प्रथितौ नवौ प्रकटितं श्री योगशास्त्रम् नवम् ॥
तर्क: संजनि तो नवो, जिन वरादीनां चरित्रं नवम्।
बद्धं येन न केन केन विधिना मोहः कृतो दूरतः ॥

आचार्य हेमचन्द्र की विद्वत्ता जन्मजात सम्पत्ति थी, तो हृदय भक्त का मिला था, 'अर्हन्त स्तोत्र', 'महावीर स्तोत्र', 'महादेव स्तोत्र' इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। उनमें रस है, आनन्द है, और है हृदय को आराध्य में तल्लीन करने की सहज प्रवृत्ति। जैन साहित्य में, विशेषकर उसके धार्मिक क्षेत्र में, आचार्य हेमचन्द्र का नाम अग्रणी है। गुजरात में तो जैन-सम्प्रदाय के विस्तार का सबसे अधिक श्रेय इन्हें ही है।

आचार्य हेमचन्द्र केवल शास्त्रों के निर्माता ही नहीं थे किन्तु सुन्दर काव्य के रचयिता भी थे। वे पण्डित कवि थे, शास्त्र कवि थे तथा पुराणेतिहासज्ञ भी थे। उनके काव्य में पाण्डित्य, शास्त्र (व्याकरण) तथा इतिहास की त्रिवेणी का संगम हुआ है। आचार्य हेमचन्द्र ने एक ही काव्य में अश्वघोष, हर्ष तथा भट्टि का मधुर सङ्गम किया है। इस दृष्टि से संस्कृत साहित्य में आचार्य

हेमचन्द्र का महत्व सदैव अक्षुण्ण रहेगा। संस्कृत साहित्य पर भी उनका प्रभाव अमिट है। आचार्य हेमचन्द्र के कारण संस्कृत साहित्य परिपुष्ट, प्रफुल्लित एवं विकसित हुआ है और उसकी गरिमा बढ़ी है। प्राकृत तथा अपभ्रंश साहित्य की दृष्टि से भी उनकी कृतियाँ बहुमूल्य हैं।

हेमचन्द्र की साहित्य सेवा का मूल्याङ्कन:-

अपारे काव्य संसारे कविरेक: प्रजापति:।
यथा स्मै रोचते विश्वं तथा विपरिवर्तते ॥

इस अपार काव्य-संसार में कवि ही एकमात्र प्रजापति होता है। साहित्य की विपुलता एवं विस्तार की दृष्टि से आचार्य हेमचन्द्र 'साहित्य सम्राट' की उपाधि के योग्य हैं। किंबहुना यथार्थता की दृष्टि से यह उपाधि भी बहुत छोटी है। आजतक विशालकाय ग्रन्थ-रचना की दृष्टि से महाभारतकार महर्षि व्यास ही सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थकार माने जाते रहे और उनका सर्वग्राहित्व बताने के लिये 'व्यासोच्छिष्टं जगत् सर्वम्' यह कहावत प्रसिद्ध हुई, किन्तु आचार्य हेमचन्द्र के विशालकाय विपुल ग्रन्थसमूह को देखकर 'हेमोच्छिष्टं तु साहित्यम्' ऐसा भी यदि कहा गया तो वह अत्युक्ति न होगी।

श्री हेमचन्द्राचार्य का वास्तविक मूल्य उनकी विविधता और सर्वदेशीयता में है। उन्होंने व्याकरण-काव्य, न्याय, कोश, चरित, योग, साहित्य, छन्द-किसी भी विषय की उपेक्षा नहीं की और प्रत्येक विषय की अतिविशिष्ट सेवा की है। लोग इनके कोश देखें अथवा व्याकरण पढ़ें, योग देखें अथवा अलङ्कार देखें, उनकी प्रतिभा सार्वत्रिक है। उनका अभ्यास परिपूर्ण है। उनकी विषय की छानबीन सर्वावयवी है। ऐसे महान् पुरुष को समुचित न्याय देने के लिये तो अनेक मण्डल आजीवन अभ्यास करें तो ही कुछ परिणाम आ सकता है। आगम प्रभाकर मुनि श्री पुण्यविजयजी द्वारा प्रस्तुत हेमचन्द्राचार्य-कृतियों का संख्या-निर्माण निम्नानुसार है:-

सिद्धहेमलघुवृत्ति	६,००० श्लोक
सिद्धहेमबृहद्वृत्ति	१८,००० श्लोक
सिद्धहेमबृहन्न्यास	८४,००० श्लोक
सिद्धहेमप्राकृतिवृत्ति	२,२०० श्लोक
लिङ्गानुशासन	३,६८४ ,,
उणादिगण विवरण	३,२५० ,,
धातु पारायण विवरण	५,६०० ,,

अभिधान चिन्तामणि	१०,००० श्लोक
,, परिशिष्ट	२०४ ,,
अनेकार्थकोश	१,८२८ ,,
निघंटुकोश	३९६ ,,
देशी नाम माला	३,५०० ,,
काव्यानुशासन	६,८०० ,,
छन्दोनुशासन	३,००० ,,
संस्कृत द्वयाश्रय	२,८२८ ,,
प्राकृत द्वयाश्रय	१,५०० ,,
प्रमाण मीमांसा (अपूर्ण)	२,५०० ,,
वेदांकुश	१,००० ,,
त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र	३२,००० ,,
परिशिष्ट पर्व	३,५०० ,,
योगशास्त्र स्वोपज्ञवृत्ति सहित	१२,७५० ,,
वीतराग स्तोत्र	१८८ ,,
अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका (काव्य)	३२ ,,
अयोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका (काव्य)	३२ ,,
महादेवस्तोत्र	४४ ,,

क० मा० मुन्शी ने कहा है–"इस बाल साधु ने सिद्धराज जयसिंह के युग के आन्दोलनों को हाथ में लिया, कुमारपाल के मित्र और प्रेरक की पदवी प्राप्त करके गुजरात के साहित्य का नवयुग स्थापित किया। इन्होंने जो साहित्य प्रणालिकाएँ स्थापित कीं, ऐतिहासिक दृष्टि का पोषण किया, एकता की भावना का विकास कर जिस गुजराती अस्मिता की नींव रखी उसके ऊपर अगाध आशा के अधिकारी एक और अवियोज्य गुजरात का मन्दिर निर्माण कर सकते हैं।"

आचार्य हेमचन्द्र का विपुल ग्रन्थ–भण्डार एक विशाल ज्ञानकोश है। विभिन्न रुचियों के पाठकों के लिये विभिन्न स्तरानुकूल सामग्री उनके ग्रन्थों में मिलती है। आचार्य हेमचन्द्र का साहित्य एक सुन्दर उपवन के समान है जिसमें तरह-तरह के प्रफुल्लित, सुविकसित वृक्ष हैं। अतः उसमें विभिन्न एवं विविध रसास्वाद हैं। सहृदय रसिक उनके साहित्य में रसमाधुर्य के साथ–साथ रस-वैविध्य का भी अनुभव करते हैं।

आचार्य हेमचन्द्र एक असामान्य सङ्ग्रहकर्ता थे। उनके साहित्य में तत्तद् विषयों के सम्बन्ध में तदवधि तक ज्ञात प्रायः सभी अन्य ग्रन्थों के उद्धरण प्राप्त होते हैं। सङ्ग्रहकर्तृत्व के सम्बन्ध में आचार्य हेमचन्द्र सचमुच अनुपमेय हैं। इस क्षेत्र में उनकी बराबरी करने वाला कोई अन्य साहित्यकार नहीं उपलब्ध होता। उनके प्रत्येक ग्रन्थ में अन्य लेखकों के उद्धरणों का विशाल सङ्ग्रह होते हुए भी उनकी मौलिकता अक्षुण्ण रहती है। व्याकरण में तो उन्होंने अपना एक नया सम्प्रदाय ही चलाया। काव्य में भी काव्य, शास्त्र, तथा इतिहास इन तीनों को संयुक्त कर अपनी मौलिकता एवं श्रेष्ठता सिद्ध की है।

इस ग्रन्थ में उल्लिखित ग्रन्थों के अतिरिक्त आचार्य हेमचन्द्र ने 'सप्त-संधान महाकाव्य' (७–७ कहानियों का एक ही काव्य) 'नाभयनेमि', 'द्विसंधान काव्य', 'द्रोपदी नाटक', 'हरिश्चन्द्र चम्पू', 'लघु अर्हन्नीति', इत्यादि ग्रन्थ लिखे थे, ऐसा कहा जाता है किन्तु ये ग्रन्थ अभीतक अनुपलब्ध हैं। 'सप्तसंधान महाकाव्य' के होने की पुष्टि श्री भगवत्शरण उपाध्याय ने अपने 'विश्वसाहित्य की रूपरेखा' में भी की है। 'लघु अर्हन्नीति' का उल्लेख प्रो० ए० बी० कीथ ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में किया है। श्री सोमेश्वर भट्ट ने 'कीर्ति कौमुदी' में आचार्य हेमचन्द्र के विषय में निम्नांकित प्रशस्ति की है:–

सदा हृदि वहेम श्री हेमसूरेः सरस्वतीम्।
सुवत्या शब्दरत्नानि ताम्रपर्णी जितायया॥

कलिकाल-सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र जैसे ज्ञान के अगाध सागर का पार पाना अत्यन्त दुष्कर है। यदि जिज्ञासुओं के लिये कार्य करने के लिये यह ग्रन्थ थोड़ा बहुत भी प्रेरणा देने में समर्थ होगा तो मैं अपने को कृतार्थ समझूंगा। अन्त में श्रद्धा के पुष्प, भले ही वे सुवासिक, प्रफुल्लित न हों, अत्यन्त श्रद्धा से श्रद्धेय आचार्य जी के चरणों में समर्पित करता हूँ।

यत्वदाप्तं गुरो वस्तु तदेदत्त समर्प्यते।
त्वं चे त्प्रीतोऽसि साफल्यं सर्वथाऽस्य भविष्यति॥

—o—
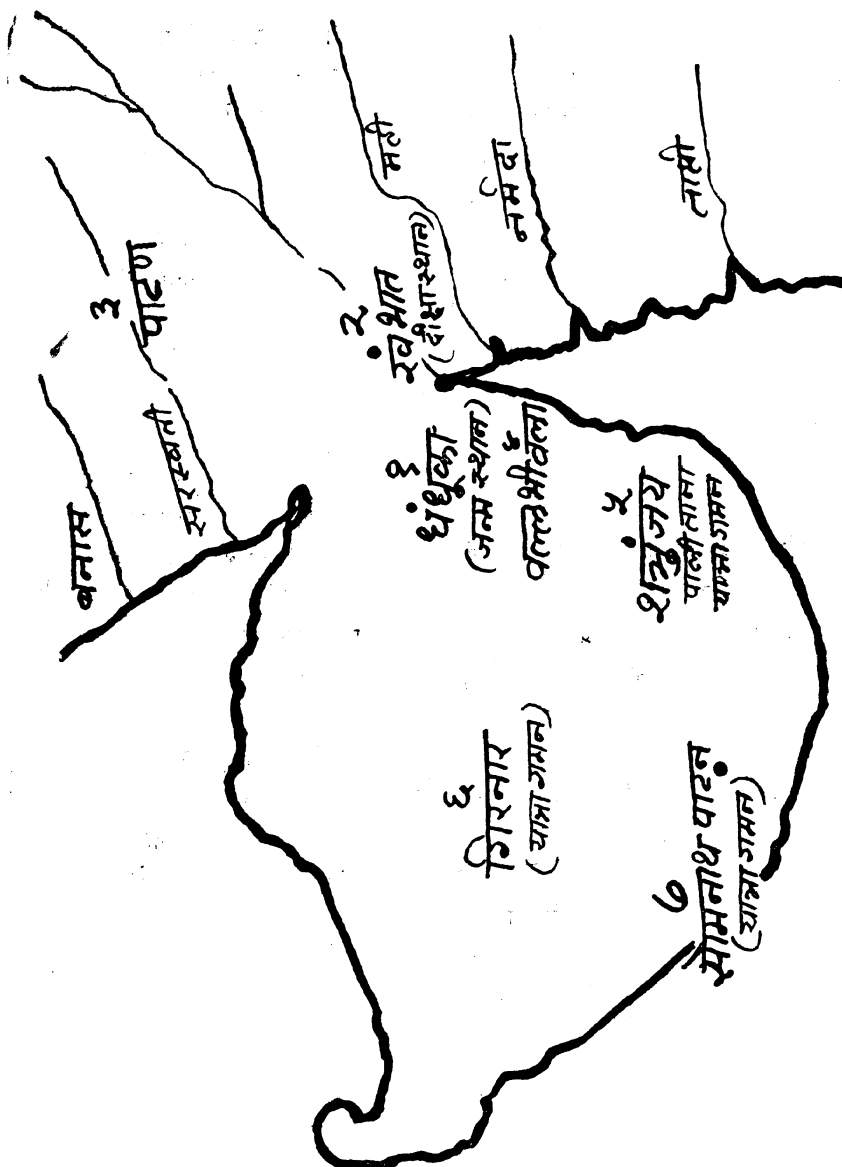
आचार्य हेमचन्द्र से सम्बन्धित विशिष्ट स्थान

श्री हेमप्रशस्तिः

सुमस्त्रिसंध्यं प्रभुहेमसूरेरनन्य तुल्यामुपदेशशक्तिम्
अतीन्द्रियज्ञान विवर्जितोऽपि यः क्षोणिभर्तुर्व्यथित प्रबोधम्
सत्वानुकंपा न महीभुजां स्यादित्येष क्लृप्तो वितथः प्रवादः
जिनेन्द्र धर्मं प्रतिपद्ययेन श्लाघ्यः स केषां न कुमारपालः ?

—सोमप्रभाचार्य-कुमारपाल प्रतिबोध

इत्थं श्री जिनशासनाभ्रतरणेः श्री हेमचन्द्र प्रभो
रज्ञानान्धतमः प्रवाह हरणं मात्रा दृशां मादृशाम् ।।
विद्यापंकजिनी विकास विदितं राज्ञोऽतिवृद्ध्यै स्फुरत् ।
वृत्तं विश्वविबोधनाय भवताद् दुःकर्मभेदाय च ।।

—प्रभावक्चरित – हेमसूरिप्रबन्ध

पूर्वं वीरजिनेश्वरे भगवति प्रख्याति धर्मं स्वयं ।
प्रज्ञा वत्यभयेऽपि मन्त्रिणि न यां कर्तुं क्षमः क्षोणिकः ।।
अक्लेशेन कुमारपाल नृपतिस्तां जीवरक्षां व्यधात् ।
यस्यासाद्य वचस्सुधांसु परमः श्री हेमचन्द्रो गुरुः ।। १२४ ।।

श्री चौलुकय ! स दक्षिणस्तव करः पूर्वं समासूत्रित ।
प्राणिप्राणविधात पातकसखः शुद्धो जिनेन्द्रार्चनात् ।।
वामोप्येष तथैव पातकसखः शुद्धिं कथं प्राप्नुया ।
न्न स्पृश्येत करेण चेद्यतिपतेः श्री हेमचन्द्र प्रभो ।।१२५।।

—पुरातन प्रबन्ध सङ्ग्रह –

एषु श्री जयसिंह देव नृपतिस्तीर्थेषु यात्रां व्यधात् ।
सिद्धः प्रोद्धरधर्मभूधरशिरः कोटीररत्नांकुरः ॥
राजर्षिस्तु कुमारपालविपुलापालः कृपालुः कलौ
कृत्वा संघमिहोपदेशवचसा श्री हेमसूर प्रभो ॥

—पुरातन प्रबन्ध सङ्ग्रह

काशी निवासी स्वकलतकलापदासीकृताशेषजनः प्रकाशी ।
तद्देव बोधः कृतवादिरोधः शुश्राव नामन्यकृतावबोधम् ॥
श्री हेमचन्द्रेण समं विवादं कर्तुं समगात् समदेन तत्र ।
अहो ! सहन्ते नहि मानवन्तस्तेजः परेषामधिकं समर्षाः ॥५॥

—जिनमण्डनकृत कुमारपाल चरित पंचमसर्ग–प्रथम वर्ग

—०—

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

संस्कृत

१– अभिनवभारती	अभिनवगुप्त गा० ओ० सी० १९३६
२– अमरटीका	भानूजी दीक्षित
३– अमरकोश	अमरसिंह
४– अनेकार्थ सङ्ग्रहकोश	हेमचन्द्र – चौखंबा १९२९
५– अष्टाध्यायी	पाणिनि
६– अभिधानचिन्तामणि	हेमचन्द्र चौखम्बा
७– अलङ्कार सर्वस्व	शारदा ग्रन्थमाला, काशी
८– आप्त परीक्षा	विद्यानंद–वीरसेवा मन्दिर सरसावा १९४९
९– उदयसुन्दरी कथा	सोढल, गा०ओ०सी० १९२०
१०– काव्य-मीमांसा	राजशेखर
११– काव्यानुशासन	हेमचन्द्र – महावीर जैन विद्यालय, बम्बई १९६४
१२– काव्यालङ्कार	वि०वि० प्रेस, काशी, सं० १९८५
१३– काव्यालङ्कार सूत्राणि	निर्णयसागर प्रेस १९५३
१४– काव्यालङ्कारसार सङ्ग्रह	नारायण दशरथ बनहट्टी १९२५
१५– कुमारपाल प्रतिबोध	सोमप्रभसूरि मुनि जिनविजय गा०ओ०सी० १९२०
१६– कुमारपाल प्रबन्ध	जिन मण्डन उपाध्याय निर्णयसागर प्रेस १९०१
१७– कुमारपाल चरित	जयसिंहसूरि जै० आ० स० भावनगर सं० १९७१
१८– कुमारपाल चरित	चरित्रसुन्दरगणि जामनगर १९१५
१९– कुमारविहारशतक	रामचन्द्रसूरि
२०– त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित	हेमचन्द्र जै० ध० प्र० स० भावनगर १९०६ तथा जॉनसन कृत अङ्ग्रेजी अनुवाद गा० ओ० सी०
२१– द्वात्रिंशिका	हेमचन्द्र
२२– न्यायसूत्र	गौतम
२३– नलविलास	गा० ओ० सी० १९२६
२४– न्यायावतार	सिद्धसेन – श्वे० जैन सभा बम्बई १९२८

२५– प्रमेयकमल मार्तण्ड — प्रभाचन्द्र – निर्णयसागर प्रेस बम्बई १९४१
२६– प्रमाण मीमांसा — हेमचन्द्र (सिंधी जैन ज्ञानपीठ कलकत्ता)
२७– प्रबन्ध चिन्तामणि — मेरूतुंगाचार्य सिंधी जैन ज्ञानपीठ १९४०
२८– प्रबन्धकोश — राजशेखर ,, ,, ,, १९३५
२९– पुरातन प्रबन्ध सङ्ग्रह — सम्पा० मुनि जिनविजय ,, सं० १९९२
३०– प्रभावकचरित — निर्णयसागर प्रेस तथा विद्याभवन १९४०
३१– मोहराज पराजय — यशपाल गा०ओ० सी० १९२०
३२– मुनिसुव्रत स्वामीचरित — चन्द्रसूरि
३३– महावीर चरित — हेमचन्द्र जैन आत्मा भावनगर सं० १९७३
३४– मुद्रितकुमुदचन्द्र — यशश्चन्द्र यशोजैग्र न० ८ बनारस १९०५
३५– मुक्तिबोध — बोपदेव
३६– पतञ्जलिकालीन भारत — डॉ० प्रभुदयालु अग्निहोत्री
३७– पाणिनिकालीन भारत — डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल
३८– टीका-सर्वस्व — सर्वानंद
३९– सिद्धहेम प्रशस्ति — हेमचन्द्र
४०– द्वयाश्रय काव्य — अभयतिलकगनी – ए०व्ह० कथावटे संस्कृत प्राकृत सी० पूना, १९२१
४१– विविध तीर्थकल्प — जिनप्रभसूरि
४२– वेदार्थदीपिका — षड् गुरूशिष्य
४३– सिद्ध हेमशब्दानुशासन — हेमचन्द्र य०शो०जै०ग्रं० बनारस १९०५
४४– लिङ्गानुशासन — हेमचन्द्र भारतीय विद्याभवन बम्बई
४५– सरस्वती कंठाभरण — भोज
४६– रघुवंश कालिदास
४७– युक्त्यनुशासन — समन्तभद्र – वीर सेवा मन्दिर सरसावा १९५१
४८– वीतराग स्तोत्र — हेमचन्द्र
४९– योगसूत्र — पातञ्जलि
५०– योगसूत्र भाष्य — शंकराचार्य
५१– प्रमाणमीमांसा — (आर्हत मत प्रभाकर संस्था भवानीपेठ पूना)
५२– छन्दोऽनुशासन — मोतीलाल लाधाजी १९६ पूना
५३– नाट्यशास्त्र — भरतमुनि विद्याविलास प्रेस बनारस १९२९

प्राकृत तथा अपभ्रंश

१– कुमारपाल चरित — हेमचन्द्र

२– जैना शिलालेख सङ्ग्रह भाग १ — डॉ० हीरालाल जैन

३– देशी नाममाला — हेमचन्द्र भांडारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना

४– सिद्धहेमचन्द्र — प्राकृत प्रक्रियावृत्ति या ढुंढिका, उदय सौभाग्य गणि

५– प्राकृत व्याकरण — सम्पादक प० ल० वैद्य, पूना १९२८

६– प्राकृत पैंगल — सम्पादक श्री चन्द्रमोहन घोष–१९०२

७– प्राकृत द्वयाश्रय काव्य — ओरियन्टल इन्स्टीटयूट, पूना १९३६

८= प्राकृत भाषाओं का व्याकरण — अनु० हेमचन्द्र जोशी- बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना १९१८

९– प्राकृत शब्दानुशासन की भूमिका — पी० एल० वैद्य शोलापुर १९५४

१०– देशी नाममाला — गुजराती सभा बम्बई सं० २००३

अंग्रेजी

१– एस्पेक्ट ऑफ संस्कृत लिटरेचर-एस०के०डे०

२– ब्रिटिश पेरेमाउन्ट एन्ड जीनियन्स इन्डीया-ग्रन्थ १,२ क० मा० मुन्शी

३– एडीसन ऑफ अनेकार्थ सङ्ग्रह – थ टचरइ

४– गुजरात एन्ड इट्स लिटरेचर-के०-एम० मुन्शी भारतीय विद्याभवन बम्बई १९३३

५– हिस्ट्री ऑफ क्लासीकल संस्कृत लिटरेचर कृष्णामाचारियर

६– हिस्ट्री ऑफ इन्डियन लिटरेचर—विन्टरनिट्ज ग्रन्थ १,२,३

७– हिस्ट्री ऑफ संस्कृत पोएटिक्स — पी० व्ही० काने

८– ,, ,, ,, ,, — एस० के० डे०

९– हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर — एस० एन० दास गुप्ता तथा डे०

१०– हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लाजिक — डॉ० शतीशचन्द्र

११– इन्ट्रोडक्शन टू देशी नाममाला — प्रो० बेनर्जी

१२– जैनीज्म इन गुजरात — सी० बी० सेठ बम्बई १९५३

१३– लाइफ ऑफ हेमचन्द्र — डॉ० ब्यूहलर सिंधी जैन सिरीज १९३६

१४– काव्यानुशासन — रसिकलाल पारीख

१५– प्रबन्ध चिन्तामणि — टॉनी

१६– रसमाला — डॉ० फार्ब्स
१७– सिस्टीम्स ऑफ संस्कृत ग्रामर — डॉ० बेलवेलकर
१८– स्याद्वाद मंजरी — डॉ० ध्रुव
१९– स्थविरावलिचरित — डॉ० जेकोबी–कलकत्ता १८९१, १९३२
२०– त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित ग्रन्थ — हेलन जान्सन गा० ओ० सी० १९३१

हिन्दी

१– अपभ्रंश साहित्य — प्रो० हरिवंश कोछड़–भारतीय साहित्य मन्दिर दिल्ली १९३५
२– अभिधान चिन्तामणि — हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा ६४
३– अपभ्रंश भाषा और साहित्य — डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन–भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी १९६५
४– अपभ्रंश भाषा का अध्ययन — विरेन्द्र श्रीवास्तव
५– आचार्य हेमचम्द्र का अपभ्रंश व्याकरण—पं० शालिग्राम उपाध्याय भारतीय विद्याप्रकाशन वाराणसी १९६५
६– आचार्य हेमचन्द्र और उनका शब्दानुशासन-डॉ. नेमिचन्द शास्त्री,चोखम्बा६३
७– आचार्य विजयवल्लभसूरि का स्मारक ग्रन्थ
८– आप्तमीमांसा–समन्तभद्र — अनंतकीर्ति ग्रंथ भ० ४ बम्बई
९– काव्यप्रकाश — टीका आचार्य विश्वेश्वर
१०– काव्यमीमांसा-राजशेखर — पं० केदारनाथ शर्मा सारस्वत पटना १९५४
११– काव्यादर्श–दण्डी — ब्रजरत्नदास–काशी
१२– जैन दर्शन — न्याय विजय, पाटन गुजरात १९५२ हिन्दी १९५६
१३– जैन इतिहास भाग १ — हीरालाल हंसराज
१४– जैन भक्तिकाव्य की पृष्ठभूमि — डॉ० प्रेमसागर जैन
१५– तत्वार्थसूत्र–उमास्वाति — पं० सुखलाल भारत जैन महामंडल वर्धा १९५२
१६– दर्शन सङ्ग्रह — डॉ० दीवानचन्द्र
१७– धर्म और दर्शन — बलदेव उपाध्याय– शारदा मन्दिर, बनारस १९४८
१८– प्राचीन भारत का इतिहास — डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी

१९– पुरातत्व चतुर्थ पुस्तक — वि० वि० मिराशी
२०– प्राचीन भारतीय साहित्य की साँस्कृतिक भूमिका — डॉ० रामजी उपाध्याय
२१– पञ्च तन्त्र — सम्पा० डा० प्रभुदयालु अग्निहोत्री
२२– प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास — डा० नेमिचन्द्र शास्त्री तारा पब्लिकेशन वाराणसी १९६६
२३– प्राकृत प्रकाश — मथुरा प्रसाद दीक्षित–चौखम्बा १९४९
२४– प्राकृत भाषाओं का रूप-दर्शन — आचार्य नरेन्द्रनाथ – रामा प्रकाशन लखैना १९६३
२५– पुरानी हिन्दी — चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, नागरीप्रचारिणी सभा काशी सं० २००५
२६– प्राकृत भाषाओं का व्याकरण — अनु० डॉ० हेमचन्द्र जोशी
२७– प्राकृत साहित्य का इतिहास — जगदीशचन्द्र जैन चौखम्बा वाराणसी १९६१
२८– बौद्धदर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन भाग १, २, — भारतसिंह उपाध्याय
२९– भारतीय दर्शन — दत्त तथा चटर्जी
३०– भारतीय वास्तुशास्त्र — डी० एन० शुक्ल
३१– भारतीय दर्शन — बलदेव उपाध्याय– शारदा मन्दिर बनारस, १९४८
३२– भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान — डॉ० हीरालाल जैन म० प्र० शासन १९६२
३३– लिङ्गानुशासन, शेषनाममाला, निघंटुशेष — हीराचन्द कस्तूरचन्द जवेरी गोपीपुरा सूरत
३४– विश्वसाहित्य की रूपरेखा — भगवतशरण उपाध्याय
३५– व्याकरण शास्त्र का इतिहास भाग १, २ — युधिष्ठिर मीमांसक
३६– शक्ति अङ्क कल्याण — गोरखपुर
३७– संस्कृत साहित्य की रूपरेखा — नानूराम व्यास एवं चन्द्रशेखर पाण्डे
३८– संस्कृत साहित्य का इतिहास — ए० वी० कीथ अनु० मंगलदेव शास्त्री
३९– संस्कृत साहित्य का इतिहास — बलदेव उपाध्याय

४०– संस्कृत साहित्य का आलोच- रामजी उपाध्याय
-नात्मक इतिहास
४१– सं० सा० का नवीन इतिहास कृष्णचैतन्य अनु० विनयकुमार राय
४२– सं० साहित्य का इतिहास वाचस्पति गैरौला
४३– सं० साहित्य का इतिहास वरदाचारी
४४– सं० साहित्य का इतिहास एस० एन० दास गुप्त, एस० के० डे०
४५– सं० काव्य शास्त्र का इतिहास पी० व्ही० काणे अनु० डॉ० इन्द्रचन्द्र
४६– साहित्यदर्पण–विश्वनाथ अनु० शालिग्राम शास्त्री वि०संवत् १९९१
४७– हेमचन्द्राचार्य ईश्वरलाल जैन–आदर्श ग्रन्थमाला, मुलतान
४८– हिन्दी सर्वदर्शन सङ्ग्रह प्रो० उमाशँकर शर्मा
४९– हेमचन्द्र मूल बूल्हर हिन्दी अनु०मणिलाल पटेल चौखम्बा बनारस

मराठी

१– छन्दोरचना डॉ० माधव ज्यूलियन
२– रसविमर्श डॉ० के० ना० वाटवे
३– वैदिक संस्कृतीचा विकास तर्कतीर्थ लक्ष्मणशास्त्री जोशी
४– संस्कृत काव्याचे पञ्चप्राण प्रो० वाटवे–पूना
५– भाषा विज्ञान प्रो० गुणे

गुजराती

१– जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास मो० द० देसाई १९३३
२– जैन साहित्य का संक्षिप्त इति० मोहनलाल दलीचन्द देसाई
३– योगशास्त्र जै०ध० प्र०स० भावनगर १९२६
४– जैन श्वेताम्बरीय जैनग्रन्थ गाइड–जैन आत्मानन्द सभा–भावनगर
५– आचार्य विजयवल्लभसूरि स्मारक ग्रन्थ
६– त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित जैनधर्म प्रसारक सभा–भावनगर
७– शक्तिसम्प्रदाय फार्ब्स गुजराती सभा
८– हेमसमीक्षा श्री मधुसूदन मोदी

बंगाली

१– व्याकरण दर्शनेर इतिहास गुरूपद हालदार

पत्र-पत्रिकाएँ

१– साहित्य संशोधक त्रैमासिक खण्ड १ अङ्क ३– पूना
२– नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग ६
३– जर्नल ऑफ दी रॉयल अेशियाटिक सोसायटी बॉम्बे १९३५
४– इण्डियन एन्टीक्वेरी अक्टूबर १९१४ व्हाल्यूम ३७
५– पुरातत्व–पुस्तक चतुर्थ–गुजराती
६– बुद्धिप्रकाश मार्च १९३५ गुजराती
७– अनेकान्त मासिक अप्रेल १९६७, अगस्त १९६४ वीर सेवा मन्दिर
२१ दरियागंज, देहली ६